मृदुला गर्ग का कथा-साहित्य : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

(MRIDULA GARG KA KATHA-SAHITYA : EK VISHLESHNATMAK ADHYAYAN)

Thesis submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

सीमा चन्द्रन

SEEMA CHANDRAN

Prof. (Dr.) N. MOHANAN
Head of the Department
Supervising Teacher

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI-682 022

JULY 2010

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried out by ***Smt. Seema Chandran*** *under my supervision for Ph.D (DOCTOR OF PHILOSOPHY) Degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any university.*

Dr. N. Mohanan
Professor & Head of the Dept.
Supervising Teacher

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi-682 022

Place : Kochi

Date :

DECLARATION

I hereby declare that the work presented in this thesis is based on the original work done by me under the guidance of ***Dr. N. MOHANAN****, Professor, Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Cochin-682 022, and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any other university.*

SEEMA CHANDRAN

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi-682 022

Place : Kochi

Date :

पुरोवाक्

साहित्यकार अपने परिवेश के साथ सार्थक संवाद करते हैं। इसी संवाद द्वारा वे समाजिक जीवन के यथार्थ को सजगता के साथ प्रस्तुत करते हैं। मौजूदा व्यवस्था के प्रति वे अपने आक्रोश एवं विद्रोह की भावना व्यक्त करते हैं। समकालीन हिन्दी कथा-साहित्य में मृदुला गर्ग अग्रणी कथाकारों में एक हैं। स्त्री की नई छवि गढ़ने, अस्मिता बोध जगाने, मध्यवर्ग के भिन्न स्तरों में व्याप्त अलगाव, अकेलापन, नवऔपनिवेशिक दौर में संयुक्त परिवार के मिटते मानचित्र के साथ अन्य कई समस्याओं को उजागर करने में मृदुला जी अतुलनीय रहीं हैं। कभी भी महिला होना उनके आड़े नहीं आया।

आम आदमी जो देखता है उसे चंद लम्हों बाद भुला देता है। परंतु साहित्यिक दृष्टि उसे कागज़ में क़ैद कर लेती है। क़ैद की गई घटनाएँ एक क़ैदी से अलग दूर दराज़ तक की खबरों का पुलिन्दा बन समाज की, राजनीति की, प्रकृति की दास्तान सुनाती हैं। साहित्यकार की जीत तभी होती है जब पाठक मूल स्वर को पकड़ लेता है। इस रचना-धर्म में मृदुला गर्ग सफल रही हैं। सिर्फ विषय की तर्ज़ पर मृदुला गर्ग को आँकने की बजाय मैंने उनके कथा-साहित्य का संपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया है। अतः शोध प्रबंध का विषय रखा गया - ***"मृदुला गर्ग का कथा-साहित्य : एक***

विश्लेषणात्मक अध्ययन।" अध्ययन की सुविधा के लिए शोध-प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है।

पहला अध्याय ***'मृदुला गर्ग का जीवनवृत्त एवं कृति-संसार'*** है। इसमें उनके जीवनवृत्त, व्यक्तित्व तथा रचना-व्यक्तित्व को समेटने का प्रयास किया गया है। दूसरा अध्याय ***'मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी अस्मिता'*** है। इस अध्याय में मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में अभिव्यक्त नारी अस्मिता के विभिन्न पहलुओं को विश्लेषित करने का कार्य किया गया है। तीसरा अध्याय है - ***'मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ'***। इसमें मध्यवर्ग के अकेलेपन, महानगर प्रेम, बढ़ते तनाव, तलाक सपनों की कब्र आदि यथार्थों को अध्ययन का विषय बनाया गया है। चौथा अध्याय है - ***'मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य का सामाजिक सरोकार के विभिन्न आयाम'***। इस अध्याय में अन्य सामाजिक समस्याओं को लेकर उनके कथा-साहित्य का संपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत है। पाँचवाँ अध्याय है - ***'मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य का संरचना पक्ष'***। इस अध्याय में भाषा, एवं शिल्प की संरचना को परखने का कार्य किया गया है। अंत में उपसंहार है। इसमें मृदुला गर्ग के व्यक्तित्व एवं साहित्य के अध्ययनोपरांत का निष्कर्ष प्रस्तुत है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कोच्चिन के प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष डॉ. एन. मोहनन जी के निर्देशन एवं निरीक्षण

में तैयार किया गया है। उनके मूल्यवान सुझाव समय-समय पर मुझे प्रोत्साहित करते रहे हैं। उनका वात्सल्य एवं गुस्से दोनों से ही यह कार्य निर्विघ्न संपन्न हो सका है। अपनी प्रतिकूलताओं में भी वक़्त रहते उन्होंने मेरी हर तरह से मदद की है। उनके संयम की मैं कर्ज़दार हूँ। मेरी प्रार्थना है कि वे अपने जीवन में खुशहाली एवं बुलंदी हासिल करें। मैं उनके मंगलमय जीवन एवं अच्छे स्वास्थ्य की कामना करती हूँ। उनके प्रति आभार शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता।

हिन्दी विभाग की प्रोफेसर डॉ. वनजा जी के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ। अगर वे न होतीं तो शायद मेरा शोध अधूरा रह जाता। उन्होंने अपने उदार एवं प्रतिभापूर्ण मार्गदर्शन से मेरे शोध-कार्य को साध्य तक पहुँचाने में मदद की है।

मेरे अन्य गुरुजनों के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ कि उन्होंने मेरे शोधकार्य की संपूर्ति में वांछित सहयोग दिया। उनका आशीर्वाद एवं प्रेरणा मेरे लिए मूल्यवान हैं। केन्द्रीय विद्यालय केल्ट्रोन नगर तथा पय्यन्नूर कॉलेज के सभी गुरुजनों को भी मैं इस अवसर पर कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करती हूँ।

हिन्दी विभाग के कार्यालय एवं पुस्तकालय के कर्मचारियों के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

कोच्चिन विश्वविद्यालय के अध्ययन काल में छोटी-मोटी ज़रूरतों के लिए बिना हिचक उपस्थित होने वाले, मुझे सांत्वना एवं प्रेरणा देनेवाले सभी आत्मीय जनों एवं शुभचिन्तकों को मैं धन्यवाद देती हूँ। इन्होंने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों में मेरी मदद की है।

अतुल्या होस्टल के सभी आत्मीय मित्रों को भी इस अवसर पर याद करती हूँ।

मैं मृदुला गर्ग, दिनेश द्विवेदी और महिपत सिंह का भी इस पल स्मरण करती हूँ। समय-समय पर उन्होंने मेरे शोध कार्य को पूर्ण करने में सहयोग दिया है। उनके प्रति भी मैं आभारी हूँ।

इस अवसर पर अपने पति विनु को सप्रेम याद करती हूँ। उन्होंने शोध-प्रबंध की पूर्ति के अंतिम क्षणों में मुझे सांत्वना देते हुए उलझनों से बाहर निकाला है।

मैं अपने माता-पिता और बड़ी बहन दीपा के समक्ष नतमस्तक हूँ। उनके वात्सल्य, मन से की गई प्रार्थना और सहारे के बग़ैर मैं कभी इस मुक़ाम तक नहीं पहुँच सकती थी। उनके प्रति भी सस्नेह आभार प्रकट करती हूँ। बड़ी बहन दीपा की प्रेरणा से ही मैंने कोच्चिन विश्वविद्यालय में दाखिला लिया था।

इन सबके पहले मैं परम् शक्ति ईश्वर के सामने श्रद्धा भाव से घुटने टेकती हूँ। उनके आशीर्वाद एवं शक्ति की बदौलत ही मैं इस शोध कार्य को पूरा कर सकी हूँ।

यह शोध-प्रबंध मैं अपने पूज्य माता-पिता को समर्पित करती हूँ।

मैं यह शोध-प्रबंध सविनय विद्वानों के सामने प्रस्तुत कर रही हूँ। इसकी खामियों और गलतियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

सविनय

सीमा चन्द्रन

हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय, कोच्चि-22

तारीख : जुलाई 2010

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय 1-68

मृदुला गर्ग व्यक्तित्व एवं कृति संसार

व्यक्तित्व - बचपन और शिक्षा - स्मृतियाँ - वैवाहिक जीवन - पारिवारिक-दायित्व और सृजन का क्षेत्र - मृदुला जी का व्यक्तित्व - सामाजिक चेतना - विद्रोह की प्रवृत्ति - मृदुला जी का कलाकार - बाग-बगीचा - संवेदनशीलता - रसोई और पक्रवान - प्रिय साहित्य और साहित्यकार - सृजनात्मक पक्ष - सृजन प्रक्रिया और लेखकीय संघर्ष - पाठकीय प्रतिक्रिया - सृजनात्मक साहित्य का वर्गीकरण - कथा-साहित्य - कथेत्तर - गद्य-साहित्य - अनुवाद-साहित्य - निष्कर्ष।

दूसरा अध्याय 69-154

मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में नारी अस्मिता

फेमिनिज़्म - साहित्य में नारीवाद - हिन्दी की लेखिकाओं का नारीवादी दृष्टिकोण - मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में नारी-अस्मिता - नारी स्वतंत्रता - सामाजिकता और नारी-अस्मिता - स्त्री और नैतिक मूल्य - आर्थिक संदर्भ - सांस्कृतिक संदर्भ - स्त्री अस्तित्व-स्थापन में मातृत्व का महत्व - स्त्री-सृष्टि की सृजनाधिष्ठित संकल्पनाएँ एवं स्त्री-अस्मिता का प्रकोप - कन्या-जन्म - निष्कर्ष।

तीसरा अध्याय 155-258

मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ

वर्ग विभाजन : एक अवधारणा - समाज वर्गीकरण : ऐतिहासिक संदर्भ - मध्यवर्ग - मध्यवर्ग का उदय - मध्यवर्ग का संघर्ष - मध्यवर्ग की अवधारणा - मध्यवर्ग का उदय - हिन्दी कथा-साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ - मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन

का यथार्थ - अणु परिवार - वृद्धावस्था - नौकरीपेशा मध्यवर्ग - कृत्रिमता - दांपत्य जीवन की विह्वलताएँ - पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव - मृत्युबोध - प्रवास का आग्रह - अकेलापन/अजनबीपन - जीवन मूल्यों का अवमूल्यन - निष्कर्ष।

चौथा अध्याय 259-370

मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में सामाजिक सरोकार के विभिन्न आयाम

मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में सामाजिक सरोकार - राजनीतिक समस्या - नवउपनिवेशवादी संस्कार - धार्मिक समस्या - आर्थिक समस्या - पारिस्थितिक समस्या - विज्ञापन - नारी और संतानोत्पत्ति - निष्कर्ष।

पाँचवाँ अध्याय 371-444

मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य का संरचना पक्ष

मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में भाषिक संरचना - डॉट्स भाषा - व्यंग्यात्मक भाषा - संवादों का बिंदुओं के बाद छोड़ देना - आलंकारिक भाषा - दृश्यात्मक भाषा - काव्यात्मक भाषा - चिन्तन प्रधान भाषा - वातावरण प्रधान भाषा - वाक्यों की पुनरावृत्ति - पात्रानुकूल भाषा - भाषा में बिंब - प्रतीकात्मक भाषा - सांकेतिकता-मुहावरों तथा कहावतों का प्रयोग - भिन्न भाषा के रूप - शब्द-प्रयोग - मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में शैली - वर्णनात्मक शैली - विश्लेषणात्मक शैली - वर्णनात्मक शैली - आत्मकथात्मक शैली - परस्मैपदीय शैली/अन्य पुरुष शैली - पूर्वदीप्ति शैली (फ़्लैश बैक शैली) - संवादात्मक शैली - स्वप्न शैली - फैंटसी शैली - पत्र शैली - आलंकारिक शैली - आँचलिक शैली - दो खण्डों में कहानी रचना की नूतन शैली - वार्तालाप शैली - निष्कर्ष।

उपसंहार 445-452

संदर्भ ग्रंथ सूची 453-470

अध्याय - एक

मृदुला गर्ग का कृति-व्यक्तित्व

मृदुला गर्ग का कृति-व्यक्तित्व

व्यक्तित्व

मृदुला गर्ग जी ने अपने जीवन में कई उतार-चढ़ाव देखे हैं। और लेखिका के रूप में अपने-आप को स्थापित करने के लिए उन्होंने काफी संघर्ष किया। सातवें दशक के हिन्दी कथा-साहित्य के दौर में कदम बढ़ाकर अपना एक ठोस स्थान बनाने में मृदुला जी सफल हुईं हैं। स्त्री-लेखिका होने की वजह से ज़िन्दगी ने उनका काफी इम्तेहान लिया और इन परीक्षाओं में उनके परिवार और परिवेश का काफी प्रभाव रहा। किसी भी साहित्यकार की कृति को उसके व्यक्तित्व से पृथक करना उसकी कृति की तौहीन है। क्योंकि रचना में उसका व्यक्तित्व साफ झलकता है। बाकायदा वह इस व्यक्ति-जीवन से अभिभूत होकर ही रचना करता है। अतः उनके व्यक्तित्व का निर्माण भी परिवेशगत संस्कारों से ही हुआ है। इसलिए मृदुलाजी की कृतियों को परखने से पहले उनके व्यक्तित्व पर नज़र डालना ज़रूरी है।

बचपन और शिक्षा

मृदुला जी का जन्म 25 अक्टूबर 1938 को एक नामी नगर कोलकत्ता के एक रईस खानदान में हुआ। पिताजी, माननीय बी.पी. जैन

का तबादला दिल्ली में हो गया। यह शायद तीन-चार वर्ष की आयु में ही हो गया था। अतः उनकी पढ़ाई दिल्ली में हुई। सेहत की कमज़ोरी के कारण वे करीब तीन साल तक स्कूल नहीं जा पाईं थीं और घर पर ही रहकर पढ़ाई की थी। पढ़ाई में तेज़ होने के कारण उनका साल बर्बाद न हुआ, समय पर ही उन्होंने अपनी पढ़ाई पूरी की।

बचपन में ही मृदुला जी ने हिंदी एवं अंग्रेज़ी दोनों ही भाषाओं में मौलिक और अनूदिन रचनाएँ कीं। वे छोटी सी उम्र से ही एकांत प्रिय थीं और साहित्य पढ़ने में काफी रुचि रखती थीं। कई महान् लेखकों की रचनाएँ उन्हें ज़ुबानी याद हैं। इसका परिणाम यह निकला कि साहित्य उनके भीतर समा गया और मन में निहित बड़े साहित्यकारों का डर भी समाप्त हो गया। 'थ्रू द लुकिंग ग्लास' नामक कहानी बचपन में पढ़ी तो उन्हें एहसास हुआ 'दौड़ेगे नहीं तो ठौर पर खड़े नहीं रह पाओगे। एम.ए. अर्थशास्त्र करते वक्त एन.राज जी की बात 'तेज़ नहीं दौड़ेगे तो पीछे धकेल दिए जाओगे' उनके हृदय पर असर छोड़ गई।

मृदुला जी ने दिल्ली स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स से अर्थशास्त्र में एम.ए. किया और सन् 1960 से 1963 तक दिल्ली के इन्द्रप्रस्थ कॉलेज और जानकीदेवी कॉलेज में प्राध्यापिका के रूप में अध्यापन कार्य किया। किताबों एवं साहित्य से अलग एक जीवन बनाने में अभिनय का बड़ा हाथ रहा। स्कूली दिनों में मंच पर कई नाटकों का अभिनय किया। कई पुरस्कार

पाने में भी वे सफल हुईं। उनके एकाकी स्वभाव एवं बिमारी के कारण उनके दोस्तों का दायरा काफी कम था।

माँ से अधिक मृदुला गर्ग का रिश्ता उनके पिता से जुड़ा। उनकी रचनात्मक ज़िन्दगी को सँवारने में उनके पिता का बड़ा योगदान है। आत्मा के भीतर झाँकने की क्षमता उनमें अपने पिता की बौद्धिकता के कारण ही पैदा हुई। संरक्षण, वात्सल्य जो बच्चों को अपनी माँ से मिलता है वह उन्हें अपने पिता से मिला। माँ-बाप दोनों की भूमिकाएँ पिता ने ही निभाईं। मृदुला जी की माता अपने समय की दूसरी स्त्रियों से भिन्न थीं। उनको खाना बनाने व अपने बच्चों को पालने-पोसने में कोई रुचि नहीं थी। उन्होंने न कभी खाना बनाया और न ही कभी अपने बच्चों को दुलारा था। परन्तु किसी ने कभी उनको बुरी पत्नी या बुरी माता नहीं कहा। 'मेरे संग की औरतें' में मृदुला जी कहती हैं कि उनके पिता ने उन सब की बहुत अच्छी देखभाल की और उन्होंने अपनी माता की देखरेख की, जो कि एक सुंदर कोमल हृदयवाली परन्तु लगभग अपंग स्त्री थी।

मृदुला जी के पिता आज़ाद खयालात के थे। इसी वजह से घर के सभी सदस्य स्वतंत्र चिंतन रखते थे। अलग-अलग जगहों पर रहने की वजह से उन्हें कई संस्कृति एवं लोगों के तौर-तरीकों को परखने का मौक़ा मिला था। उनके पिता भी सहनशील, वैचारिक एवं संवेदनशील थे जिसकी

वे तारीफ़ करने से नहीं चूकतीं थीं। उन्हें अलग-अलग लोगों एवं उनकी समस्याओं को जानने का मौक़ा मिला था।

घर की चार-दीवारी में लड़कियों को क़ैद रखने की जो परंपरा है उससे परे मृदुला जी के पिता उस ज़माने में भी अपने बेटे और बेटियों में कोई फर्क़ नहीं किया करते थे। उनकी अपने बच्चों के साथ अच्छी तरह बनती थी। मृदुला जी के चार बहनें और एक भाई है। साहित्य-सृजन में मृदुला जी अपनी बहन मंजुल भगत से सबसे ज़्यादा प्रभावित थीं। उन्होंने अपना एक उपन्यास 'मैं और मैं' उन्हीं को समर्पित किया। उनके कई किस्से मृदुला जी ने 'मेरे संग की औरतें' नामक लेख में लिखा है। मृदुला जी के भाई-बहनों का अपना-अपना अलग कार्यक्षेत्रीय प्रभाव एवं अस्तित्व है। प्रसिद्ध अंग्रेज़ी लेखिका अचला बंसल भी मृदुला जी की बहन है। चित्रा जैन, रेणु जैन गृहस्थी का बागडौर संभाल रहीं हैं। उनका एकमात्र भाई राजीव जैन है जो राजभाषा हिन्दी का कवि है।

पिता का स्नेह एवं प्रोत्साहन इतना बढ़िया था कि बारह (12) साल की उम्र में ही सभी बच्चों को शेक्सपियर, दोस्तोवस्की, तुर्गनेव से रु-ब-रु करा दिया। लेखिका के पिता बी.पी. जैन ने सभी बच्चों को उच्च-शिक्षा देने के साथ-साथ अपने बारे में खुद फैसला लेने तथा देर से विवाह करने की अनुमति दी थी। उनके पिता यह कतई नहीं चाहते थे कि उनके बच्चे उनके नक़्शे कदमों पर चलें। इसलिए मृदुला जी ने जब अर्थशास्त्र

छोड़ हिन्दी में अपना पहला उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' लिखा तो उन्हें अच्छा नहीं लगा। मृदुला जी खुद कहती हैं कि उनके पिता ने कहा था कि वे लोगों को यह नहीं बताएँगे कि वे मृदुला गर्ग के पिता हैं। मृदुला जी ने सांसारिक विद्रूपताओं के परे अपने वैयक्तिक आवश्यकताओं, इच्छाओं और त्रुटियों के बारे में सोचा और अपने भीतर की 'मृदुला' को बाहर निकाला। अपने इस 'स्व' को पाने में उनके पिता ने भरपूर सहयोग दिया। उनकी ही बदौलत आज मृदुला जी इस मुक़ाम तक पहुँच पाई हैं।

भारतीय परम्परा के अनुसार स्त्री जीवन का एकमात्र लक्ष्य है विवाह। इस मंज़िल के परे अलग राह पर चलाना काफी जोख़िम का काम है; जिसका बीड़ा मृदुला जी के पिता ने उठाया। पिता की एक और खासियत यह है कि वे आज़ादी की जंग में बराबर के शरीक़ थे। यही वजह थी कि उन्होंने अपनी लड़कियों को भी लड़कों के समान आज़ादी दी। पिताजी के ऐतिहासिक शौक़ पर भी मृदुला जी लिखती हैं। इसी शौक़ का उन्हें भी चस्का चढ़ गया और वे घुमक्कड़ी की ओर आकृष्ट हुईं। तुगलकाबाद के कई खंडहरों एवं ऐतिहासिक स्थलों का मुआइना मृदुला जी ने किया था।

स्मृतियाँ

जवानी एवं बचपन के दिनों के बेबाक किस्से मृदुला जी भावुक होकर बताती हैं। बारिश के दिन मृदुला जी को काफी भाते थे। बेमौसमी बारिश उन्हें अपने पिता की याद दिलाती है। घर का हर सदस्य मुख्य तौर

पर भाई-बहनें पिताजी के संग बारिश का आनंद लेते थे। इन वर्षा की बूँदों के अलावा वहाँ देखने लायक कुछ नहीं था पर फिर भी बहुत कुछ उन्हें मिलता था। ये बूँदें पारिवारिक सदस्यों को एक-दूसरे से जोड़ देती थीं। सभी सदस्य आँगन में मंद-मंद बहती, पत्तों-फूलों से टकराती बूँदों का आनंद लेते हुए उल्लसित हो जाते थे। ठीक वैसे ही जैसे भूखे को मुट्ठी भर चावल मिल गया हो। सारी चीज़े कहने को तो मामूली थीं परन्तु पिता में हमेशा से विद्यमान जीने की इच्छा, आम को खास बनाने की, यथार्थ में कल्पना का पुट देकर भविष्य को उज्जवल बनाने की, सत्य से साक्षात्कार करने की भरपूर लालसा आदि उनमें थी। वे मानती हैं कि कल्पना से साक्षात्कार करनेवाला व्यक्ति भावुक ज़रूर होता है पर यही कल्पना मनुष्य को दृढ़ निश्चय की ओर अग्रसर कराती है। लेखिका लिखती हैं - "सत्य से साक्षात्कार यथार्थ से ऊपर उठना है, उससे भागना नहीं और उसकी इच्छा उसी आदमी में हो सकती है जो आम को खास बनाने की जुर्रत कर सकें। जब भी बारिश होती है मुझे अपने पिता की याद आती है और जीवन, साधना, विश्वास, आशा, संघर्ष बेमानी शब्द नहीं लगते।"[1]

अतः लेखिका के व्यक्तित्व पर उनके पिता का व्यक्तित्व काफी प्रभाव छोड़ गया है। जिसने उन्हें हर तकलीफ एवं मुसीबतों से जूझने की शक्ति प्रदान की।

---

1. मृदुला गर्ग - रंग ढंग - पृ. 40

मृदुला गर्ग के नानाजी बैरिस्टर थे। उन्हें लोग 'जैनी साहब' कहकर पुकारते थे। पर उनकी तस्वीर मृदुला जी को साफ नज़र नहीं आती थी क्योंकि बचपन से ही उनकी आँखें काफी कमज़ोर रही हैं। वे साफ दिखने के लिए दूसरी पंक्ति में बैठा करती थीं। उनके नाना जी बातें कम किया करते थे। मंजुल एवं मृदुला जी महीने में एक बार सिर से पाँव तक ढँककर उनकी हवेली जाती थीं। तब थोड़ा अलग मौसम हो जाता था। जब तक वे वहाँ से चली नहीं जाती तब तक वे एक ही सवाल करते कि कितनी रोटी खाती है। इसका जवाब उनका दिलो दिमाग कभी न सुनता क्योंकि वे और ही किसी दुनिया में होते थे। यही सवाल उनके नानाजी कई बार पूछ चुके थे। वे बचपन से यही सवाल सुनती आई हैं। उनके नानाजी के यहाँ इतने नौकर-चाकर हुआ करते थे कि उनका खाना-पीना, हर चीज़ उनके सामने समयानुसार पहुँच जाता था। नानाजी ने सगे-संबंधियों से भिन्न अपना एक अलग संसार, पेड़-पौधे, बाग-बगीचे, उनमें खिले फूल, घोड़ी (जो घोड़ा-गाड़ी खींचती है), लाइब्रेरी की करीने से सजी किताबों के साथ बसा लिया था। मृदुला जी कहती हैं कि उनके नानाजी को इन तीनों ही चीज़ों से समान रूप से लगाव था। अपने बगीचे से न वे खुद कोई फूल तोड़ते और न ही किसी को तोड़ने की इजाज़त ही देते। घर की लाइब्रेरी की किताबें भी इतनी सलीकें से रखते कि कोई भी उनसे इन किताबों की माँग नहीं कर पाता और न ही वे किसी को देते। उनकी मौत भी 'शाकुंतल' पढ़ते-पढ़ते हुई थी। इसे पढ़ते-पढ़ते ही दिल का दौरा पड़ गया था। घोड़ी की बात तो

कुछ और ही थी। घोड़ी को बग्घी में जुतवाकर इतनी धीरे घोड़ा-गाड़ी चलाते कि कोई भी आसानी से चलकर उन से आगे निकल जाएँ। उनके घर लकड़ी टाल पर जब आग लगी थी तब भी वे अपनी किताबों की हिफाज़त कर रहे थे। अपने नानाजी की इसी शख़्सियत को ज़ुबान-ए-बयान करता उनका उपन्यास है - 'वंशज।' प्रस्तुत उपन्यास में नानाजी के सारे गुण उन्होंने 'शुक्ला साहब' माननीय जज साहब को दे रखा है।

मृदुला जी अपनी ताई का हमेशा स्मरण करती हैं। उनकी बचपन की बात हो और ताई जी का नाम न आए ऐसा हो ही नहीं सकता। वे अपनी जवान माँ से अधिक अपने पिता की बूढ़ी ताई के ममता तले पलीं। ईश्वर ने उन्हें संतान से विमुख रखा था। संगमरमर तराशी देहवाली ताई निःसंतान होते हुए भी वे कई बच्चों की माँ थीं। इसका मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि उन्होंने बच्चा गोद लिया था या फिर ताऊ ने दूसरी शादी ही की हो। वे तो दो (2) भाइयों के बारह (12) बच्चों और सत्तर (70) पोते-पोतियों के माँ-बाप थीं। लेखिका छुट्टियों में इन्हीं ताई के साथ आकर रहती थीं। उन्हें इस बात का आश्चर्य होता था कि इतने भरे-पूरे परिवार में इतने शरारती बच्चों के बीच हर एक की माँग को पूरा करना सँभालना कोई आसान काम नहीं था। पर उन्होंने यह भली-भाँति निभाया। एक-बार अपनी बीमारी की घबराहट के कारण उनके ताऊ जी ने एक कुँआरे बेटे को अपने भाई से गोद ले लिया। उस बच्चे की शादी कराकर

उन्होंने इस दुनिया से विदा ले लिया। ताऊ की मौत के पश्चात् ताई अपने उस आलिशान हवेली में अकेलेपन की चपेट में आ गईं। उन्हें हवेली खंड्हर लगने लगा। जब ताई की मौत आई तो वे बिल्कुल अकेली थीं। वे तिलतिल कर अपनी आखिरी साँसे गिन रही थीं। लेखिका को लगा कि उस औरत को अपनी माँ बनने की इच्छा सबकी माँ बनकर पूरी करने में ही थी।

वैवाहिक जीवन

मृदुला जी ने प्रेम-विवाह नहीं किया था। उन्होंने अपने पिता के कहने पर ब्याह रचाया था। वे खुद कहती हैं कि वे हमेशा पुस्तकों में गुम रहती हैं। इस बीच उन्होंने सिर उठाकर किसी को देखा नहीं और कोई लड़का भी तो उनके आगे पीछे नहीं मंडरा पाता। मृदुला जी के महाविद्यालय में दोस्तों के रूप में स्त्रियाँ कम और मर्द ज़्यादा थे। परंतु फिर भी किसी से प्रेम करने का ख्याल नहीं आया। क्योंकि अधिकतर सहपाठी गंभीर नहीं थे। वे अपरिपक्व थे। यद्यपि उन्होंने परिवारवालों की इच्छानुसार शादी की पर शादी से पहले ही वे एक-दूसरे को अच्छी तरह जान चुके थे। यह शादी दोनों की पसंद से हुई। मृदुला जी के पति का नाम 'आनंदप्रकाश गर्ग' था। उनका विवाह 1963 में हुआ। विवाह से पहले 1960 से 1963 तक अध्यापिका की हैसियत से काम करती रही। किंतु विवाह के पश्चात् नौकरी छोड़ दी। ऐसा इसलिए क्योंकि उन्हें लगता था कि पारिवारिक विघटन और बिखराव का कारण, यह नौकरी हो सकती है। उन्होंने इसलिए

ममता, परिवार और नौकरी में से ममता और परिवार को चुना। उन्होंने शायद ऐसा इसलिए किया होगा कि उनकी माँ की वजह से उनका परिवार बिखरते-बिखरते बचा। वे अपने पति के साथ अलग-अलग जगहों पर रहीं। डालमिया नगर (बिहार), दुर्गापुर (बंगाल), बागलकोट (कर्नाटक) आदि औद्योगिक तथा छोटे कस्बों में 1963 से 1971 तक रहीं।

मृदुला गर्ग ने यद्यपि नौकरी न की हो, परंतु गैर व्यावसायिक तौर पर नाटक में अभिनय करके कई मुसीबत के मारे लोगों के लिए धन की सहायता की थी। नाटकों द्वारा वे पैसा इकट्ठा किया करती थीं। नाटक, निर्देशक और अभिनय का तो उन्हें पहले से शौक़ था। 1971 तक यह सिलसिला चला। इससे पहले 1970 में ही सृजनात्मकता की ओर वे उन्मुख हो चुकी थीं। इसी कारण से नाटक मंचन की तल्लीनता से विमुख हुईं। इन फैसलों के पीछे दो मुख्य कारण थे। पहला यह कि वे बच्चों के लिए अधिक वक्त नहीं निकाल पाती थीं। दूसरा यह कि उनकी खोजानुसार रचनात्मक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम मिल गया था। अतः भारतीय स्वतंत्र चिंतन से युक्त नारी की मूर्तिवत्त रूप मृदुला गर्ग ने अपने परिवार को अहमियत देते हुए नौकरी छोड़ दी और बाद में नाटक मंचन भी। वे घर पर लेखन-कार्य चलाते हुए ही बच्चों की परवरिश और पति की देखभाल करती थीं।

पारिवारिक-दायित्व और सृजन का क्षेत्र

मृदुला जी का भरापूरा परिवार है। वे सभी अच्छे ओहदों पर भी हैं। एक लेखिका के लिए घर परिवार और लेखन के बीच संतुलन बनाए रखना मुश्किल है। क्योंकि स्वस्थ लेखन के लिए सुकूनदायक और स्वस्थ मन का होना ज़रूरी है। परिवार के हरेक सदस्य की ज़रूरतों के बारे में सोचना, चिंता करना और उसे पूरा करना मामूली बात नहीं। अपने से छोटों को सही रास्ता दिखाना, बज़ुर्गों की हर इच्छा का ख्याल रखना, पति की इच्छा-मूड़, बच्चों का भविष्य-करियर, पारिवारिक देखभाल - काम, मेहनत, स्वास्थ्य और इसी बीच मंचन, फैनमेल, पुरस्कार, लेखन एक महिला के लिए दूभर है। इन तमाम खिंचाखींची में भी अपना अस्तित्व कायम रखना और सृजन के लिए खुद को समर्पित कर कामयाबी की बुलंदियों तक पहुँचना आसान काम नहीं है। लेकिन हम मृदुला गर्ग के व्यक्तित्व की पुरानी धूल पर हाथ फेरें तो पाएँगे कि उनका चेहरा साफ दिखाई दे रहा है। उन धुंधली यादों की धूल को हटाने पर हमें एक खज़ाना मिलेगा, मृदुला गर्ग का पाक् व्यक्तित्व। मृदुला जी लेखन और परिवार दोनों के बीच सामंजस्य बनाए रखने में सफल हुई हैं।

मृदुला जी अपने परिवार के साथ खुशहाल जीवन व्यतीत करती थीं। उनके दो बेटे थे। पहला 'शशांक विक्रम' दूसरा 'आशीश विक्रम'। दोनों की शादी हो चुकी है। बड़ी बहू का नाम 'अपर्णा शशांक

विक्रम' है और छोटी बहू का नाम 'वंदिता आशीश विक्रम' है। बड़े बेटे और बहू का निधन एक दुर्घटना में हो गया था। शायद यही वजह है कि वे आजकल उखड़ी-उखड़ी नज़र आतीं हैं। दूसरा बेटा और बहू आजकल कर्नाटक की राजधानी बैंगलूर में अभ्यंता के पद पर आसीन हैं। लेखिका की एक पोती है - 'श्रृंगी' और पोता है - 'मृगांक'। लेखिका मृदुला जी, आसमान की ऊँचाइयों को छूने के साथ-साथ परिवार के प्रति चिंताशील भी थीं।

मृदुला जी को परिवार और सृजन के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उन्होंने परिवार की खुशी के लिए कई दफ़ा सृजन-कार्य रोका भी। परंतु धुंधलके के हट जाने पर दोबारा शुरू कर लिया। प्रस्तुत बात का ज़िक्र उन्होंने 'मैं और मेरा समय' लेख में 'जादू का कालीन' का निर्माण करके किया। वे उन परिस्थितियों के बारे में भी बताती हैं जिसकी वजह से उन्हें इस जादुई कालीन को बनाना पड़ा।

सन् 1985 में उनके घर को आर्थिक दबावों ने घेर लिया था। 'आनंदप्रकाश गर्ग' जी को दफ्तर घर पर ही खोलना पड़ा। कई लोग काम के सिलसिले में आते-जाते रहा करते थे। इस बीच किसी लेखन कार्य का करना बड़ा मुश्किल था। मेहमानों और दफ़्तर के कामकाजी लोगों की भीड़ में मन को एकाग्र बनाना काफी कठिन था। वे कुछ कहानियाँ तो लिख लेती थीं परंतु उपन्यास लिखना उनके बस की बात नहीं थी। उन्हें लगता था कि

यदि वे लिखना शुरू करेंगी तो उसे किसी मंज़िल तक नहीं पहुँचा सकेंगी। मगर वे लिख सकती थीं। क्योंकि उन्होंने अपना 'चित्तकोबरा' नामक उपन्यास सुबह 4 बजे से 6 बजे के बीच ही लिखा था। वे अपने नाटक 'जादू का कालीन' के संबंध में लिखती हैं - "1988-89 में मैंने एक नाटक 'जादू का कालीन' ज़रूर लिखा था। बड़ी मज़ेदार स्थिति में। किसी कारण दफ़्तर की दो दिन की छुट्टियाँ थीं, शायद मेरे पति को बाहर जाना पड़ा था और बाकी लोग गच्चा मार गए थे। तो मैंने बाहर फाटक पर ताला मारा, खुद को कमरे में बंद किया और दो दिन, तीन रात तक मुसलसल लिखकर नाटक पूरा कर डाला। चाय बनाकर थर्मस में रख ली। जब लिखना रोकना ज़रूरी लगता तो डबल रोटी उसमें भिगोकर खा लेती। तो नाटक लिखा गया।"[1]

अतः इस तरह मृदुला गर्ग ने अपने सृजनात्मकता को बरक़रार रखने के लिए कई त्याग किए और कभी हिम्मत नहीं हारी। पारिवारिक उलझनें और अड़चने उन्हें देखकर घबरा जाती थीं। वे अपने सृजन पथ पर एकांतवासी योगी की तरह चलती गईं।

पारिवारिक, सामाजिक और लेखकीय स्तर पर उच्चतम शिखर तक पहुँचने के लिए अपने जीवन-साथी का सहयोग होना भी

1. मृदुला गर्ग - चुकते नहीं सवाल - पृ. 154

ज़रूरी है। मृदुला जी के अनुसार वैवाहिक जीवन में आपस में उन्होंने कभी टाँग-नहीं अड़ाई, हाँ वे एक-दूसरे की व्यस्तता पर कभी-कभार खीझ उठते थे। एक दाम्पत्य जीवन में प्यार तभी रहता है जब उसमें तकरार भी हो। परंतु उनके बीच की टकराहट बहस को लेकर होती थी। पति-पत्नी को बराबर तौर पर अपना-अपना कार्य करने की छूट थी तो ज़हिर है, दोनों में बहस और टकराहट होगी और यह लाज़मी भी है। यदि इन छोटी-छोटी ज़िन्दगी के पहलुओं का आनंद नहीं लेंगे तो, एक लेखिका लेखन-स्तर पर सफल कैसे हो सकेंगी? लेखिका अपने लेखन का श्रेय अपने पति आनंदप्रकाश को देते हुए कहती हैं कि हर लेखिका के पीछे कोई नहीं तो एक पुरुष अवश्य रहता है जिसके कारण नहीं; जिसके बावजूद वह लेखन करती है, मैं अपवाद नहीं हूँ।

मृदुला गर्ग अपने लेखन को परिवार में संतुलन और तालमेल बनाए रखने के लिए दूर रखती हैं। वे आम तौर पर ही अपने परिवार के सदस्यों से व्यवहार करती हैं। वे सदस्यों की समस्याओं को सुनती हैं पर उनके लेखन संबंधी समसयाओं को परिवार नहीं सुनता। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि सभी अपनी-अपनी समस्याओं और काम में व्यस्त रहते हैं। सदस्य अपनी राय तो देते हैं परंतु दूसरे इस संबंध में क्या आलोचनाएँ करते हैं, क्या प्रशंसा करते हैं इनमें उनकी कोई दिलचस्पी नहीं

है। मृदुला गर्ग जी अपने परिवार को तनाव और उलझन से दूर रखने के लिए लेखन का ज़िक्र नहीं करतीं।

मृदुला जी का व्यक्तित्व

मृदुला जी का बाह्य चित्र निराला, अद्भुत एवं अजूबा है। ऐसा लगता है उनका नाम उनके स्वभाव पर टिका है। मृदुलता उनके नाम में ही नहीं बल्कि स्वभाव में भी कूट-कूटकर भरी है। छिरहरा बदन, छोटा कद, बड़ी-बड़ी आँखें, अपनी कहानी बयान करती भौहें, कटे कंधे तक बाल, गोरा रंग, गोल चेहरा और दबी-दबी होठों की धीमी मुस्कुराहट मृदुला जी के व्यक्तित्व को चार चाँद लगा देती है। उनका कोमल और मृदु स्वभाव उनके व्यवहार में साफ झलकता है। उनके भीतर एक दृढ़ विचार था। वे जो करने का सोचतीं, करके ही दम लेतीं। उनके व्यक्तित्व को सूर्य के समान दैदीप्यमान बनाती हुई 'शीलप्रभा वर्मा' जी कहती हैं - "श्रीमती मृदुला जी सुदर्शना है। उनका साहित्य तदनुरूप ही सुदर्शन है। श्रीमती गर्ग बोल्ड हैं, उनका लेखन भी बोल्ड है। सहानुभूति न वे चाहती हैं न ही बाँटती हैं। स्वाभिमान उनमें कूट-कूटकर भरा है। वे सत्य के एक अंश को लेकर उसे ग्लोरीफाई नहीं करतीं प्रत्युत उसको उसकी संपूर्णता में लेती हैं। जीवन में दुराव-छिपाव वे जानती नहीं और अपने लेखन को भी उन्होंने उसी के अनुरूप ढ़ाला है। उनकी जैविक तृष्णाओं की सहज, स्पष्ट अभिव्यक्ति भी अपने प्रति बोला गया सच है। एक सूक्ष्म पारदर्शी वेदना-धारा उनके लेखन

और व्यक्तित्व में बहती हुई दिखाई देती है वह कभी हँसी के नीचे छलकती है कभी शुद्ध त्रासदी बनकर उभरती हैं।"[1] मृदुला जी बचपन से ही काफी होशियार छात्रा थीं। उनको छोटी उम्र से ही साहित्य पढ़ने-लिखने का शौक़ था। इसी पठन-पाठन के कारण उन्हें 'योग्यता छात्र वृत्ति' अर्थशास्त्र की एम.ए. परीक्षा में मिली। किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व तभी पूर्ण होता है जब उसके बाह्य एवं आंतरिक व्यक्तित्व का ज्ञान हो। इसी के ज़रिए किसी को व्यक्तित्व में ढ़ाला जा सकता है। मृदुला जी की आंतरिक सच्चाई यह है कि वे बहुत जिज्ञासु और अपने भीतर सिमटे रहनेवाले लोगों में थीं। उनका कोई करीबी दोस्त इसी कारण नहीं था। उनके जो भी दोस्त बने हैं वे स्त्री से ज़्यादा पुरुष थे। ये दोस्त उन्हें महाविद्यालय में पहुँचकर प्राप्त हुए। यहाँ तक आते-आते उनके स्वभाव में काफी बदलाव आ गया। वे शर्मीली, संकोची, लज्जीली से स्वतंत्र, दृढ़ और विवादी हो गईं। वे वाद-विवाद प्रतियोगिता में भाग लेने लगी और इसी दौरान उनकी प्रतिभा निखरकर सबके सामने आई। बड़े माइने में उनका व्यक्तित्व सामाजिक चेतना, विद्रोह की प्रवृत्ति, धुमक्कड़ी वृत्ति, संवेदनशीलता, बाग़वानी का शौक, कलात्मकता, सौन्दर्य प्रेम, रसोई और पकाने के शौकों में बँटा है। इनके बीच लेखन-वृत्ति कभी कमज़ोर नहीं पड़ी। इसमें भी कई आयाम मौजूद हैं। सृजन, पसंदीदा साहित्यकार, रचनाएँ, पुस्तकें, पठन-लेखन में

---

1. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ - डॉ. शीलप्रभा वर्मा - पृ. 41

एकांत-प्रियता, उसके लिए निर्दिष्ट समय, पाठ्य-वस्तु की प्रतिक्रिया और अपने द्वारा रचित रचनाओं का वर्गीकरण आदि।

सामाजिक चेतना

मृदुला जी ने एक स्कूल का संचालन किया था। इसे शुरु करने का ख्याल काफी पहले आ चुका था। यह एक ऐसा स्कूल था जहाँ पर विभिन्न वर्गों के कर्मचारियों के बच्चे पढ़ने आते थे। ये विभिन्न प्रदेशों से आते थे। इसे चलाने का उद्देश्य हिंदी, अंग्रेज़ी और स्थानीय भाषा कन्नड़ में शिक्षा प्रदान करना तथा अन्य प्रदेशों में अपने शुभ कदम विद्यार्थियों द्वारा बढ़वाना था। 1971 में 'बागलकोट' (कर्नाटक) में यह स्कूल चलाया गया था। 1974 तक वे इसे बरकरार रख पाईं, पर बाद में वे दिल्ली आ गईं। परंतु तब तक कर्नाटक सरकार ने उसे स्वीकृति दे दी थी। आज भी यह विद्यालय अपनी जगह पर कायम है। नाट्य-मंचन, उसका आयोजन आदि के लिए मृदुला जी खुद बच्चों के साथ भाग लिया करती थीं तथा कार्यशालाएँ चलाया करती थीं। स्कूल की खासियत थी कि सभी वहाँ घुल-मिल कर रहा करते थे। किसी के प्रति कोई भेदभाव नहीं किया जाता था। एक पोलियोग्रस्त लड़की जिसका कलकत्ता में ऑपरेशन हुआ उसे कई दिनों तक चलने-फिरने से मना किया गया था। पर उसे इस तकलीफ का ज़्यादा अहसास न हुआ क्योंकि हर एक दिन कोई एक बच्चा उसकी सुरक्षा करता था कि किसी भी वजह से वह गिर न पड़े क्योंकि डॉक्टर की यह

खास हिदायत थी। एक नाटक 'मिडसमर नाइट्स ड्रीम' (शेक्सपीयर) में उस अपाहिज लड़की ने भी भाग लिया और पूरी ईमानदारी, विश्वास और आत्मनिर्भरता के साथ अपने लिए एक नई रोशनी का सुरंग बना दिया जिसके द्वारा यह भरोसेमंद सुंदर दुनिया साफ दिखती थी।

विद्रोह की प्रवृत्ति

मृदुला जी इस बात का खुलासा खुद करती हैं कि वे अन्याय नहीं देख सकतीं। अन्याय के खिलाफ विद्रोह करने की प्रवृत्ति उनमें सदैव हिचकौले खाती रहती है। इसी आक्रोश का जीता-जागता नमूना हम उनके साहित्यिक रचनाओं में भी देख सकते हैं। मृदुला जी ने जिस प्रवृत्ति के तले अपने साहित्य का नया बीज बोया था उस बीज का अंकुर फूटकर एक विशालकाय फला-फूला वृक्ष बन चुका है। यह उनकी सही नींव और अन्याय के खिलाफ उठनेवाली आवाज़ की जिज्ञासु प्रवृत्ति का ही नतीजा है। वे खुद लिखती हैं - "किसी भी मूल्य या स्थिति को मैं केवल स्वीकार नहीं कर पाती क्योंकि वह है और सर्वमान्य है, होती आई है और सुरक्षा प्रदान करती है। अपने चारों तरफ घटते अन्याय को देखकर मैं शांत, स्थिर नहीं रह पाती। ....अर्थशास्त्र के मेरे अध्ययन ने इसे और तीव्र किया है। व्यवस्था के लिए शेष और यथास्थिति को लेकर शंका, इन्हीं की नींव पर मेरा लेखन खड़ा है। लगता है हर पल अपने सम्मुख खड़ी हूँ और पूछ रही हूँ। अभी एक

शंका और है उसका समाधान? लिखने के बजाय मैं आंदोलन क्यों नहीं चलाती, लेखक क्यों हूँ, नेता-क्रांतिकारी क्यों नहीं, इस शंका का समाधान कौन करेगा? शायद समय?"[1]

मृदुला जी का कलाकार

कला सबको पसंद होती है परंतु कला की गहरी छाप उनके घर में हम देख सकते हैं। उनके द्वारा सजाई वस्तुएँ देखने लायक हैं। लकड़ी की वस्तु और हस्तकला की चीज़े उन्हें अधिक भाती हैं। अतः कलात्मकता उनके नस-नस में लेखन के बाद, समाया हुआ है।

बाग-बगीचा

मृदुला जी पेड़-पौधों को अपना मूक दोस्त मानती हैं जो उन्हें और उनके जस्बातों को समझता है। उनका यह लगाव कृत्रिम नहीं था। दिल्ली आने के पूर्व उन्होंने अपने आँगन में बगीचे लगवाए थे। उन्हें तो जंगली पौधा भी भा जाता है। जितना अधिक क्षणभंगुर होगा वह उतना ही अधिक अच्छा लगता है। दिल्ली में किराए के मकान की बालकनी में पौधे लगाए थे तो उनके मकान मालिक के कहने पर कि 'क्या जंगल बना रखा है', उन्हें ये पौधे हटाने पड़े थे। उन्हें इस बात का

---

1. सारिका - 16 से 31 अक्टूबर 1984 - साक्षात्कार दिनेश द्विवेदी से मृदुला गर्ग की बातचीत - पृ. 46

बहुत दुःख हुआ था। उनकी बागवानी ने उनके अपने घर की बाल्कनी को 'पौधों वाली बाल्कनी' का नाम दिया। वे पेड़ पौधों के संबंध में कहती हैं - "मूक वे ज़रूर थे पर बधिर नहीं। आवाज़ उठाकर उनसे बोलने की ज़रूरत नहीं होती थी। मेरी हल्की सी हल्की फुसफुसाहट वे सुन सकते थे। ....मेरे हर्ष और विषाद के क्षणों के साक्षी ही नहीं, भावात्मक हिस्सेदार थे वे।"[1]

फूलों के प्रति उनके नज़रिए ने फूलों के प्रति उनके प्रेम को उजागर किया। वे जो भी नए पौधे देखतीं तो उसकी तरफ आकृष्ट हो जातीं। इस इच्छा ने उन्हें इतनी दीवानी बना दिया था कि नागफनी पर खिले फूलों को दिखाने के लिए रात के 12 बजे अपनी बाई को बुला लाई थीं। दोनों उसे इतनी रात गए निहारते जा रहे थे। मृदुला जी को नौकररानी के घर का 12 साल पुराना पौधा इतना भा गया कि उसके संबंध में उन्होंने ये शब्द लिखें - "कैक्टस पर खिले फूल का सौन्दर्य आम फूल से बिल्कुल भिन्न होता है। अवर्णनीय, अनुपम।"[2]

अपने पिता की वजह से लेखिका में घुमक्कड़ी वृत्ति पहले से पनप चुकी थी। उन्हें ऐतिहासिक इमारतों और स्थलों का मुआइना करने का बड़ा शौक़ बचपन से पैदा हो चुका था। पति के साथ एक जगह से दूसरी

---

1. मृदुला गर्ग - रंग ढंग - पृ. 14-15
2. वही - पृ. 32

जगह तबादले ने इस वृत्ति को और पोषित कर दिया। मृदुला जी की कहानियों और उपन्यासों में यायावरी का रुझान दिखाई देता है। 'कठगुलाब' के प्रसंग 'मारियान' प्रकरण में अमेरीका, पेरिस, यूरोप, स्पेन की राजधानी तोलेदो, वेनिस, युगोस्लावाकिया आदि का चित्रण प्रस्तुत करती हैं। जहाँ-जहाँ वे भ्रमण कर चुकी हैं उन सब स्थलों का परिचय उनकी कहानियों में चित्रित है। उदा : जोधपुर, आइहोले, बागलकोट आदि आइहोले के खंडहर, बादामी की गुफ़ाओं में, हिलबिड और कोणार्क के मंदिरों में भी जा चुकी हैं। विदेशी संस्कृति का प्रस्तुतीकरण उन्होंने अपने अनुभवों के स्तर पर किया है। 'रंग-ढंग' नामक लेख के 'यूरोप के रंग' नामक शीर्षक में कई विदेशी जगहों का मुस्तैदी से वर्णन किया है।

संवेदनशीलता

लेखिका की संवेदनशीलता उनके व्यक्तित्व की निशानी है। इसके बग़ैर तो वे अधूरी नज़र आती हैं। लेखन-कार्य और कृतियों में तो यह साफ-साफ नज़र आता है मगर जीता-जागता सबूत 1984 भोपाल गैस कांड में मिलता है। उस घटना ने उनके हृदय को इतना झकझोर दिया था कि उनके कंठ रुद्ध गए थे। तब डॉक्टरी सलाह पर उन्होंने 'ऊँ नमः शिवाय' का पाठ किया था। इससे वे एक बार फिर जी उठीं। इस ज़हरीले प्रभाव से उनकी संवेदनशीलता का पता चलता है। इसका लिखित रूप 'विनाशदूत' कहानी तथा तीन अन्य लेख - 'एक भी चिड़िया नहीं चहचहाएगी',

'कालिदास का विद्रोही मेघ', 'उदासीनता का ज़हर' में मौजूद है। जो उनके 'चुकते नहीं सवाल' कृति में संग्रहीत है। ऐसा लेखिका की संवेदनशीलता के प्रभाव से अंकित हुआ है। घटना के दुष्प्रभाव का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है। "एक सुबह आई कि सूरज के उगने पर एक भी चिड़िया नहीं चहचहाई, ऐसा सन्नाटा घिर आया कि, कान फटने लगे और फिर जब धूप निकली तो न ताल में मछलियाँ ज़िन्दा थीं और न पेड़ों पर फल-फूल, सब कुछ सूख चुका था। हरे पत्ते, लाल गुलाब काले पड़ चुके थे और टहनियाँ सूखकर फिर कभी न फूलने का खौफ़नाक मंज़र पेश कर रही थी।"[1]

रसोई और पक़वान

स्त्रियों का विभाग आम तौर पर रसोई का माना जाता है। मृदुला जी ने इसे भोगा है। लेकिन कामकाजी महिलाओं के लिए यह समय लेने वाला कार्य होता है। लेखिका भी इससे बची नहीं। अपने माइके में लेखिका ने कभी खाना नहीं पकाया था। उनके घर का माहौल इस तरह था कि खाना-पकाने के बारे में सोचा नहीं। यह सोच तब अपनी चरम् सीमा पर पहुँची जब उन्होंने एम.ए. के पहले स्तर पर 'पथेर पांचाली' पढ़ा। इसमें गरीबी से घिरे लड़के ने कहा था कि 'मेरी माँ जैसे गुलगुले कोई नहीं बना

---

1. मृदुला गर्ग - चुकते नहीं सवाल : एक भी चिड़िया नहीं चहचहाएगी - पृ. 121

सकता।' (यह एक मारवाड़ी मिठाई है जो पकौड़े के आकार में होता है।) तब उन्हें अहसास हुआ कि उन्हें भी खाना पकाना चाहिए। इस वाक्य से रु-ब-रु होने के बाद ही वे अपने परिवार के लिए स्वादिष्ट भोजन पकाती थीं। पर उन्हें इतना हुऩर भी न था। कई बार उन्होने अपना हाथ भी जाल डाला था। तब जाकर पता चला कि परिवार को अपने बस में करने का एकमात्र उपाय यही है - 'खाना पकाने का हुनर।'

जब तक वे दिल्ली के दायरे में रहती थीं उन्हें रसोई और नमक मिर्च का पता रहता है पर उस दायरे को पार करते ही सारी चीज़ें भूल जाती हैं। इसी वजह से डायरी साथ रखती हैं ताकि वे घर वापस आ सकें। वापस आते ही फिर उसी नमक-मिर्च पर अटक जाती है।

प्रिय साहित्य और साहित्यकार

मृदुला जी के प्रिय साहित्यकार निम्नलिखित हैं–

1) भारतीय साहित्य और विश्वसाहित्य के लेखक - 14 वर्ष की उम्र तक 'शरतचंद्र' और ऑस्कर वाइल्ड और 14 वर्ष के बाद दास्तोयवस्की और चेखव।

2) समकालीन लेखक - निर्मल वर्मा और जगदम्बाप्रसाद दीक्षित भारत में, और सैलबेलो, गैबरियल, टोनी मॉरिसन।

3) आज की लेखिकाएँ - नमिता सिंह, माधवी कुट्टी, महाश्वेता देवी, मृणाल पाण्डे, मंजुल भगत, चित्रा मुद्गल, सिम्मी हर्षिता आदि।

सृजनात्मक पक्ष

सर्वप्रथम मृदुला गर्ग ने कहानी-लेखन के रूप में लेखन-कार्य आरंभ किया। उनकी कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में पहले छपती थी। बागलकोट (कर्नाटक) में उन्होंने 1970 को लिखना शुरु किया। 1971 में उनकी पहली कहानी 'रुकावट', सारिका में कमलेश्वर के संपादन में छपी। बाद की 'लिली आफ दि वैली', 'दूसरा चमत्कार', 'हरी बिंदी' भी सारिका में ही छपीं। 1972 में दूसरी कहानी 'कितनी कैदें' को 'कहानी' पत्रिका द्वारा पुरस्कार प्राप्त हुआ। दिल्ली में 1974 ई में स्वतंत्र लेखन शुरु किया।

साहित्य-जगत की कड़वी सच्चाई को उजागर करते हुए वे कहती हैं कि उनके ज़माने की पत्रिकाएँ आज नहीं रहीं। उनकी रचनाएँ बिना तहक़ीकात किए तथा उनके जीवन के बारे में जाने सारिका, कहानी, कल्पना, संवाद, नवनीत, धर्मयुग, कहानीकार, रविवार, नटरंग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि पत्रिकाएँ छापती थीं। वे आज के साहित्य के संबंध में लिखती हैं - "पत्रिकाएँ भी कितनी ढेरों सारिका, कहानी, कल्पना, संवाद, नवनीत, धर्मयुग, कहानीकार, रविवार, नटरंग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि। ऐसे संपादक अब कहाँ मिलेंगे? पत्रिकाएँ भी अब वह कहाँ रहीं? अब तो

लेखन को यूँ खाँचों में बाँटा जाने लगा है कि लगता है जल्दी ही रिवाज़ चल निकलेगा कि कहानी के साथ अपनी जीवनी भी संपादक को भेजिए। ....सोचती हूँ अगर 1970 के बजाय मैंने 1990 में लिखना शुरू किया होता तो जाने किस खूँटी पर लटकी पाई जाती?"[1]

वर्तमान काल और पुराने ज़माने की पत्रिकाओं का भेद बताने तथा पुरानी पत्रिका को बेहतर बताते हुए लेखिका ने जनप्रियता, रचनाशीलता और आर्थिक प्राप्ति का श्रेय भी दिया है।

सृजन प्रक्रिया और लेखकीय संघर्ष

सृजनात्मकता को मृदुला जी ने अपनी ज़िन्दगी में अन्य चीज़ों से अधिक महत्त्व दिया। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि लेखिका ने रचना-जगत् में कदम रखने से पहले अपने पैरों को अभिनय और अध्यापन कला से भिगो दिया था। लेकिन उनकी प्यास बुझी तो सिर्फ लेखन से।

1970 में ही अभिनय के क्षेत्र में श्रेय लेखिका ने पाया। 1960-63 तक अर्थशास्त्र की प्राध्यापिका रहीं। लेकिन उन्हें लेखन-कार्य बनावटी लगता था, जिसकी झलक हमें उनके उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका 'मनीषा' में साफ नज़र आती है। 1970 के बाद 1971 मे दोनों रास्तों से रुख मोड़कर एक सीधे पर कठिन रास्ते पर चलीं -

---

1. मृदुला गर्ग - चुकते नहीं सवाल - पृ. 149

साहित्य-लेखन। उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम लेखन को बनाया। इसलिए 1970 के आसपास लेखन कर्म में जुट गईं।

बचपन में ही मृदुला जी ने अपने पिता से विरासत के रूप में साहित्य अपनाया। उन्हें साहित्यकार बनाने का मूल कारण उनके जीवन के अनुभव हैं। उन्होंने हिंदी और अंग्रेज़ी के जो भी साहित्य पढ़े हों चाहे वे अनूदित हो या मौलिक; अनुभव प्राप्त किए। सामाजिक और वैयक्तिक स्तर के अनुभव ही हमारे सामने आए हैं। मानसिक रूप में स्वाधीन इंसान आधुनिकता की दहलीज़ पर आकर हुआ है। मानसिक स्वातंत्र्य, मनुष्य को समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व की याद दिलाता है। उच्छृंखलता के प्रति इंसानी खिंचाव को वे गलत ठहराती हैं। अभिव्यक्ति के लिए इंसान ने भाषा का इस्तेमाल किया था। इसकी चरम् परिणति साहित्य है। रचनाकार ने इसी को अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाया है।

मृदुला जी अभिव्यक्ति की महत्ता बताते हुए कहना चाहती हैं कि जिसप्रकार दुःख और पीड़ा का अनुभव चाहे वह स्त्री की प्रसव-वेदना हो या किसी भी इंसान की अपनी शारीरिक या मानसिक दुःख भरी दास्तान उस पीड़ा का अनुभव, चाहे वह बड़ी हों या छोटी, वह आदमी नहीं कर सकता जिसे पीड़ा की कहानी सुनाई जा रही हो। वही इंसान जिसने यह अनुभव किया है; इस पीड़ा की गहराई का अनुभव कर सकता है। उसी प्रकार साहित्यिक-कृति की जन्म संबंधी पीड़ा का अनुभव वही साहित्यकार

कर सकता है जिसने इसे झेला है। 'रचनात्मक पीड़ा' बिल्कुल वैयक्तिक होती है और साथ ही साथ इतनी भयानक और असह्य भी है। वे अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य को अनिवार्य बताने के साथ सामाजिक व्यवस्था के अन्याय के प्रति अपना आक्रोश भी प्रकट करती हैं। लेखिका लिखती हैं - "जीवन में जो कुछ घटता है, जो गहरे छूता है; व्यथित करता है, जो नाकाबिले बर्दाश्त होता है - सभी तो मन के उन गुप्त कोनों में छिपे होते हैं। जहाँ मेरे परिचित दोस्त, सगे संबंधी झाँककर नहीं देख सकते। सब कुछ बिल्कुल अकेले झेलती चली जाती हूँ। फोड़ों की तरह यह अनुभव दुःखते-टीसते हैं। धीरे-धीरे पकते हैं और आखिर एक दिन फूट ही जाते हैं - कहानी, उपन्यास के रूप में। जो कुछ सोचती हूँ, महसूस करती हूँ, जो व्यवस्था मुझ में वितृष्णा जगाती है, अन्याय जो क्रोध का उफ़ान लाता है, वही तो इन कहानियों और उपन्यासों का कथ्य है।"[1] साहित्य-सृजन के दौरान किसी भी साहित्यकार के दिलो-दिमाग में उतार-चढ़ाव हावी रहता है। इससे बाहर आना ख़ुद उसके लिए नामुमक़िन होता है। "ड्राफ्ट नहीं बनाती हूँ, पर दिमाग में सृजन-प्रक्रिया चल रही होती है, तो खाना-पीना-सोना डिस्टर्ब रहता है। किसी भी चीज़ को जी रहे हैं तो वास्तविक व दिमागी दुनिया में जीते हैं। कभी भी पूरी तरह इस दुनिया में नहीं जीते। किसी विवाह पार्टी में जाकर सिर्फ इन्जॉय ही नहीं होता,

---

1. चर्चित महिला कथाकारों की कहानियाँ - सं. दिनेश द्विवेदी : 'मृदुला गर्ग का आत्मकथ्य' - पृ. 35

उस प्रसंग को कैसे किसी उपन्यास या कहानी में प्रयोग किया जा सकता है यह ध्यान बना रहता है।"[1]

साहित्यकारों में कई किस्म के लोग देखने को मिलते हैं। कुछ अपनी रचना को छोटी फ्रेम में क़ैद कर लेते हैं। और कुछ अपने अनुभव कहते नहीं थकते। वे इसे इतना लंबा खींचते हैं कि उसमें कई पात्र-विपात्र आ जाते हैं। मृदुला जी भी इन साहित्यिक कमज़ोरियों से उभर नहीं पाई। वे भी कहानी लिखते-लिखते उसकी परिधि को छोटी और सीमित मानने लगीं। तब जाकर उन्हें अहसास हुआ कि उन्हें उपन्यास-लेखन की ओर मुड़ना चाहिए। वे उपन्यास में अपनी बात को विस्तार से कहने में ही ध्यान रखती हैं। इस तरह उन्हें साहित्यिक समीक्षा और उतार-चढ़ाव झेलना पड़ा है। स्त्री-लेखिका होने के नाते कई और कठिनाइयाँ भी उनका रास्ता रोके खड़ी रहीं। पर वे थकी नहीं, झुकी नहीं बल्कि अपनी राह पर एकटूक आगे बढ़ती रहीं।

पाठकीय प्रतिक्रिया

यदि कोई साहित्य पाठक पढ़े ही नहीं तो उस साहित्य की पहचान नहीं रह जाती। साहित्यकार की सफलता पाठकीय प्रतिक्रिया में ही

---

1. मनोरमा - जनवरी प्रथम 1993 - जानी मानी लेखिकाओं के जीवन अनुभव - मृदुला गर्ग - पृ. 28

है। लेखक लोकप्रिय तभी होता है जबकि उसका साहित्य पढ़ा जाएँ; उसे अधिक आस्वादित किया जाएँ। लेखिका को पाठकों की कभी कमी नहीं रही। पाठक उसे बार-बार पढ़ते थे और यही उनके बार-बार लिखने का हौसला था।

सृजनात्मक साहित्य का वर्गीकरण

साहित्य का वरदान प्राप्त साहित्यकारों के देदीप्यमान नामों में 'मृदुला गर्ग' का नाम भी सामने आता है। आठवें दशक के सशक्त कथा-साहित्य में उन्होंने साहित्यकार के रूप में अपनी अच्छी और मान्य जगह बनाई है। वे नाटककार, कहानीकार, उपन्यासकार, अनुवादक आदि रूप में ख्याति प्राप्त कर रहीं हैं। उन्होंने दो-तीन नाटक, दो निबंध-संग्रह, संस्मरण आदि लिखकर अपनी बहुमुखी प्रतिभा बनाई है। आत्मकथा के रूप में उन्होंने कोई कृति नहीं रची। मृदुला जी का हिंदी और अंग्रेज़ी पर समान अधिकार था। इसलिए अनुवादक के रूप में भी वे काफी प्रशंसनीय रही हैं। खुद की कहानी का अंग्रेज़ी में, आस्ट्रियन लेखिका विकी बाम के अंग्रेज़ी उपन्यास Man Never Know का हिन्दी में, योगेश गुप्त की कहानियों को भी अंग्रेज़ी में अनूदित करने का अभूतपूर्व कार्य उन्होंने किया है। उनकी अपनी भी काफी अनूदित रचनाएँ हैं। अतः वे कुशल अनुवादक के रूप में निखरी हैं।

पत्र-पत्रिकाओं में भी अनुवाद के अलावा कॉलम लिखने का कार्य किया। 'रविवार' पत्रिका मे 'परिवार' नामक स्तंभ लेखन किया। यही लेख उनके रंग-ढंग की संकलित कृति बनी। उन्होंने शोध कार्य के रूप में जो शीर्षक चुना वह था - "पर्यावरण के ह्रास का बच्चों पर प्रभाव।" उनकी लोकप्रियता का उदाहरण देते हुए उनकी कई साहित्यिक रचनाओं का अंग्रेजी, जर्मन, चेक, रूसी आदि भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है। वे कई पुरस्कारों से भी सम्मानित हुईं।

मृदुला गर्ग एक प्रखर वक्ता हैं। विभिन्न घटनाओं के प्रति वे अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करतीं हैं। कथेतर साहित्य में निबंध, लेखों का संग्रह, यात्रा-वृत्तांत (यात्रा-सस्मरण) के माध्यम से यह बात प्रकट है। एक ही विषय पर व्यक्त भिन्न विचार उनकी रचना में मिलते हैं।

मृदुला गर्ग के साहित्य का वर्गीकरण नीचे प्रस्तुत है :-

I. मृदुला जी का कथा-साहित्य (कहानी और उपन्यास)

II. मृदुला जी का कथेतर गद्य साहित्य (निबंध, नाटक, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत, लेख संग्रह)

III. मृदुला जी का अनुवाद साहित्य (हिन्दी से अंग्रेज़ी, अंग्रेज़ी से हिन्दी में)

I. कथा-साहित्य

कहानी-संग्रह

1) कितनी कैदें - 1975
2) टुकड़ा-टुकड़ा आदमी - 1977
3) डैफ़ोडिल जल रहे हैं - 1978
4) ग्लेशियर से - 1980
5) उर्फ सैम - 1982
6) दुनिया का कायदा - 1983
7) शहर के नाम - 1990
8) चर्चित कहानियाँ - 1993
9) समागम - 1996
10) मेरे देश की मिट्टी, अहा - 2001
11) हरी बिंदी - 2004
12) स्थगित कल - 2004
13) जूते का जोड़, गोभी का तोड़ - 2006
14) संगति-विसंगति (दो वोल्युम) - 1973 से 2003 तक की संपूर्ण कहानियाँ)
15) दस प्रतिनिधि कहानियाँ - 2008
16) स्त्री मन की कहानियाँ - 2010

उपन्यास

1) उसके हिस्से की धूप - 1975

2) वंशज - 1976

3) चित्तकोबरा - 1979

4) अनित्य - 1980

5) मैं और मैं - 1984

6) कठगुलाब - 1996

7) मिलजुल मन - 2009

II. कथेत्तर - गद्य-साहित्य

नाटक

a) एक और अजनबी - 1978

b) जादू का कालीन (बाल नाटक) - 1993

c) तीन कैदें - 1996

लेख-संग्रह

a) रंग-ढंग - (1995)

b) चुकते नहीं सवाल - (1999)

c) कर लेंगे सब हज़म (व्यंग्य लेख) - 2007

d) खेद नहीं है (2006 से 2008 तक के कटाक्ष लेख) - 2010

संस्मरण (पत्रिकाओं में प्रकाशित)

1) दीदी की याद में (साहित्य अमृत 'सितम्बर' 1998 में प्रकाशित)
2) एक महा आख्यान लघु उपन्यास सा निबट गया। (हंस सितम्बर 1998 में प्रकाशित)
3) कुछ अटके कुछ भटके (यात्रा-संस्मरण) - 2006

III. <u>अनुवाद-साहित्य</u>

1) 'उसके हिस्से की धूप' नामक अपने उपन्यास का अनुवाद अंग्रेज़ी में - A touch of sun
2) 'डैफ़ोडिल जल रहे हैं' नामक हिन्दी कहानियों का अनुवाद अंग्रेज़ी में 'defodils on fire' के रूप में किया।
3) योगेश गुप्त की कहानियों का अनुवाद अंग्रेज़ी के 'Sky Scraper' नाम से किया।
4) 'अगली सुबह' नामक अपनी कहानी का अनुवाद 'The Morning After' नाम से किया।
5) आस्ट्रियन लेखिका 'विकी बाम' का सुप्रसिद्ध उपन्यास 'Man Never Know' का हिन्दी अनुवाद 'एक तिकोना दायरा' के रूप में। (अक्षर प्रकाशन, दिल्ली)
6) इजेबेल एँडूस के एकांकी 'ब्राइड़ फ्राम द हिल्स' का हिन्दी रूपांतर स्वयं द्वारा 'दुलहिन एक पहाड़ की'।

I. कथा-साहित्य (कहानी और उपन्यास)

कहानी संग्रह

समकालीन हिन्दी महिला कहानीकारों में आठवें दशक के प्रारंभ से ही विभिन्न विषय, भाव, अनुभूतियों, पीड़ाओं, संवेदनाओं पर मृदुला गर्ग ने जीवंत कहानियों की चाट चख़ाई है। युग की युगीन परिस्थितियों के प्रति सचेत करते हुए लेखिका ने अपनी कहानी के स्त्री पात्रों को परंपरागत सोच से मुक्ति दिलाई है। इसके अलावा इनकी कहानियों में ग़रीब, बेबस, लाचार, मज़दूर, नौकर आदि लोग, जिनकी समाज में कोई इज्ज़त नहीं वे इज्ज़तदार बनने के सपने सँजो रहे हैं। उनका आत्माभिमान जगा और वे अनुकंपा की जगह अधिकार की बात कर रहे हैं। टुकड़ों में बँटे तथा संपूर्ण संबंधों में भी अकेलेपन की त्रासदी से घिरे आम आदमी को और समाज के दोयम दर्जे की गिरफ़्त में फँसे खेमे को उन्होंने ऊपर उठाया और स्त्री की नई काया चित्रित की। प्रतिशोध और तीख़ापन उनके उपन्यासों से ज़्यादा उनकी कहानियों में मौजूद है। वे एक नई समाज-व्यवस्था का निर्माण करना चाहती हैं जिसकी धुरी सामाजिक न्याय एवं एकता हो। कहानी-संग्रहों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया गया है।

1) कितनी कैदें (1975)

प्रस्तुत कहानी-संग्रह में *'विचल'*, *'कितनी कैदें'*, *'झुटपुटा'*, *'लौटना और लौटना'*, *'एक और विवाह'*, *'दुनिया का कायदा'*, *'अंदर-*

बाहर', 'अगर यों होता', 'उनके जाने की ख़बर', 'हरी बिंदी' नामक कहानियाँ सम्मलित हैं।

'कितनी कैंदे' मीना और मनोज के बीच उठते मानसिक उथल-पुथल की कहानी है। दांपत्य में मीना का ठंडापन मौत को सामने देखकर लिफ्ट में टूट जाता है और पति मनोज को पूर्ण रूप से समर्पित हो जाती है। दांपत्य उदासीनता का कारण मीना पर अनेकों लड़कों द्वारा नशे की हालत में किया गया बलात्कार है। यद्यपि अंत सामने पाकर भीतरी घुटन के कारण, मीना अतीत की सच्चाई मनोज को बताकर मुक्ति पाती है पर वहीं दूसरी क़ैद में फँस जाती है। उसके मन में रह-रहकर यह प्रश्न उठता है कि क्या मनोज उसे पूर्ण हृदय से अपना पाएगा? आगे की ज़िन्दगी बिना बैर के निभा पाएगा? *'झुटपुटा'* कहानी एक युवा लड़के केशव का अपनी मौसी में माँ की जगह सामान्य स्त्री को देखना, मौसी के साथ सपनों में शारीरिक आकर्षण को चित्रित करता है। कहानी यह तथ्य अंकित करती है कि रिश्ते कई माइनों में आज अपनी पहचान खोकर महज़ स्त्री-पुरुष बन जाते हैं। कहानी में बिना किसी पाप बोध के मानसिक स्तर पर चलने वाले शारीरिक प्रेम-संबंधों को सफाई से चित्रित किया गया है।

'विचल' उच्चवर्गीय लोगों की विशिष्ट मानसिकता का चित्रण करती है। इसमें रिश्तेदारों की खूबियाँ गिनने से घर सुंदर और खामियाँ गिनने से बद्सूरत लगता है। *'दुनिया का कायदा'* कहानी उच्चवर्गीय एवं

निम्नवर्गीय दोनों प्रकार की ज़िन्दगियों को सामने रखती है। शहर में क्लब, होटल, डांस, कैबरे के साथ गाँव में पुनर्विवाह, मौत पर दिखावा आदि प्रमुख है। 'रक्षा' लेक्चरर को रखकर उसकी तल्ख प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करती है। कहानी में दो दृश्य है। बहू के मरने का मातम और साथ में उसके पति के पुनर्विवाह की तैयारी और दूसरे दृश्य में शराब में डूबे उच्चवर्गीय माहौल में सुनील जैसा पति है जो अपनी पत्नी रक्षा को बॉस मेहता के साथ अपनी तरक्की के लिए नाचने पर बाध्य कर रहा है।

'एक और विवाह' में कोमल के भीतरी मानस को हिला देता मदन का वाक्य है कि 'वाह तुम तो अमरीकन स्त्री को भी मात करती हो काफी मार्मिक है। कोमल के भारतीय प्रेम-कल्पना की थाह कोसों दूर पहली रात में ही बिखर जाती है। *'अगर यों होता'* फ्री सेक्स के कारण अतिशय कल्पनाग्रस्त है। जिम और मधुर अपने-अपने परिवार की ज़िम्मेदारी निभाते हुए एक-दूसरे से प्यार करते हैं। *'अंदर-बाहर'* में मृदुला जी अपने अनुभव चक्र से बाहर आकर गुंडे को शहीद बनाने पर कहानी गढ़ती है। *'उनके जाने की ख़बर'* मनोरंजक कहानी है। पर अत्यंत कल्पना प्रधान होने की वजह से प्रभावशाली नहीं।

'लौटना और लौटना' में विदेश गए बेटे हरीश का अपने देश लौटकर अपने माँ-बाप का न रहकर महज़ पैसे का हो जाना दर्शित है। वह अमेरिकी रहन-सहन को अपना कर जी रहा है। बात-बात पर भारतीय

रहन-सहन पर ताना कसता है। इस कहानी में अर्थाश्रित माँ-बाप और बेटे के संबंधों की निर्ममता प्रस्तुत हुई है।

2) टुकड़ा-टुकड़ा आदमी (1977)

'टुकड़ा-टुकड़ा आदमी' में कुल चौदह कहानियाँ हैं। यह कहानी-संग्रह आम और औसत आदमी की सच्चाई बयान करता है। भारतीय संस्कार को प्रस्तुत करती पत्नियाँ 'दो एक फूल', 'यह मैं हूँ', 'उसकी कराह' तथा 'लिली ऑफ दि वैली' में मिलती हैं तो 'मौत में मदद', 'पोंगल पोली', 'उसका विद्रोह', 'बड़तला' जैसी कहानियों में आम आदमी का संसार नज़र आता है। 'रुकावट' और 'अवकाश' जहाँ दाम्पत्येत्तर संबंधों की कथा कहती है तो वहीं 'टुकड़ा-टुकड़ा आदमी', 'दूसरा चमत्कार' तथा 'मधुप पत्रकार' के माध्यम से पूँजीपतियों तथा उच्चवर्ग की औपचारिक संस्कृति पर प्रहार किया गया है। 'गुलाब के बगीचे तक' मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन की कहानी है जिसका संघर्ष सेवानिवृत्ति के बाद भी चलता रहता है।

3) डैफोडिल जल रहे हैं (1978)

'डैफोडिल जल रहे हैं' संग्रह में तीन कहानियाँ संकलित हैं। 'डैफ़ोडिल जल रहे हैं', 'मेरा', और 'स्थगित कल'। इस कहानी संग्रह में जीवन में मृत्यु, सौंदर्य और जीवन के अस्तित्व की सार्थकता व्यक्त की गई है। प्रथम कहानी मृत्यु के अस्तित्ववादी बोध को प्रेम, सौंदर्य के पुष्टिकरण

के माध्यम से प्रस्तुत करती है। प्रस्तुत कहानी में मृत्यु की भयंकर विभीषिका के बीच 'वीना' जीवन और सौंदर्य से भरे दांपत्य प्रेम को सीख रही है।

'मेरा' कहानी पति-पत्नी के बीच आए तनाव और अपने-अपने अधिकारों की अहं भावना से जूँझते दूर होते रिश्ते को प्रस्तुत करती है। 'महेंद्र' बच्चा नहीं चाहता किंतु 'मीना' चाहती है। इसी तनाव के बीच एक नई मीना का दृढ़ निश्चय सामने आता है। नारी के निर्णय लेने की क्षमता और नई बदलती भूमिका स्पष्ट होती है। 'स्थगित कल' में मृत्यु चेतना और जीवन अस्तित्व की अनर्थकता की दार्शनिक बात बड़ी कलात्मकता के साथ कही गई है।

4) ग्लेशियर से (1980)

प्रस्तुत संग्रह में सोलह कहानियाँ संग्रहीत हैं। नारी के प्रणयभावों का अंकन *'ग्लेशियर से'* तथा *'झूलती कुर्सी'* कहानियों में किया गया है। *'टोपी'* कहानी में गांधीवादी अवसरवादिता तथा सशस्त्र क्रांतिकारी दुर्दशा दोनों का चित्रण है। अविजित बंसल व्यवस्था को न तो त्यागता है और ना ही स्वीकारता है। *'तुक'* दांपत्य जीवन के तनावों को व्यक्त करती है। 'नरेश और मीरा' के बीच पति-पत्नी का तुक नहीं। व्यवसायिकता और भावकुता के बीच तनावों की सृष्टि होती है। यहाँ मीरा पति से बहुत प्यार

करती है। उसकी खुशी के लिए नापसंद खेल ब्रिज भी खेलती है। यहाँ एकतरफा प्रेम है। *'होना'* कहानी *'चित्तकोबरा'* उपन्यास के समान चरम् प्रेम की अवस्था का चित्रण करती है। नायिका के लिए यह प्रेम ज़िन्दगी बन गया है। उसके होने और न होने में जीवन-मृत्यु का अंतर है। *'उल्टी धारा'* भारतीयों के कल्पना लोक में विचरण करने की सामान्य सी कथा है। जहाँ *'अलग अलग कमरे'* जीवन-मूल्यों के ह्रास की कहानी है। पर *'खरीदार'* नारी में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और निर्णय क्षमता की है। *'प्रतिध्वनि'* अलग ही शैली की कहानी है। व्यक्ति अपनी अस्मिता और विवेक के प्रति सचेत नहीं। किसी भी मामले में सोच से काम नहीं लेता। चाहे धर्म हो या क्रांति। अतः सोच के बग़ैर शंका कैसे पैदा होगी? *'संज्ञा'* की नायिका को उस आदमी से पहचान मिली है जो उसे चाहता है। तब से वह आत्मसाक्षात्कार करना शुरू कर देती है। *'सार्त्र* ने कहा' कहानी उन जैसे हज़ारों बौद्धिक एवं बुद्धिजीवियों को सामने लाती है जो सामान्यों के लिए बौद्धिक चर्चा तो करते हैं। सहानुभूति तो देते हैं परंतु उन्हें न तो मन में सहानुभूति है और ना ही संवेदना। *'एक चीख का इंतज़ार'* में लेखिका ने नारी की प्रसव पीड़ा को शब्दबद्ध किया है। मृदुला गर्ग का कथाकार रूप यह संग्रह प्रस्तुत करता है। *'खाली'* कहानी स्त्री को नई राह पर चलने के लिए प्रेरित करती है *'गूंगा कवि'* के गोपालदास तीन भाषाओं के ज्ञाता होकर भी गूँगे हैं। *'अदृश्य'* यंत्रवद् चलती वैवाहिक जीवन की जड़ता प्रस्तुत करती है।

'अंधकूप में चिराग' अंधकार के सांये को किस्मत मानने वालों के प्रति गहरी संवेदना है।

5) उर्फ सैम (1982)

यह संकलन विषयों में वैभिन्य रखता है। इसमें पति-पत्नी संबंधों की भावहीनता, अप्रवासी भारतीयों की व्यथा, वृद्धों की जिजीविषा, आर्थिक विषमता, स्त्री-दमन शोषण आदि विषयों पर केन्द्रित कहानियाँ है। मानवतावादी दृष्टि को अभिव्यंजित करने वाली कहानियों में *'अगली सुबह'* और *'विनाशदूत'* महत्त्वपूर्ण है। इसमें कुल बारह कहानियाँ हैं। *'उर्फ सैम'* विदेशों में बसे भारतीयों की कहानी है जो भारत में ही अपनी जड़े जमाना चाहते हैं। *'वितृष्णा'* और *'जिजीविषा'* दांपत्य संबंधों को उजागर करती हैं। *'अगली सुबह'* 1984 में हुई इंदिरा गाँधी की हत्या के बाद देश में फैले सांप्रदायिक तनाव को चित्रित करती है। *'बाँसफल'* एक स्त्री (दादी) की अपने ही घर में दयनीय अवस्था का चित्रण है। *'नकार'* की कथावस्तु *'मैं और मैं'* से मिलती है। चित्रकार सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि है और 'वह' उच्चवर्गीय। उस चित्रकार के चित्रों की पारखीं बुद्धिजीवी वर्ग है 'वह'। *'बेनकाब'* आदमी के चेहरे से मास्क नोचकर बेनकाब करती है। यह आर्थिक विषमता की कहानी है। कहानी में डाकू जो भीतर से इंसान है परिस्थितियों की वजह से डाकू बनता है। 'नहीं' कहानी के पात्र खेमू के माध्यम से बाल मज़दूरी का ज़िक्र किया है। *'मिज़ाज़'* कहानी स्पष्ट करती

है कि व्यक्ति का मिज़ाज़ परिस्थितियों की देन है। *'चौथा प्राणी'* वी.एन. सरकार अकेले पुरुष पात्र हैं। उनका *रोब* पूरी कहानी में होने के साथ वृद्धों की मनोदशा का सूक्ष्म अंकन हुआ है। *'विनाशदूत'* भोपाल गैस कांड पर कवियों की गैर ज़िम्मेदाराना हरक़त को बयान करता है। इस भयानक कांड के होने पर भी वे प्रेम के ही गीत गा रहे हैं।

6) दुनिया का कायदा (1993)

'दुनिया का कायदा' मृदुला गर्ग के अन्य संग्रहों से ली गई कहानियों का संकलन है। इस संग्रह में 'सुबह भी अंधेरे से खाली नहीं' और 'क्षुधा-पूर्ति' मात्र नई कहानियाँ हैं। बाकि सब 'कितनी कैदें' कहानी-संग्रह से ली गईं हैं। इस कहानी संग्रह में समसामयिक जीवनानुभवों के भिन्न पहलुओं के कड़वे-मीठे विचारों को चित्रित किया गया है। 'सुबह भी अंधेरे से खाली नहीं' में वर्गीय चेतना की अभिव्यक्ति है। पुलिस विभाग की क्रूरता पर तीखा प्रहार किया गया है तथा 'क्षुधा-पूर्ति' जिसमें मनुष्य की कभी न खत्म होने वाली भूख का ज़िक्र है। 'क्षुधा-पूर्ति' इससे पहले किसी भी संग्रह में संकलित नहीं हुई। परंतु बाद के 'जूते का जोड़ गोभी का तोड़' नामक कहानी-संग्रह में 'क्षुधा-पूर्ति' पहली कहानी के रूप में संकलित हुई है। इसमें राजनीतिज्ञों की बढ़ती भूख को औपनिवेशिक दौर में चित्रित करने का प्रयास है। हालांकि विषय अपवादात्मक लगता है फिर भी कन्हाई की

क्षुधा का शांत न होना बढ़ती आर्थिक माँग तथा अधिकार लिप्सा रूपी भूख का प्रतीक है। जिसका नशा चढ़ता जाता है पर भूख शांत नहीं होती।

7) शहर के नाम (1990)

प्रस्तुत संग्रह नारी के बहुरंगी रूप को सामने लाते हुए नारी दमन, संघर्ष, विद्रोह एवं स्वतंत्रता की छटपटाहट पूरे द्वंद्व के साथ प्रस्तुत करता है। नारी के प्रणय भाव 'अक़्स' एवं 'विलोम' में वर्णित हैं तो 'अनाड़ी', 'तीन किलो की छोरी' शोषित और दलित नारी की व्यथा कथाएँ हैं। 'बाहरीजन', 'रेशम', 'शहर के नाम' उच्च मध्यवर्गीय नारी जीवन से संबंधित कहानियाँ हैं। 'चकरघिन्नी' तथा 'वह मैं ही थी' रचनाएँ भी स्त्री जाति के अस्मिता और त्रासदी को व्यक्त करती है।

8) चर्चित कहानियाँ (1993)

प्रस्तुत कहानी संग्रह मृदुला गर्ग की चुनिन्दा चर्चित सोलह कहानियों को लेकर संकलित हुआ। लेखिका मानती हैं कि कोई भी कहानी इसलिए चर्चित होतीं हैं क्योंकि वह या तो पाठकों की दक़ियानूसी मान्यताओं पर चोट करती है या फिर इस तृप्ति की वजह से कि लेखक ने उसके दिल की बात कही है। इस संग्रह में अपनी दृष्टि से श्रेष्ठ कहानियाँ रखकर अन्य विद्वानों के मत भी प्रस्तुत किए हैं। अपनी कहानियों पर मृदुला जी ने अपनी ओर से टिप्पणियाँ भी दीं हैं।

9) समागम (1996)

इस संग्रह का प्रकाशन 1998 में हुआ। इसमें आठ कहानियों के अलावा हिन्दी कहानी पर लेखिका के दो लेख भी हैं। कहानी संग्रह की शुरुआत में 'जोखिम उठाने से कतराती आधुनिक हिन्दी कहानी' तथा अन्त में 'नारी और साहित्य-स्वभाव, संस्कार या स्वयं अर्जित सच' है। मृदुला जी ने अप्रवासी भारतीयों के विदेश जाने से संबंधित तीन श्रेष्ठ कहानियाँ - 'बर्फ बनी बारिश', 'छत पर दस्तक' तथा 'बड़ा सेब काला सेब' लिखी हैं। 'बीच का मौसम' में महानगरीय नारी के व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को उजागर किया गया है। 'मीरा नाची' बंदिशों में रहनेवाली एक लड़की की कहानी है। 'बाकी-दावत' आर्थिक विषमता पर आधारित है। 'जेब' एवं 'समागम' भी संग्रह में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

10) मेरे देश की मिट्टी, अहा (जनवरी 2001)

1992 के बाद मृदुला गर्ग की कहानियों में व्यंग्य और फंतासी के पुट बढ़ गए हैं। या कहें कि पार्श्व से निकलकर वे मंच पर आ गए हैं और भूमिकाएँ निभाने लगे हैं। हास्य-व्यंग्य व फंतासी का उद्गम त्रासदी में होता है। त्रासदी को झेलकर, निर्वेद तक पहुँचने के लिए, जिस निस्संगता की ज़रूरत होती है, वह इन्हीं के माध्यम से अर्जित की जाती है।

मृदुला गर्ग की कहानियाँ इसी निस्संगता को अर्जित-सर्जित करती हैं और इस प्रक्रिया में जीवन के समरूप नाटक में से होकर गुज़रती हैं। हम सब जानते हैं कि जब जीवन जीना अत्यधिक कष्टकारक हो जाता है, तब जीने का नाटक करना पड़ता है। इस नाटक में त्रासद को भी कौतुक के साथ झेलना पड़ता है। 'मेरे देश की मिट्‌टी, अहा' मृदुला जी की अन्य संग्रहों से ली गई कहानियों का संकलन है। इसका प्रकाशन 2001 जनवरी में हुआ।

11) हरी बिंदी (2004)

इस संग्रह में अठारह कहानियाँ संग्रहीत हैं। *'हरी बिंदी', 'विचल', 'एक और विवाह', 'अगर यों होता', 'उनके जाने की खबर', 'अंदर-बाहर', 'दुनिया का कायदा', 'ग्लेशियर से', 'झूलती कुर्सी', 'टोपी', 'तुक', 'उल्टी धारा', 'खरीदार', 'सार्त्र कहता है', 'अलग-अलग कमरे', 'खाली', 'अंधकूप में चिराग', 'एक चीख का इंतज़ार'*। 'हरी बिंदी' स्त्री स्वातंत्र्य की ओर इशारा करता है। अन्य कहानियाँ भी जिजीविषा तथा मानवीय संवेदनाओं से सराबोर हैं। इसके साथ-साथ व्यंग्य एवं हास्य भी है। 'सार्त्र कहता है' कहानी प्रखर व्यंग्य से कोंचती है। बुद्धिजीवियों पर कहानी में एक मुखर टिप्पणी है : "जलजलों से नावाकिफ़ इनके दिल हमेशा एक रफ्तार से धड़का करते हैं। आँखों के सामने मर रहे आदमी के चेहरे से फिसलकर इनकी निगाहें दूर देखा करती हैं। सार्त्र कहता है? मार्क्स ने क्या कहा? इसे

मरता देखकर सार्त्र क्या कहेगा..... मार्क्स क्या कहता..... हमें क्या कहना चाहिए.....”[1]

12) स्थगित कल (2004)

‘स्थगित कल’ नामक कहानी संग्रह में पुराने संग्रहों में छपी कहानियाँ ही हैं। यह लेखिका की चार लंबी कहानियों का संकलन है। ‘स्थगित कल’, ‘डैफोडिल जल रहे हैं’, ‘मेरा’, ‘कितनी कैदें’। ये कहानियाँ अपनी प्रगाढ़ अनुभूतियों और स्थापनाओं के कारण बहुचर्चित रही हैं। इन कहानियों में मृत्यु एवं जीवन के गहन गुंजलक हैं जो जिजीविषा के वेग से मानवीय भावनाओं का आवेग जगाते हैं।

13) ‘जूते का जोड़ गोभी का तोड़’ (2006)

इस संग्रह में संकलित कहानियों में पुरुष मन को समझने का एक प्रयास है। मृदुला गर्ग ने पुरुषों को आम ज़िंदगी से एक इंसान की तरह जूँझते देखा है न कि एक फेमिनिस्ट के चश्मे से उन्हें सही-गलत के पैमाने पर तोलने की कोशिश की है। इंसान की कमज़ोरी उसका मन है। वही उसे लाचार बनाता है। इन कहानियों में रोज़मर्रा की परेशानियों से जूझते, अपनी ही बनाई उलझनों में उलझते, हक़ीक़त से टकरा कर सपनों को टूटते हुए देखते समाज की तस्वीरें हैं। कोमल मानवीय संवेदनाओं पर

---

1. मृदुला गर्ग - हरी बिंदी - सार्त्र कहता है - पृ. 126

मृदुला गर्ग की गहरी पकड़ इस कहानी-संग्रह में परिलक्षित है। इन कहानियों की विशेषता यही है कि इन्हें पढ़ते हुए कभी अनायास होठों पर मुस्कान खिंच जाती है कभी मन सोच में डूब जाता है तो कभी उदासी से घिर जाता है। मगर एक पल को भी पाठक को ये अपने मोहपाश से मुक्त नहीं होने देती।

प्रस्तुत कहानी-संग्रह में कुल पन्द्रह कहानियाँ संकलित हैं जिसमें *'जूते का जोड़ गोभी का तोड़'* विशेष उल्लेखनीय है। अन्य संग्रहीत कहानियाँ हैं - *"क्षुधा-पूर्ति', 'उनके जाने की ख़बर'*, *'टुकड़ा-टुकड़ा आदमी'*, *'गुलाब के बगीचे तक'*, *'उसका विद्रोह'*, *'मधुप पत्रकार'*, *'स्थगित कल'*, *'उल्टी धारा'*, *'उर्फ़सैम'*, *'उधार की हवा'*, *'बेनक़ाब'*, *'जेब'*, *'नेति-नेति'*, *'कलि में सत'* और *'जूते का जोड़ गोभी का तोड़'*।

14) संगति-विसंगति (दो वोल्युम) - (1973 से 2003 तक की संपूर्ण कहानियाँ)

प्रस्तुत संग्रह मृदुला जी की संपूर्ण कहानियों का संकलन है। यह दो वोल्युम में प्रकाशित है। 1973 से 2003 तक की संपूर्ण कहानियाँ इसमें मिलती है।

15) दस प्रतिनिधि कहानियाँ (2008)

इस संग्रह में मृदुला जी ने अपनी दस सुप्रसिद्ध कहानियों को प्रस्तुत किया है। वे कहानियाँ हैं : *'ग्लेशियर से'*, *'टोपी'*, *'शहर के नाम'*,

'उधार की हवा', 'वह मैं ही थी', 'उर्फ़ सैम', 'मंज़ूर-नामंज़ूर', 'इक्कीसवीं सदी का पेड़', 'वो दूसरी' तथा 'जूते का जोड़ गोभी का तोड़'।

16) स्त्री-मन की कहानियाँ

प्रस्तुत कहानी संग्रह में कुल अठारह कहानियाँ संकलित हैं। स्त्री-विमर्श के संबन्ध में असंख्य किताबें छप रही हैं। मृदुला गर्ग का मानना है कि स्त्री विमर्श के सिद्धांत गढ़ने से पहले हमें स्त्री अनुभव पर गहराई से सोचना चाहिए क्योंकि रचना के सूत्र अनुभव में मिलते हैं, विमर्श में नहीं और विमर्श के सूत्र अनुभवजन्य रचना से निकलते हैं। इस संग्रह में संग्रहीत कहानी 'वह मैं ही थी' स्त्रियों द्वारा प्रसव पर लिखी पहली कहानियों में से एक है। 'तीन किलो की छोरी' कहानी सफेद क्रान्ति के अंतर्गत गुजरात में विकसित होते एक आधुनिक कस्बे की है। 'अनाड़ी' शहरी झुग्गी बस्ती में रहने वाली छोटी, कामकाजी ग़रीब बच्ची की कहानी है। 'क़िस्सा आज का' काम की तलाश में गाँव से शहर आई औरतों की कहानी कहती है जिनमें बड़े-छोटे दोनों उम्र की औरते हैं। 'मीरा नाची' शहरी मध्यवर्गीय स्कूली बच्ची की कथा है जिसके अन्तर्मन में आसमान छूने की ललक है। पर पारिवारिक रूढ़ि ने दरवाज़े तक पर ताला लगा रखा है। 'हरी बिन्दी, 'चकरघिन्नी', 'तुक', 'ग्लेशियर से', 'यह मैं हूँ' विवाहित स्त्री की कथा कहती है। 'यह मैं हूँ' एक अभावग्रस्त, अधेड़ पर जिजीविषा से सम्पूर्ण काम-काजी औरत की कहानी है, जो जीवन की त्रासद स्थितियों से जूझने

का साहस जुटाने के लिए सपनों की दुनिया रच लेती है। 'एक चीख का इन्तज़ार' भी शिशु-जन्म को कथ्य बनाती है। 'समागम' कहानी मातृत्व के अनेक आयामों को खोलती है। अन्तिम चार कहानियाँ 'रेशम', 'साठ साल की औरत', 'वो दूसरी', 'तीन लम्हे' बुढ़ापे की ओर बढ़ती विलक्षण स्त्रियों की कहानियाँ हैं। मृदुला जी कहती हैं - "इस संग्रह में इन कहानियों को संकलित करने का प्रयोजन यह है कि यथासम्भव, एक वय से दूसरी पर जाती हुई नारी के मन की समग्र तस्वीर पेश हो सके। ज़ाहिर है तस्वीर इतनी बहुआयामी है कि भरसक कोशिश के बावजूद, कुछ छूटा रहेगा। पर वह उसकी असफलता नहीं, सफलता का द्योतक होगा।"[1]

उपन्यास

मृदुला गर्ग कहानी-लेखन के साथ उपन्यास-लेखन में भी अभूतपूर्व योगदान देती हैं। उन्होंने अब तक सात उपन्यासों की रचना करके साहित्य में अपनी उत्तम पहचान बनाई है। *'उसके हिस्से की धूप' (1975), 'वंशज' (1976), 'चित्तकोबरा' (1979), 'अनित्य' (1980), 'मैं और मैं' (1984), 'कठगुलाब' (1996)* तथा लंबे अंतराल के बाद *'मिलजुल मन' (2009)*। इन उपन्यासों में वे अपनी बात विस्तार से कहते हुए यह मानती हैं कि उपन्यास विस्तृत, श्रमसाध्य और चुनौतीपूर्ण विधा है।

---

1. मृदुला गर्ग - स्त्री मन की कहानियाँ - किताब के आखिरी गत्ते पर से

मृदुला गर्ग के उपन्यास अपनी गुणवत्ता में स्त्री को सहज मानवीय रूप में चित्रित करना चाहते हैं और स्त्री-अस्तित्व को स्वीकारते हैं। जीवन की वास्तविकताओं से उनके उपन्यास जुड़े हैं। उनके प्रत्येक उपन्यास का संक्षिप्त परिचय आगे दिया गया है।

उसके हिस्से की धूप (1975)

'उसके हिस्से की धूप' का प्रकाशन सन् 1975 में हुआ। प्रस्तुत उपन्यास तीन पात्रों - 'मनीषा', 'जितेन' और 'मधुकर' के इर्दगिर्द घूमता है। इस उपन्यास में पति जितेन की व्यस्तता पर पत्नी मनीषा का दाम्पत्य किस तरह दाम्पत्येत्तर संबंधों में परिणित हो जाता है और दोनों के बीच उदासीनता का निर्माण हो जाता है और बात तलाक़ तक पहुँच जाती है आदि दर्ज है। परंतु विवाह मनीषा की स्वतंत्रता का पर्याय नहीं बनता। अतः नायिका को निजता का अनुभव तब होता है जब उसकी अपनी कृति का सृजन होता है। 'स्व' की तलाश करती नायिका मनीषा अपने दोनों पति जितेन व मधुकर से असंतुष्ट है। वस्तुतः 'मध्यप्रदेश साहित्य परिषद्' द्वारा पुरस्कृत उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' स्त्री स्वतंत्रता का प्रचारक है। इसे 'मध्यप्रदेश साहित्य परिषद्' से 'महाराजा वीरसिंह' पुरस्कार सन् 1975 को प्राप्त हुआ। यह अंग्रेज़ी में खुद मृदुला जी ने 'A Touch of Sun' नाम से अनूदित किया है।

वंशज (1976)

'उसके हिस्से की धूप' की सफलता के ठीक एक साल उपरांत मृदुला गर्ग ने 'वंशज' से उपन्यास को एक नई दिशा दी। दो पीढ़ियों का वैचारिक संघर्ष, टकराहट, द्वन्द्व तथा अंतराल को इस उपन्यास ने वाणी दी। 'वंशज' विरासत के तौर पर दी गई अंग्रेज़ों की नौकरशाही व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध तथा पाश्चात्य आचार-विचार एवं अनुशासन के कायल जज शुक्ला साहब की वैचारिक संघर्ष की गाथा गाता है। सुधीर नई पीढ़ी का है और नौकरशाही का विरोध करता है। शुक्लासाहब पाश्चात्य रीतियों से प्रभावित हैं और अनुशासन को अपनाते हैं। यह संघर्ष वाक़ई जीवंत है। अतः प्रस्तुत उपन्यास 'वंशज' ज्वलंत संघर्ष को पेश करता है।

चित्तकोबरा (1979)

'चित्तकोबरा' लोकप्रिय होने के साथ-साथ विवादास्पद भी है। इसका अनुवाद जर्मन भाषा में 'Die Gefleckte Kobra' नाम से हाइडीमारी एवं इंदुप्रकाश पांडेय द्वारा 2000, 2004 में हो चुका है। 'चित्तकोबरा' का अंग्रेज़ी अनुवाद स्वयं लेखिका द्वारा हुआ। लेखिका ने अपने इस प्रतीकात्मक उपन्यास को अपने पति को 'आनंदप्रकाश गर्ग' को समर्पित किया।

प्रेम, विवाह और सेक्स का कथ्य लेकर, चित्तकोबरा आगे बढ़ता है। स्त्री-पुरुष के संवेदनशील संबंधों को इसमें व्याख्यायित एवं

निरुपित किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में भी 'उसके हिस्से की धूप' के समान नायिका 'मनु' के द्वन्द्वों की परिसमाप्ति भी सृजन में होती है। इसमें नायिका का भावनात्मक द्वन्द्व मुखर हो उठा है। मृदुला जी इस उपन्यास के ज़रिए आलोचकों की प्रशंसा और निंदा दोनों की पात्र बनी हैं। कारण है उनका खुले सेक्स का बेबाक वर्णन। परंतु ऐसा करके उन्होंने अपनी साहसिकता का ही परिचय दिया है। नैतिकता-अनैतिकता के परे स्वच्छन्द स्त्री-पुरुष संबंधों को प्रस्तुत किया गया है। और यही कारण था कि उपन्यास विवादों के घेरे में आ गया। फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का सिद्धांत इस लेखन की कड़ी रही है। 'मनु', 'महेश' और 'रिचर्ड' के त्रिकोणात्मक प्रेम-संबंधों की गाथा है 'चित्तकोबरा'। यह 'उसके हिस्से की धूप' की अगली कड़ी भी है।

अनित्य (1980)

प्रस्तुत उपन्यास 'वंशज' के ठीक एक साल बाद छपा। सन् 1980 में प्रकाशित 'अनित्य', अनित्यतता को सूचित करता है। आज़ादी की ख़ातिर मर मिटे अहिंसावादी तथा आतंकवादी कहे जाने वाले हिंसात्मक आंदोलनकर्ता (क्रांतिकारियों) की पृष्ठभूमि पर यह रचना हुई। राजनीतिक चेतना से युक्त उनका अनित्य, गाँधीजी की अहिंसा नीति की तुलना में भगतसिंह की क्रान्तिकारी रुख का समर्थन करता है। परंपरागत स्त्री-पुरुष संबंधों से हट कर रचा गया 'अनित्य' राष्ट्रीय आन्दोलन और राजनीतिक

विसंगतियों का सशक्त चित्र पेश करता है। गाँधीवादियों की मौक़ापरस्ती तथा स्वराज्य का मार्ग बदल जाने का सच्चा चित्रण मृदुला गर्ग ने किया। पिछले पचास वर्षों के तमाम पहलुओं को चाहे वह राजनीतिक हो या सामाजिक; सांस्कृतिक दुर्गति या धार्मिक अवमूल्यन सबका चित्र मृदुला जी का 'अनित्य' पेश करता है। यह मृदुला जी का बृहद उपन्यास है। हालांकि चंद वारदातें इतिहास से मेल नहीं खातीं। फिर भी उनका यह उपन्यास श्रेष्ठ सिद्ध हुआ है।

'अनित्य' में लेखिका ने राजनीतिक विसंगतियों, असफलताओं तथा विचारहीनता पर प्रकाश डालते हुए अपनी प्रतिबद्धता तथा जागरूकता दर्शायी है। मृदुला जी कहती हैं कि 'अनित्य' लिखने की प्रेरणा उन्हें नेहरु जी की आत्मकथा और भगतसिंह की क्रांतिकारिता से मिली। नेहरु जी की द्वन्द्वग्रस्त मानसिकता अविजित में है। इसका अंग्रेज़ी में 'हाफ़ वे टु नोव्हेयर' नाम से अनुवाद शीघ्र प्रकाश्य होगा।

मैं और मैं (1980)

प्रस्तुत उपन्यास 'मैं और मैं' अनित्य' के प्रकाशन के चार साल के बाद सन् 1980 में प्रकाशित हुआ। मृदुला गर्ग का यह पाँचवा उपन्यास है और इसमें अहं की तुष्टि में संतोष पानेवाली लेखिका के आर्थिक एवं नैतिक शोषण का ज़िक्र है। एक निम्नवर्गीय लेखक कौशल कुमार अपने

अधिकार बोध के कारण असत्य का सहारा लेकर लेखिका का शोषण करता है। 'मैं और मैं' झूठ और फरेब की फैंटसी की दुनिया गढ़ता है। आर्थिक अभावों में चाहे वह अच्छा लेखक ही क्यों न हो, कितना गिर जाता है इसका उल्लेख कौशल कुमार के माध्यम से हुआ है। कहानी का कथ्य दोनों लेखकों के अहं की टकराहट है। नायिका माधवी के रूप में एक 'ब्लैकमेल' की गई लेखिका की दशा वर्णित है। एक गृहिणी के रूप में 'मैं' घर और परिवार की ज़िम्मेदारियों का वहन करती है और एक लेखिका के रूप में 'मैं' अपने दायित्वों का भी निर्वाह करती है। एक लेखिका के रूप में स्त्री अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति में धूर्त एवं मक्कार पुरुष के जाल में फँसती है और आर्थिक और मानसिक तौर से द्वन्द्वग्रस्त होती है। इस संघर्ष से 'मैं' का व्यक्तित्व निखर आया है। यह उपन्यास मृदुला गर्ग की कहानी 'नकार' से मिलता-जुलता कथ्य पेश करता है।

कठगुलाब (1996)

'कठगुलाब' नारी के दमन-शोषण के साथ-साथ नारी-संघर्ष एवं चेतना को भी दर्शाता है। स्मिता, मारियान, नर्मदा, असीमा तथा विपिन इन पाँचों पात्रों के साथ उपन्यास का खण्ड विभाजित है जिसे एक माला में पिरोकर 'कठगुलाब' का निर्माण हुआ है। स्त्री पर पुरुष द्वारा होनेवाला आर्थिक, शारीरिक और बौद्धिक शोषण और उसी के फलस्वरूप स्त्री की प्रतिक्रिया, आत्मनिर्भरता तथा पुरुष सत्ता के बराबर पहुँचने की होड़ करती

छवि उपन्यास का कथ्य है। यह उपन्यास मृदुला गर्ग की चरम् उपलब्धि है। किसी ने इसे 'नारीवादी' कहा तो किसी ने 'उत्तराधुनिक'। किसी की दृष्टि में 'नवउपनिवेशवादी' है तो कोई इसे 'पुरुषप्रधानता विरोधी उपन्यास' कहता है। पश्चिमी फेमिनिज़्म का प्रभाव भी उपन्यास पर खूब पड़ा है। सन् 2004 में 'कठगुलाब' को 'व्यास सम्मान' प्राप्त हुआ। 'कठगुलाब' का अनुवाद अंग्रेज़ी में Country of Goodbye's नाम से काली फॉर विमेन द्वारा हुआ। यह सन् 2003 में प्रकाशित हुआ। मराठी में भी 'कठगुलाब' नाम से ही यह अनूदित एवं प्रकाशित है। इसकी अनुवादक वनिता सावंत हैं।

मिलजुल मन (सितंबर 2009)

सन् 2009 में प्रकाशित 'मिलजुल मन' मृदुला गर्ग का नवीनतम उपन्यास है। इस उम्र में 'मिलजुल मन' जैसा उपन्यास उनकी ज़िंदादिली का मिसाल है। अतीत और वर्तमान घटना क्रम के बीच घुसपैठ उपन्यास की विशेषता है। इस उपन्यास की दो नायिकाओं में से एक मोगरा ने अपने पिता बैजनाथ जैन के जीवन व्यवहारों से पचास के दशक के बीच के वर्ग की ज़िन्दगी का ज़िक्र करते हुए रफ्ता-रफ्ता आते सामाजिक बदलाव और स्वतंत्र भारत में उसकी छवि की बारीकी से पड़ताल की है। इन्हीं हालातों के बीच 'मोगरा' अपने बचपन के चरित्रों को भी देखती है। उपन्यास की दूसरी नायिका गुल की शख़्सियत का विकास इन्हीं चरित्रों के बीच हुआ। इन चरित्रों में डॉ. कर्णसिंह, मामाजी, जुग्गी चाचा, बाबा, दादी और

कनकलता आदि अतिस्मरणीय खासियत रखते हैं। उपन्यास की गुल एक लड़की, मनुष्य, प्रेमिका, पत्नी और कथाकार के भिन्न किरदारों में तफ़सील से नज़र आती है। ये किरदार उनके नज़दीकी रिश्तों में शामिल हैं। इन रिश्तों में 'मिलजुल मन' की नायिकाएँ खुद मृदुला गर्ग और उनकी बहन मंजुल भगत है। गुलमोहर मंजुल भगत और नरेटर मृदुला गर्ग हैं।

'मिलजुल मन' आत्मकथात्मक उपन्यास है। इसकी खासियत है कि उपन्यास उर्दू शब्दों से भरा पड़ा है। वर्तमान दौर के हिन्दी साहित्य भंडार में 'मिलजुल मन' कुछ न कुछ ज़रूर नया जोड़ता है। उनका बेमिसाल उपन्यास है 'मिलजुल मन'।

ऐसा लगता है कि मृदुला गर्ग के उपन्यास में सभी स्त्री पात्र मृदुला जी की प्रयोगशाला में जल-बुन कर बाहर निकले हैं। मनीषा, सविता, मनु, काजल बानर्जी, संगीता, स्मिता सभी एक ही स्त्री के कई रूप हैं जो निखर कर बदल-बदलकर प्रकट हो रहे हैं। मिलजुल मन इसकी आखिरी कड़ी है। यहाँ मोगरा के रूप में उनकी खुद की छवि निखरी है।

कथेत्तर गद्य साहित्य

नाटक

मृदुला गर्ग ने रचनात्मक चक्र में नाटक को भी समेटा है। उन्होंने 'एक और अजनबी', 'जादू का कालीन', 'तीन कैदें' और 'साम दाम दण्ड भेद' नामक नाटकों की रचना की।

एक और अजनबी (1978)

'एक और अजनबी' की रचना सन् 1978 ई. में हुई। प्रस्तुत विचारोत्तेजक नाटक 'आकाशवाणी पुरस्कार योजना के अंतर्गत सन् 1977 के प्रथम पुरस्कार से पुरस्कृत है। 'एक और अजनबी' में स्त्री-पुरुष की संस्कारगत अतृप्त तृष्णाओं, सभ्यता द्वारा दी जा रही ज़िन्दगी के द्वन्द्व की तीव्र अनुभूति को अत्यंत प्रभावशाली शैली में व्यक्त किया गया है। स्त्री-पुरुष संबंधों की इस नाट्य-कृति की समस्या पर प्रकाश डालते हुए मृदुला गर्ग बतातीं हैं –

'धीरे-धीरे जंग खाता सामाजिक आदमी उस मुक़ाम पर पहुँच जाता है जहाँ उसके अपने सबसे निजी क्षण, स्त्री-पुरुष के बीच के आत्मिक दैहिक संबंध भी सामाजिक व्यवहार की बलि चढ़ जाते हैं। हमारे हाथ पैर एक मशीनी रोबट की तरह हरक़त करते चले जाते हैं और हम अलग पड़े अपना तमाशा ख़ुद देखते रहते हैं - अजनबियों की मानिंद..... पर क्या किसी अजनबी के कंधों पर थोपकर, हम उन सपनों को साकार कर सकते हैं?' प्रस्तुत नाटक आकाशवाणी द्वारा प्रसारित एवं मंच पर मंचित भी है। प्रस्तुत नाटक काफी सफल रहा है।

जादू का कालीन (1993)

बाल-मज़दूरी पर केन्द्रित 'जादू का कालीन' सन् 1993 में छपा। कालीन-उद्योग में कार्यरत बाल-मज़दूरों की कहानी प्रस्तुत नाटक

पेश करता है। बाल-श्रमिकों की दुर्गति उनकी अकुलाहट, पुनःवास की समस्या, प्रशासनिक भ्रष्टता, बाल-मज़दूरों की विवशता, स्वयंसेवी संगठनों का पाखण्ड आदि प्रश्नों को सामने लाता यह नाटक बाल-श्रमिकों की ग़रीबी और भूख के कारण उनके बंधुआ बनकर जीने की मजबूरी को दर्शाता है। ये बाल-मज़दूर ख़ूब सपने देखते हैं और इन्हीं सपनों की दुनिया में नाटक की परिसमाप्ति होती है। सपनों का जादुई कालीन बुनना ही इन श्रमिकों की संजीवनी है। इसी बूटी के सपनों को देखकर वे जी रहे हैं। सामाजिक दुष्टता को यह नाटक उजागर करता है। इन बाल-श्रमिकों की विवशता का दोहन कर फायदा उठाना समाज पर बदनुमा दाग़ है। इस तरह के शोषण को रोकना बहुत ज़रूरी है। इस गंभीर समस्या के प्रति पाठकों एवं दर्शकों का ध्यान आकृष्ट करना तथा उन्हें सोचने पर बाध्य करना लेखिका का उद्देश्य है।

तीन कैदें (1996)

प्रस्तुत नाटक 'तीन कैदें' सन् 1996 में प्रकाशित हुआ। तीन नाटक को लेकर चलता नाटक है 'तीन कैदें'। एक के बाद एक कैद मनुष्य को टीसती रहती है। एक कैद से छूटते ही ज़िन्दगी उसके लिए दूसरी कैद़ तैयार कर देती है। प्रस्तुत नाटक मृदुला गर्ग की कहानी 'कितनी कैदें' से मेल खाता है। ये कैदें कभी त्रासदी होती हैं तो कभी चुनौतिपूर्ण तो कभी कौतुकमय भी।

नाटक का पहला भाग 'तीन कैदें' उनकी बहुचर्चित कहानी 'कितनी कैदें' का नाट्य-रूपांतरण है। इसमें बलात्कृत मीना की त्रासदी का चित्रण है जो उसके खुद के द्वारा चित्रित क़ैद है। मीना और मनोज (पति-पत्नी) के कोयना-बांध में पानी के बीचोंबीच नीचे लिफ़्ट में अचानक लिफ़्ट के खराब हो जाने पर क़ैद हो जाते हैं। मृत्युबोध से ग्रसित मीना अपने साथ विवाहपूर्व हुए बलात्कार को बता देती है। इसे सुनकर पति मनोज ज़िन्दगी में वापस लौटकर, लिफ़्ट से बच निकलने पर भी ख़ुद को दूसरी क़ैद के गिरफ़्त में पाता है।

'दुल्हिन एक पहाड़ की' भी इज़बेल एंड्रूस के एकांकी 'ब्राइड फ्राम द हिल्स' का हिंदी रूपान्तर है जो नारी-प्रधान है। बूढ़ी दादी, माँ, दुलहिन तथा पड़ोसिन इन चार नारी पात्रों की योजना इसमें है। इसमें नारी जाति की नियति, स्वभाव आदि का अंकन हुआ है। 'दुलहिन' नई पीढ़ी और नई चेतना का प्रतीक है। 'दूसरा-संस्करण' नामक नाटक में दांपत्य संबंधों की ऊब और उदासीनता के फलस्वरूप विवाहेत्तर संबंधों की विकट स्थिति प्रस्तुत की गई है।

साम दाम दण्ड भेद (2003)

प्रस्तुत नाटक समाज में विरोध की ज्वाला का अहसास कराती है। सहनशक्ति की हद पार करने पर हमेशा आदमी विरोध करता ही है।

इसी की पहली सीढ़ी है साम, दाम दंड और भेद। यह बच्चों के लिए लिखा गया बाल नाटक है।

निबन्ध और अन्य लेख

रंग-ढंग (1995)

'रंग-ढंग' लेख-संग्रह का प्रकाशन, सन् 1995 में हुआ। एक तरह से 1985-1989 तक लिखा उनका यह लेख-संग्रह एक साथ उनकी जीवनी भी है, डायरी भी है। लेखिका कहानी नहीं लिखना चाहती थीं। अपनी सोच को किसी और ही रूप में बयान करना चाहती थीं। सन् 1984 में 'रविवार' स्तम्भ लिखते दौरान वे डायरी और कहानी के बीच का मार्ग खोज रहीं थीं और उन्होंने तय किया कि वे कहानी नहीं बल्कि लेख लिखेंगी। उनका अनुभूति स्तर ही उन्हें इस रास्ते पर जाने को मजबूर कर रहा था। अतः 'रविवार' स्तम्भ लिखने के लिए आमंत्रित होते ही उनका तन-मन उसे स्वीकार कर लेख में लीन हो गया। सन् 1985 से सन् 1989 तक पाक्षिक रूप में वे लिखती रहीं। इन्हीं लेखों का समग्र रूप सन् 1995 में लेख-संग्रह 'रंग-ढंग' प्रकाशित हुआ। उनका 'रविवार' स्तंभ को फ़ौरन स्वीकारना 'लेख' के प्रति उनकी दिली-ख़्वाइश है। जिसे उन्होंने बख़ूबी अंजाम दिया।

सन् 1984 का भोपाल गैसकांड, प्रकृति का नाश, बिगड़ते पारिस्थितिक संतुलन आदि से लेखिका का मन अधीर था। इसी अभिव्यक्ति

की तड़प तथा हज़ारों लोगों की मौत की हताशा; मृदुला जी 'रंग-ढंग' में प्रस्तुत करती हैं। प्रस्तुत हादसे से मृदुला जी ने महसूस किया कि प्रकृति और परिवेश के बीच संतुलन बनाए रखना ही पर्यावरण-रक्षा का एकमात्र मार्ग है। इसके बिगड़ते ही समाज का ढाँचा चरमराने लगता है। पाठक की सुविधा हेतु तथा समाज की इस प्रस्तुत स्थिति से आग़ाह करने के लिए लेखिका ने अलग-अलग कई रंग और ढंग के लेख लिखे हैं।

'रंग-ढंग' के कुछ लेख स्त्री-जीवन पर केन्द्रित हैं तो कुछ मृदुला जी की विदेश-यात्रा से। कुछ लेखिका का सौन्दर्यबोध जताते हैं तो कुछ हास्य-बोध से उपजे हैं। कुछ लेख समाज एवं पर्यावरण की विसंगतियों और विद्रूपताओं के इर्द-गिर्द घूमते हैं तो कुछ लेख यथार्थ के घात-प्रतिघात का ब्यौरा पेश करते हैं। अतः 'रंग-ढंग' अपने आप में एक अनोखा लेख-संग्रह है।

चुकते नहीं सवाल (1999)

'चुकते नहीं सवाल' सन् 1984 के बाद लिखा गया और सन् 1999 में प्रकाशित हुआ। वास्तव में यह समय-समय पर लिखे लेखों का समग्र रूप है। इसमें लगभग सोलह लेख हैं और अंत में जीवनवृत्त। प्रस्तुत लेख संबंधी विषय पर्यावरण, प्रदूषण और लोकतांत्रिक व्यवस्था है।

अतः प्रस्तुत लेख आज भी प्रासंगिक ही लगते हैं। 'चुकते नहीं सवाल' में 'साहित्य, क्या क्यों और कैसे', 'जोखिम उठाने से कतराती हिंदी

कहानी', 'साहित्य में स्त्री छवि', 'कहानी में नारी चेतना', 'सत्ता और स्त्री', 'देसी फेमिनिस्ट', 'द्विभाषी संस्कृति', 'लोकतंत्र का सुहाग चिह्न', 'सड़क पर बंक राक्षस', 'किस मोल बच्चे', 'एक भी चिड़िया नहीं चह-चहायेंगी', 'कालिदास का विद्रोही मेघ' और 'उदासीनता का ज़हर', 'पर्यावरण और प्रगति', 'मैं और मेरा समय', 'समागम : 1998', 'नारी और साहित्य : स्वभाव', 'संस्कार या स्वयं अर्जित सच' आदि विषयों पर लेख प्रस्तुत हैं। 'उदासीनता का ज़हर' और 'हिंदी की रूखी रोटी' भी साथ सम्मिलित हैं।

मृदुला जी केवल साहित्य और संस्कृति की अध्येता ही नहीं बल्कि भारतीय समाज की निकट-दर्शिता एवं पारखी भी हैं। देश की घटनाओं और दुर्घटनाओं पर भी कड़ी नज़र है। मृदुला गर्ग ने नारीवाद की नई परिभाषा दी है जिसके माध्यम से वे 'प्रखर महिला प्रवक्ता' के रूप में सामने आती हैं। वे समाज की गर्हिता ज़िन्दगी की आलोचना के साथ रास्ता भी सुझाती हैं। अतः वे आंदोलनकर्ता भी बन जाती हैं। 'भोपाल गैंस कांड' पर मृदुला जी का लेख 'उदासीनता का ज़हर' और 'एक चिड़िया भी नहीं चहचहाएगी' तथा 'कालिदास का विद्रोही मेघ' इस पुस्तक की उपलब्धि है।

'चुकते नहीं सवाल' की एक विशिष्टता यह भी है कि लेखिका गद्य-लेखन की प्रचलित परिपाटी को तोड़ती है। साहित्य और पत्रकारिता के बीच का रास्ता अख़्तियार करती हैं।

व्यंग्य लेख

कर लेंगे सब हज़म (2007)

2002 से मृदुला गर्ग 'इंडिया टुडे' (हिन्दी) में पाक्षिक स्तंभ कटाक्ष लिख रही है। 2002-2006 तक के लेख 'कर लेंगे सब हज़म' नाम से 2007 में पुस्तकाकार में प्रकाशित हुए हैं। यह अंग्रेज़ी के राइट्स ब्लाक का तर्जुमा है। प्रस्तुत लेख में लेखिका ने पार्श्व के व्यंग्य को सीधा मंच पर प्रस्तुत किया है। यहाँ व्यंग्य सारी साज-सज्जा के साथ मौजूद है। हमारे समय की सही और बारीक अभिव्यक्ति देता लेख है - 'कर लेंगे सब हज़म'। आधुनिक समय और समाज से किस तरह नैतिक मूल्य, सद्‌विचार, बड़प्पन और अच्छाइयों का द्रुतगति से लोप होता चला जा रहा है, इसका मृदुला गर्ग ने बड़े चुटीले अंदाज़ में कतरा-कतरा लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। समाज और काल की असंगतियों पर ये छोटे पर 'नावक के तीर' जैसे लेख गहरी चोट करते हैं। व्यंग्य का अंदाज़ निराला होता है। यही कारण है कि पत्र-पत्रिकाओं में सबसे अधिक प्रमुखता व्यंग्य को प्राप्त है। मृदुला जी के अधिकतर 'व्यंग्य लेख', 'इंडिया टुडे' में 'कटाक्ष' कालम के अंतर्गत छपते रहे हैं। कुछेक 'आउट लुक', 'जनसत्ता' और 'हिन्दुस्तान' में भी छपे हैं। किताब के रूप में प्रस्तुत व्यंग्य लेख संग्रह में 66 लेख संग्रहीत हैं। 'क्या बेज़बान हुए हम?', 'ये रास्ते हैं हिन्दी के', 'कर्ताराम स्ट्राट में', 'शब्द ही हैं न, लौटा लेंगे', 'मेरे साथ कहो, या.... हूँ....', 'हम बन गए

विश्वगुरु', 'नाम में क्या रखा है?', 'पत्थरों के जंगल में सफाया', 'खा-पीकर हुए टुन्न', 'हमसे जो हो सकता था, किया', मृदुला जी 'इंडिया टुडे' को इस लेखन के लिए आमंत्रित करने के लिए शुक्रिया अदा करती है।

खेद नहीं है (2010) (2006 से 2008 तक के लेख)

मृदुला गर्ग पाठकों के बीच कथाकार के रूप में विख्यात हैं। उनकी यह छवि गंभीर तो है पर साथ में वे ऐसी लेखिका भी हैं जिनकी कथाओं में व्यंग्य की सूक्ष्म अंतर्धारा बहती है। उनकी पकड़ खाँटी व्यंग्य लेख की रसोक्ति पर भी प्रभावी है। इनमें वे जिस पैनेपन से व्यवस्था में धँसे विद्रूप की काट-छाँट करती हैं उसी तर्ज़ पर पूरे खिलंदड़ेपन के साथ हमारे भीतर उपस्थित विसंगतियों को भी सामने ला खड़ा करती हैं। प्रस्तुत लेख भी 'इंडिया टुडे' के 'कटाक्ष' स्तंभ से ली गईं हैं। इनमें आसपास पसरी विडंबनाओं की शिनाख़्त बिना किसी लाग-लपेट के साथ मौजूद है। न शैली, न भाषा और न ही विधा की इनमें कोई बंदिश है। मृदुला गर्ग की इसी अनुशासनहीनता से ये लेख विशिष्ट बन पड़े हैं। इस बेतकल्लुफ़ी पर उन्हें ज़रा भी खेद नहीं। इसे पढ़ने से हमें ख़ुद पर हँसने और सोचने का मौक़ा मिलेगा। इस व्यंग्य-लेख संग्रह 'खेद नहीं है' में 58 व्यंग्य-लेख संग्रहीत हैं। खुद पर हँसने की बात मृदुला जी ने 'खेद नहीं है' की भूमिका में यूँ कहा है– "दरअसल जीवन में भुगते त्रासद में दूसरों की मिल्लत तभी मिलती है। जब हम कुछ हद तक अपने पर हँसने का माद्दा दिखलाएँ।

वरना हर आदमी अकेले रोता है हम हँसते हैं कि कहीं रोना हमारी आपकी आदत में न शुमार हो जाए! इसीलिए हमारा विदूषक हो या अंग्रेज़ी का कोर्ट जैस्टर, हमेशा से जितना गहरा व्यंग्यकार रहा है, उतना ही कथाकार और दार्शनिक।"[1] मृदुला गर्ग का व्यंग्य-लेखन सचमुच पाठकों को सोचने पर मजबूर करेगा। वे कहती हैं कि यदि तिलमिलाहट हमें भीतर महसूस हुई तभी वे इस लेख को सार्थक मानेंगी।

संस्मरण (सितंबर 1998)

'दीदी की याद में' तथा ***'एक महाकाव्य लघु उपन्यास सा निबट गया'*** उनके दो संस्मरण हैं। ये संस्मरण मृदुला जी ने अपनी बड़ी बहन 'मंजुल भगत' की याद में लिखा था। प्रथम संस्मरण 'साहित्य अमृत' सितंबर 1998 में ही 'हंस' पत्रिका में प्रकाशित हुआ। ये दोनों लेख उत्कृष्ट संस्मरणों के रूप में देखे जा सकते हैं। प्रस्तुत संस्मरण 'मंजुल भगत' के साथ जुड़ी मृदुला गर्ग की यादों को ताज़ा करते हैं। उनका अभूतपूर्व, आकर्षक व्यक्तित्व, उनकी विशेष आदतें, उनकी नृत्य में रुचि, उनका अभावों से भरा जीवन, लेखिका का सक्षम रूप, पति की ख़ातिर उनकी भव्यता का अपव्यय; उनके द्वारा की गई लाइब्रेरियन की नौकरी, बिमारी से ग्रस्त होकर बग़ैर इलाज के मृत्यु का आलिंगन जैसी अनेक कड़वी-मीठी यादों को श्रद्धांजली के तौर पर मृदुला जी ने दो संस्मरण में जिरहबंद किया है।

---

1. मृदुला गर्ग - खेद नहीं है (भूमिका से) - पृ. 7

'कुछ अटके कुछ भटके' (2006) (यात्रा संस्मरण)

कल्पनाशील व्यक्ति हमेशा आग्रह करता है कि वह संसार के उन कोनों में जाएँ, उन ऐतिहासिक अनछुए, अनदेखे पहलुओं को देखें-छुएँ; जो मात्र किताबों की गिरफ़्त में देखी पढ़ी गईं थीं। उस दौर को मन की आँखों से साक्षात्कार करें। उन इतिहास प्रसिद्ध स्थलों, जहाँ राजा-रानियाँ घूमा करते थे, भयानक नर-संहार हुआ था उनका दर्शन, समंदर की टकराहट, जंगल के राजा के क्षेत्र में उनसे मुलाकात आदि अथाह-अनुभवों को साक्षात्कृत करने के लिए सुप्रसिद्ध महिला मृदुला गर्ग ने वाक़ई रोचक एवं वर्णनात्मक ढंग से कुछ अटकते-कुछ भटकते अनुभवों को यात्रा संस्मरण में क़ैद किया है। किताब के संपादक लिखते हैं – कहते हैं, 'जहाँ न जाए रवि, वहाँ जाए कवि', ऐसा ही प्रयास किया है लेखिका ने, लेकिन कल्पना के सहारे नहीं, सशरीर। ये रोमांचक विवरण सहसा ही कभी सूरीनाम, कभी काज़ीरंगा तो कभी केरल के वर्षावनों अभयारण्यों में ले जाता है, तो कभी समंदर की नीली लहरें आकर पांव भिगो जाती है अगले ही पल हिरोशिमा की त्रासदी देखकर आँखें नम हो जाती हैं।

इस पहले यात्रा-संस्मरण का प्रकाशन 2006 में हुआ। यही एक मात्र यात्रा-संस्मरण मृदुला जी ने लिखा है। प्रस्तुत यात्रा-संस्मरण में बारह लेख हैं। 'भटकते गुज़रा ज़माना', 'सपने से दीदार तक', 'दीदार से सपने तक', 'सांप कब सोता है?', 'दिल से गए दिल्ली में', 'हिरोशिमा में

क्रौंच और कनेर', 'तिलस्मी बुनराकू', 'बाबा मंदिर', 'काली मिर्च बनाम ईश्वर', 'घर बैठे सैर', 'असम में एक रात', 'रंग-रंग काज़ीरंगा'। यात्रा-संस्मरण के रूप में लेखिका का प्रस्तुत प्रयास सराहनीय है।

निष्कर्ष

आठवें दशक की शुरुआत से ही लेखन-जगत् पर प्रतिष्ठित मृदुला गर्ग वाकई साहित्य के लिए वरदान हैं। चिंतन-मनन हो या सामाजिक क्षेत्र कहानी हो या उपन्यास, लेख या संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत या नाटक सभी क्षेत्र उनकी कलम को छुए बिना नहीं गुज़रा। सिर्फ आत्मकथा के प्रति उनका रवैया अलग है। उनका तजुर्बा कहता है कि आत्मकथा में कुछ भी नया जोड़ने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए। परंतु ऐसा काफी कम होता है। अतः उन्हें आत्मकथा की बजाय आत्मकथ्य पर भरोसा है।

मृदुला गर्ग एक सामाजिक कार्यकर्ता और पर्यावरण के महत्त्व को समझने वाली लेखिका हैं। समस्त विद्रूपताओं के प्रति उनका लेखन अनूठा है। यात्रा करते मृदुला जी का व्यक्तित्व कभी थकता नहीं। अतः साहित्य की यात्रा भी बिना थके ही करती रहीं। तमाम अड़चनों के बीच, तमाम पड़ावों के दरमियान भी वे रुकीं नहीं। एकांतप्रिय लेखिका मृदुला जी अपने पितृ-गृह तथा भतृ-गृह दोनों में अपने लेखन को बराबर बरकरार रखती रहीं। मृदुला जी का व्यक्तित्व, वास्तव में उनके पिता के संस्कारों

तथा छत्रछाया के कारण ही निखरा। उनके व्यक्तित्व-निर्माण का बहुत बड़ा श्रेय उनके पिता को ही जाता है। उन्होंने अपने पारिवारिक-दायित्वों को भी लेखन के साथ बख़ूबी निभाया।

आकर्षक व्यक्तित्व की धनी मृदुला जी का आन्तरिक व्यक्तित्व भी मिठास से भरपूर है। उनका चिंतन-मनन कालसापेक्ष है तथा विचारधाराओं में उनका साहित्य अनुपम तथा अद्‌भुत। अतः एक सच्चा चिंतन-मनन उनके साहित्य में निखरा है। इन खूबियों के कारण उनका साहित्य शोध का विषय बनता है।

❖❖❖

अध्याय - दो

मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी-अस्मिता

मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी-अस्मिता

स्त्री और पुरुष दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। एक दूजे के बग़ैर वे इस तरह अधूरे हैं जैसे पानी बग़ैर बरखा। परंतु पानी और बरखा का भेद आज से सदियों पहले शुरू होकर वर्तमान काल में भी बरकरार है। 'नारी' शब्द को रूप दिया देवी का; आँखों के तेज से मन भक्ति की लहर में बह गया। धरती पर उसे कई रूप मिले - माँ, बहन, अर्द्धांगनी इत्यादि। परंतु मन की भक्ति को आँखों की हवस बनते देर नहीं लगी। जगत् जननी 'नारी' की स्थिति बिखरती चली गई। डाली से फूल को तोड़ते वक्त जिस तकलीफ़ का एहसास तोड़नेवाले को नहीं होता वही अनकहा, अनसहा एहसास स्त्री के अत्याचारी भी महसूसते हैं।

स्त्री देवी, अप्सरा और भक्ति से हटकर मानवी-सहचरी बनना चाहती है। वह अपना स्वत्व बनाए रखना चाहती है। परंतु महानता की चोटी से वेश्या के टीले पर छोड़ने वाला कोई और नहीं बल्कि यही देवी भक्त हैं। नारी अपनी अस्मिता की तलाश में मार्गों की महामाया से गुज़रते हुए जंगल के उसे दवानल तक पहुँची जहाँ भस्म होना तय था पर मंज़िल पाना भी नामुमकिन न था।

प्राचीन काल में स्त्रियों ने अपना स्वत्व एक काँच की बंद पिटारी में इस कदर क़ैद रखा था कि साँस लेना भी दूभर था क्योंकि उसमें न खिड़की थी न रोशनदान इसी कारण न तो दमघुट कर जिया जा सकता था, और ना ही बाहर निकलने की गुंजाइश थी। फरमाने के इश्तेहार को सदा रहम और किस्मत के भरोसे पढ़ती रही, झेलती रहीं। परंतु औरतों की कग़ार में कुछ ऐसे सख़्त जान बाहर निकले जिन्होंने ज़िन्दगी का नक़्शा ही बदल कर रख दिया। उन्होंने आज़ादी की माँग उठाई। आज़ादी की जंग सही माइने में 1947 में मानी जाती है। पर स्त्रियों ने जंग पहले ही छेड़ दी थी।

फेमिनिज़्म

अगर हम 'MAN' की बात करते हैं, मनुष्य की बात करते हैं तो इसमें WOMAN की बात भी आ ही जाती है तो फिर सोचना यह है कि 'नारीवाद' क्या है? Feminism का मतलब क्या है? Female-Ism? Femaleness? मात्र मानव जाति ही नहीं, मानवेत्तर नारी जातियाँ भी नारी के गुणविशेष को धारण करती है। इन लोगों का समावेश भी नारीवाद हो सकता है? पशुओं में नर भी है; मादा भी है। इनमें मातृत्व के (Motherhood, child bearing) के गुण होते हैं। तो फिर feminism का मतलब 'Sense of Personal Courage' है? 'चमन नहाल' ने शेक्स्पियर के 'As you like it' नाटक की नायिका (रोझालीन्ड) पुरुष वेश में अपने प्रियतम को ढूँढ़ने निकलती है इसका

उदाहरण दिया है। 'चमन नहाल' सीता को नारीवाद का विरोधी मानते हैं। वह एक वर्ष तक रावण से टक्कर लेकर नारीवादी स्त्री जैसा साहस दिखाती है। 'रामायण' की अधिकांश स्त्रियाँ पति-परायण हैं। 'महाभारत' में द्रौपदी ही एक ऐसी स्त्री-पात्र है जो पुरुष प्रधान-समाज के सामने लोहा लेती है और पूछती है मैं किसकी हूँ? मेरा घर कहाँ है? जो खुद को हार चुके हैं वे मुझको बाज़ी में कैसे लगा सकते हैं? द्रौपती ने सभागृह में जो प्रश्न पूछे थे वे सारे प्रश्न नारीवाद के हैं। तो फिर नारीवाद क्या है? लग्न-संस्था के सामने विद्रोह? 'चमन नहाल' ने 'एलिज़बेथ बारेह' और 'ज्योर्ज एलियेट' का उदाहरण देकर कहा है कि ये लोग शादीशुदा नहीं थे। नारीवाद का अर्थ जीवनभर अपरिणीत रहना है? चमन नहाल ने स्पष्ट किया है : नारीवादी तनावों की बात करते हैं तो हम जीवन के तनावों की बात करते हैं। अगर फेमिनाइन Text होती है तो Masculine text भी होनी चाहिए। 'नीर्मेल मेइलर' की 'The Prisoner of Sex' में फेमिनिज़्म की पौरुषी वृत्ति का प्रदर्शन है। 'चमन नहाल' नारीवाद को स्त्री के स्वायत्त अस्तित्व का रास्ता मानते हैं। जिसमें नारी 'स्वातन्त्र्य की पसंदगी' (dependence syndrome) के लिए मुक्त है।

'Katherine Anne Porter' कहती है : "लोरेन्स कैसे स्त्रियों की कामक्रीडा के आनंद के बारे में लिख सकता है? क्योंकि वह तो पुरुष

है।"[1] यहाँ सवाल स्वानुभूति और सहानुभूति का है। पुरुष-लेखक स्त्री की वेदना के बारे में ब्यौरा देता है तो वह उसकी स्त्री की तरफ की सहानुभूति है। स्त्री अपने मनोवेग का निरूपण करती है तो वह उसकी खुद की स्वानुभूति है। लेकिन ऐसा कोई नियम नहीं है। यदि ऐसा नियम बना तो शरदचंद्र चेटर्जी और रवीन्द्रनाथ के उपन्यासों का क्या होगा? रवीन्द्रनाथ की 'गोरा' (आनंदमयी), 'नष्टनीड़' (चारुलता, शरदचंद्र के 'श्रीकान्त' (राजलक्ष्मी) 'देवदास' (चंद्रमुखा और पार्वती) उदाहरण हैं।

फेमिनिज़म की हक़ीकत है कि स्त्री पुरुष की तुलना में नहीं बल्कि स्त्री, स्त्री के रूप में ही अनूठी है। पुरुष भी यह बात स्वीकारता तो मामला समाप्त हो जाता। अलबत्ता, इस समानता और भिन्नता के सामने के छोर पर पुरुष खड़ा ही है। इसलिए Jullia Kristeva 'Third Space' की रचना करना ज़रूरी समझती है। लेकिन जो भिन्नता कुदरत निर्मित है वह कैसे समाप्त की जा सकती है? 'Jardine' के मतानुसार 'फेमिनिज़म' स्त्री के दृष्टिकोण से स्त्री द्वारा और स्त्री के लिए है।

'Jardine' 'Third Space' के ऊपर वज़न देती है। यह space ही स्त्री के स्वातंत्र्य को उसके अलग आयाम में खड़ा करने में

1. Katherine Anne Porter in a review (rivew) of lady cholterleyis lover argued that how can Lawrence, write about the sextual feelings of a woman. He is only a man. If we follow this argument then one has to be a her marphrodite to write a novel.
Shushila Singh - Feminism & Recent Fiction in English - P. 17

सक्षमता देती है। चलो, मान लेते हैं कि स्त्रियों ने अलग space की रचना कर ली तो क्या इससे पुरुषप्रधान समाज के अस्तित्व का अंत आ जाता है? "Relational Feminism में स्त्री-पुरुष के सह-अस्तित्व को अनिवार्य माना गया है। Individual Feminism में व्यक्ति को महत्त्व दिया गया है। Relational Feminism स्त्री के बालक की लालन-पालन की क्षमता को लेकर उसे मानवाधिकार मिलना ही चाहिए, इस मुद्दे पर ज़ोर देता है। उसके सामने Individualist Feminism स्त्री के मानवाधिकार पर विशेष ज़ोर देता है।"[1]

अंततोगत्वा Feminism Ideology व आंदोलन के तौर पर समाज और राजकरण के परिवर्तन के लिए महत्त्व का स्थान प्राप्त कर चुका है। आपका feminism; masculine hiearachy का अंत लाने के पक्ष में है। वह स्त्री के पक्ष में ज़रूर है लेकिन पुरुष-विरोधी नहीं। उनका प्रयास है कि समाज में आर्थिक तथा राजकीय तौर पर स्त्री को पुरुष के समान दर्जा मिले और समाज तंदुरुस्त बने। फेमिनिज़म इस तरह से मानवतावादी फिलोसफी के रूप में सर्वस्वीकृत होता जा रहा है Susan Sontag भी 'वर्जीनिया woolf' के 'स्त्री मुक्ति की लड़ाई fascism के विरुद्ध की लड़ाई है' मंतव्य की पुष्टि देता है।

---

1. "Susan Sontag strongly felt that verginia woolf was altogether correct when she declared that the fight to liberate woman is the fight against fascism" Shushila Singh - Feminism & Recent Fiction in English - P. 27

साहित्य में नारीवाद

नारीवाद की शुरुआत पश्चिम में हुई। पश्चिमी नारीवाद में कई नाम मुखर रूप से उठाए गए हैं। उनमें से प्रमुख नाम सीमोन द बोउवार का है। उन्होंने कहा है कि औरत जन्म से औरत नहीं होती बल्कि वह औरत बनायी जाती है। यही नारीवाद ज़ोर पकड़ते हुए भारत में भी आ पहुँचा। परंतु भारत में नारीवाद दार्शनिक तौर पर पहले ही बीज डाल चुका था। परंतु पाश्चात्य प्रभाव में इसका रूप और निखरा। साहित्य में भी नारीवाद अपने पूरे जोश में उपस्थित हुआ। साहित्य में कई नारीवादी लेखिका के दर्शन मिलते हैं। उनके दृष्टिकोण नारीवाद को नई दिशा देने में सहायक हुए हैं।

हिन्दी की लेखिकाओं का नारीवादी दृष्टिकोण

लेखिकाओं के द्वारा रचे गए कथा-साहित्य का बड़ा महत्त्व है। क्या पुरुष द्वारा स्त्रियों के बारे में लिखा गया स्त्री-साहित्य नारीवादी कहा जा सकता है? स्त्री ही स्त्री के बारे में लिख सकती है? भारतीय नारीवादी लेखिकाओं की रचनाओं पर पश्चिम का प्रभाव किस तरह से पड़ा है? इत्यादि प्रश्नों पर सोचने का यहाँ उपक्रम है।

आशारानी व्होरा जी कहतीं हैं - "भारतीय जीवन व्यवस्था पुरुष-प्रधान होने से साहित्य के विकास में स्त्री का योगदान पहले स्रष्टा रूप में कम और प्रेरणा रूप में अधिक रहा। प्राचीनकाल में यद्यपि अभिव्यक्ति

के लिए समान अधिकार थे, फिर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि सृजन-क्षेत्र में यह समानता बराबर संख्या के स्तर पर भी हो। आगे चलकर तो विभिन्न स्थितियों के दबाव से यह अंतर बढ़ता ही चला गया और स्त्री स्वयं सर्जक के बजाय अधिकतर सर्जक पुरुष की प्रेरणा ही बनती चली गई। यह स्थिति कमोवेश हर देश में, हर काल में, हर भाषा में रही।"[1]

जगदीश्वर चतुर्वेदी जी ने स्त्री-साहित्य को व्याख्यायित करते हुए कहा है कि, 'स्त्री साहित्य' वह है जो स्त्री-रचित है। स्त्री-रचित होने के कारण ही उसे 'स्त्री साहित्य की कोटि में रखा जाता है। उन्होंने इसे अनुभूति का साहित्य कहा है। यह ऐसी अनुभूतियाँ हैं जो अभी तक दमित, दबी हुई तथा उत्पीड़ित थी। जिसे पुंसवादी संस्कृति ने समाज और साहित्य से बहिष्कृत रखा। वे कहते हैं कि साहित्य की तब तक कोई वैज्ञानिक परिभाषा संभव नहीं है जब तक कि स्त्री को पुरुष संदर्भ के बग़ैर निर्मित न कर लिया जाएँ। किंतु, स्त्रीवादी साहित्य, स्त्री-पुरुष दोनों का लिखा हो सकता है। यह ऐसा साहित्य है जो स्त्री के हितों एवं स्त्रीवादी राजनीति का पक्षधर होता है। स्त्री साहित्य की तुलना में स्त्रीवादी साहित्य व्यापक परिदृश्य को समेटता है।

भारतीय भाषाओं में विभिन्न राज्यों की लेखिकाओं का सामाजिक, राजनैतिक एवं ऐतिहासिक वास्तविकता को देखने का नज़रिया कैसा है?

---

1. आशारानी व्होरा - औरत : कल, आज और कल - पृ. 58

स्त्री को इस युग में परिवर्तन के किस दौर से गुज़रना पड़ा? परिवर्तन के तमाम तबकों में स्त्री चेतना पर कैसा प्रभाव पड़ा? लेखिकाओं ने किस तरह से सामाजिक-राजनैतिक प्रश्नों को निरुपित किया है? यूरोपीय और पश्चिमी स्त्री कथा-साहित्य भारतीय कथा-साहित्य से किस तरह भिन्न है? ऐसे कई प्रश्न उठाए जा सकते हैं।

'श्रीमती राजेन्द्र बाला घोष' (बंग महिला), यशोदा देवी, शारदा कुमारी, सरस्वती गुप्ता, हेमंत कुमारी चौधरी, कुमारी भगवान देवी दुबे, रुक्मिणी देवी, हुक्मदेवी गुप्ता, लीलावती देवी आदि लेखिकाओं ने आरंभकालीन कथा साहित्य (1868 से 1927) में अपना योगदान दिया है। श्रीमती राजेन्द्रबाला घोष ने (बंग महिला) 'दुलाईवाली', 'भाई-बहन', 'हृदय-परीक्षा' जैसी कहानियाँ लिखी हैं। 'दुलाईवाली' हिंदी की सबसे पहली मौलिक कहानी मानी जाती है। हिंदु-धर्म की रुढ़ियों पर आक्रमण, मानवीय रिश्तों का रूपायण, उपदेशात्मक शैली इनकी कहानियों की विशेषता है। नारी की पति परायणता, वीरता, सतीत्व, धर्मपरायणता, कुशल गृहिणी क्षमता, संयम, सदाचार आदि का निरूपण इसमें ज़्यादातर दिखाई देता है। उनकी कहानियाँ वर्णनात्मक और नायिका प्रधान थीं। वास्तव में सृजन; ज्ञान और संवेदना को साथ लेकर ही हो सकता है। पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है नारी के लिए अनुभव। अतः अपने जीवन का जैसा सजीव चित्रण वह हमें दे सकेंगी वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरांत

भी सायद ही दे सके। कॉलरिज स्वीकार करते हैं कि ज्ञान पुरुषवाची है तो संवेदना स्त्रीवाची है और इन दोनों तत्वों के मिश्रण से ही सर्जना के क्षण उत्पन्न होते हैं। इससे बात स्पष्ट होती है कि लेखन, लेखन होता है नर-मादा नहीं। परंतु रेखा-कस्तवार कहती है कि - "किसी कृति को स्त्री के रूप में पढ़ना भी एक अलग पहचान को बनाना है।"[1]

आत्मकथात्मक एवं वर्णनात्मक शैली स्त्री लेखन के प्रमुख तत्व के रूप में उभरकर आए हैं। मध्ययुग के मुकाबले में आधुनिक कथा-साहित्य में इस तत्त्व का व्यापक प्रयोग मिलता है। जिस तरह वर्णनात्मक शैली का स्त्री कथा से गहरा रिश्ता है उसी तरह आत्मकथा शैली वस्तुतः उसके प्रतिरोधात्मक भाव की अभिव्यक्ति है। जगदीश्वर जी ने यहाँ एक दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया है कि स्त्री को आत्मकथा शैली का उपन्यास विधा में इस्तेमाल करने की ज़रूरत क्यों महसूस हुई? इसका कारण दर्शाते हुए वे लिखते हैं कि, अपनी कहानी के लिए लेखिकाओं को पुरुष कथा का ढाँचा अनुपयुक्त महसूस हुआ होगा। पुरानी कहानी शैली स्त्री की पहचान को पूरी तरह अंतर्मुक्त कर लेती है। निजता का वहाँ लोप हो जाता है जब कि आत्मकथा शैली में लेखिका स्वयं बोलती हैं। पुंसवादी कहानी से भिन्न स्त्री कहानी में लेखिका का निजी जीवन एवं व्यक्तित्व पूरी तरह अभिव्यक्त होता है।

---

1. रेखा कस्तवार - स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ - पृ. 20

हिंदी की आरंभिक कथा लेखिकाओं के कथा-साहित्य में पति के प्रति वफ़ादारी मूल तत्त्व है। जबकि बीसवीं सदी के स्त्री कथा साहित्य में पति की बजाय राष्ट्र के प्रति वफ़ादारी व्यक्त हुई। ऐसा होने का कारण आज़ादी पाने के लिए किए गए राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव था। 1900 से 1947 के बीच में स्त्री कथा-साहित्य के विकास में बंग महिला, मुन्ना देवी भार्गव, श्रीमती प्रभावेदी, विमला देवी चौधरानी, शारदा कुमारी सरोज, राजरानी देवी, सरस्वती वर्मा, जनकदुलारी देवी, मनोरमा जैसी लेखिकाओं के नाम गिने जाते हैं। इसके आगे की पीढ़ी में कमला चौधरी, देवरानी पाठक, चंद्रवती जैन, उषा मित्रा, सुभद्राकुमारी चौहान, गायत्री देवी, भागवती देवी, ललिता देवी, कृष्णा कुमारी आदि का कथा-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

कमला चौधरी की नायिका-प्रधान कहानियों में नारी जीवन की आशा-निराशा, आकांक्षा, वेदना, ईर्ष्या, स्नेह, ममता आदि का यथार्थपरक चित्रण मिलता है। शिवरानी देवी ने समाज सुधार और ग्राम्य जीवन के बारे में कहानियाँ लिखी हैं।

महादेवी वर्मा ने 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' नाम की संस्मरणात्मक कहानियाँ लिखी हैं। सुभद्राकुमारी चौहान की कहानियों में नारी जीवन की विवशता का चित्रण है और स्वतंत्र व्यक्तित्व के लिए पुकार भी। उनमें आधुनिक अस्मिता की पहचान है और वे किसी

न किसी रूप में स्वाधीनता संग्राम से जुड़ी हुई भी थीं। इस पीढ़ी के बाद की लेखिकाओं में कृष्णा सोबती, कंचनलता सब्बरवाल, हेमलता, शिबोला रानी माथुर, चंद्रप्रभा त्रिवेदी, सावित्री निगम, नीता परांजपे, जयदेवी पांडेय, कुसुमलता, मन्नु-भंडारी, उषा प्रियंवदा, राजी सेठ, मृदुला गर्ग, शिवानी, ममता कालिया, नमिता सिंह, क्षमा शर्मा, चित्रा मुद्‌गल, प्रभा खेतान, सिम्मी हर्षिता, कुसुम अंसल, सूर्यबाला, नासिरा शर्मा, रमणिका गुप्ता, मैत्रेयी पुष्पा, रमासिंह, रागिनी मालवीय, सारा राय, गीतांजलिश्री, संजना कौल, ऋता शुक्ल, सरयू शर्मा, कनकलता, उमा महाजन, अर्चना वर्मा, इंदिरा राय, पुष्पा सिंह, कमला पमोला, चंद्रकान्ता, विभारानी, शशिप्रभा, शांती सिन्हा, अलका पाठक, जया जादवानी, वंदना प्रसाद, संतोष गोयल, अलका सरावगी, मीनाक्षी, प्रतिभा, कल्पना सिंह, सरिता सूद आदि हैं। जिनका ज़िक्र आधुनिक व अधुनातन नारीवादी लेखिकाओं के रूप में होता ही रहता है।

आज़ादी के पूर्व और आज़ादी के बाद की लेखिकाओं के बीच तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखते हुए जगदीश्वर लिखते हैं - "आज़ादी के पहले स्त्री कहानी में जहाँ समाज सुधार, परिवार एवं स्वाधीनता संग्राम हावी था वहीं स्वातंत्र्योत्तर दौर की कहानी समाज सुधार की बजाय स्त्री के सामाजिक अधिकार, अस्मिता, इच्छा शक्ति और प्रतिरोध को तरजीह देती है। स्त्री लेखिकाओं ने पूँजीवादी व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं की तीखी

रचनात्मक आलोचना लिखी है जो कि आज़ादी पूर्व की कहानियों में तकरीबन नदारद है। नई कहानी के दौर में, मन्नु भंडारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती एवं शिवानी ने स्त्री के मन एवं ज़िंदगी के प्रामाणिक यथार्थ को उकेर स्त्री चरित्रों की दोहरी स्थिति, मूल्यगत तनावों को वैयक्तिक दृष्टिकोण से रूपायित किया।"[1]

सिर्फ हिंदी में ही नहीं मलयालम में भी 'ललितांबिका अंतर्जनम', 'माधवी कुट्टी', 'पी. वत्सला', 'ग्रेसी', 'सारा-जोसफ' जैसी लेखिकाएँ भी इसी धारा की हैं। गुजराती में कुंदनिका कपाड़िया, इला आरबमेहता, धारुबेन परेल, सरोज पाठक ने भी नारीवादी लेखन किया है। लेकिन इसमें यथार्थता कम, कृत्रिमता ज़्यादा है।

वर्तमान काल स्त्री-अस्मिता में सुधार ज़रूर लाया है। परंतु बादलों में घटा अब भी छाई हुई है। बूँद-बूँद चुनने से बात नहीं बनेगी। पूरे सागर को उमड़ना होगा। यही नहीं सही राही की भी ज़रूरत है क्योंकि सागर से ताक़त तो पैदा हो सकती है परन्तु प्यास कुएँ का पानी ही बुझा सकता है। अतः नारी का विद्रोही रूप झलक उठा। पहले की सहमी, सिमटी, हर वार, हर धमकी और अत्याचार को बर्दाश्त करनेवाली जवाब दे उठी। विद्रोही-ज्वाला ने स्त्री की शक्ति को दुगुना वेग प्रदान किया और नारी स्वयं

---

1. जगदीश्वर चतुर्वेदी - स्त्रीवादी साहित्य विमर्श - पृ. 157

अपनी स्थिति में सुधार लाने में कामयाब हुई। जन्नत की सैर के लिए जहन्नूँ से होकर गुज़रना पड़ता है। अतः राहों में काँटे तो बिछे ही होंगे। इसका सबूत है विद्रोही स्त्रियों की गृहस्थी का हलचल। आग लगी भी नहीं और धुँआ उठना शुरू हो गया।

समाज में सम्मान की समान कामना करनेवाली नारी की हसरतों को बीच मँझधार में डुबोने के कई सियासी चालें चलाई गईं हैं। परंतु घर की चहार-दिवारी से बाहर निकलने की स्त्री ने ठान ली थी पर जंगल में लगी आग को एक ही झटकें में खत्म करना नामुमक़िन था।

नवीन समाज भी पितृसत्ता का तख़्त छोड़ने को राज़ी नहीं। हर मोड़ पर नारी होने का इल्ज़ाम, उस पर लगता ही है और ये इल्ज़ाम लगाने वालों में पुरुष के साथ-साथ नारी भी शामिल है। कामकाजी स्त्री को घर में सास-ससुर और पति द्वारा शंका और संदेह की नज़रों से देखनेवालों की कमी नहीं। बोस के सामने पूरे विश्वास के साथ रुकने की हिम्मत या मानसिकता स्त्री ईजात नहीं कर पाती। कामकाजी रूप यद्यपि समाज अपना चुका है परंतु गृहस्थी का भार जैसे पति की सेवा, बच्चों की देखभाल, रसोई का काम आदि आज भी स्त्रियोचित ही समझे जाते हैं। साथ में मासिक वेतन का हक़ मारने वाले घरवाले भी मौजूद हैं। घर का काम आधा-आधा बाँटने से उन्हें पितृसत्ता की सत्ता में दरार पैदा होने का एहसास होता है उनके गर्दन में रीढ़ की एक हड्डी की कमी महसूस होती

है। स्त्री भी एतराज़ ज़ाहिर नहीं कर पाती। परंतु आज काफी कुछ बदल चुका है। काफी बदलाव आए हैं। इस बदलाव ने स्त्री को अपने हक़ के लिए लड़ने को प्रेरित किया। तूफ़ान का सामना करने की ताक़त दी और अत्याचार के खिलाफ़ आवाज़ उठाने की क्षमता भी। अतः पारिवारिक विघटन के किस्से कई सुनने को मिलने लगे।

मृदुला गर्ग ने अपने कथा-साहित्य में स्त्री की अस्मिता को जागृत करते हुए अस्तित्व-बोध एवं प्रतिरोधात्मक प्रक्रिया का खुलासा किया है जहाँ स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान ही मानवी हैं।

मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी-अस्मिता

स्वस्थ अर्थों में नारी-चेतना अथवा नारी-अस्मिता का अर्थ है - स्त्री-पुरुष के बीच के संबन्ध को नकारे बिना पारंपरिक संबन्ध से मुक्ति। मृदुला जी का मानना है कि जो दृष्टि नारी की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक छवि के तिलिस्म को तोड़ें वह नारी-चेतना है। उनके मतानुसार फ़ेमिनिज़्म का सही अनुवाद नारी - चेतना है। वह नारी की चेतना नहीं नारी-संबन्धी चेतना है। 'हर वह स्त्री या पुरुष फ़ेमिनिस्ट माना जाना चाहिए जो नारी-चेतना या दृष्टि से संपन्न हो।' उनके इस वर्गीकरण में पुरुष या स्त्री नहीं, मानसिक सोच, विचार अथवा चेतना मुख्य है। अपने 'सत्ता औ स्त्री' नामक निबन्ध में उन्होंने नारी के शोषण को शक्ति और सत्ता से जोड़ा है।

उनका विचार है, जिस वर्ग के पास सत्ता आ जाती है, वह अपने से कमतर व्यक्ति का शोषण करता है। नारी-मुक्ति के विषय में वे कहती हैं कि स्त्री की मुक्ति या प्रगति तभी सार्थक हो सकती है, जब उसकी लड़ाई पुरुष से न होकर दोषपूर्ण व्यवस्था, रूढ़ धार्मिक मान्यता, दोहरी-मूल्य-पद्धति आदि से हो।[1]

स्त्री और पुरुष की सामाजिक स्थिति की भिन्नता पर बात करते हुए समाज में स्त्री के प्रति दोयम व्यवहार की चर्चा होती है। वैधानिक क्षेत्र में भी स्त्री भेदभाव की शिकार है। अरविंद जैन ने 'औरत होने की सज़ा' नामक पुस्तक में कानूनी 'लूप होल्स' की चर्चा की है - "तुम औरत हो.... मुझसे अलग मेरे विरुद्ध आँख उठाने की कोशिश भी करोगी तो कीड़े-मकोड़े की तरह कुचल दी जाओगी। कोई तुम्हारी मदद के लिए आगे नहीं आएगा। समाज, धर्म, कानून, मठाधीश, मंत्री-नेता और राजा सब मेरे हैं; बल्कि ये ही वे हथियार हैं, जिनसे मैं दुनिया में ही नहीं, दूसरी दुनिया में भी तुम्हें नहीं छोड़ूँगा....।"[1]

मृदुला गर्ग भी अपने विचारात्मक साहित्य में लगभग यही प्रश्न उठाती हैं कि अलग-अलग धर्म-समुदायों के लिए नागरिक संहिता अलग-अलग है, किंतु सभी नारी के विरुद्ध जाती हैं। मध्यम वर्ग की स्त्री इस

---

1. अरविंद जैन - औरत होने की सज़ा - पृ. 27

अन्याय से सबसे ज़्यादा आहत होती है। वे कहती हैं कि 'पति की आय में पत्नी की हिस्सेदारी नहीं है और संबन्ध-विच्छेद होने पर, उसके व बच्चों के भरण-पोषण का उचित प्रावधान नहीं है, पैतृक संपत्ति में भी उसका बराबर का हिस्सा नहीं है। किसान-स्त्री उत्पादन का पूरा काम करते हुए भी खेत-ज़मीन की मालकिन नहीं होती यानी कानून स्त्री को खुद अपने घर में बराबर का हिस्सेदार नहीं मानता। ऐसी अनेक कमियाँ कानूनों में भी हैं।"[1]

2001 को नारी-सशक्तीकरण वर्ष के रूप में मनाया गया। समाज मे नारी की भूमिका को लेकर काफ़ी विमर्श हुए और हो रहे हैं। पर क्या आज भी वह उस मुक़ाम पर खड़ी है, जहाँ उसे होना चाहिए? यह सोचने वाली बात है।

वर्ष 2001 को नारी-सशक्तीकरण वर्ष मनाने का उद्देश्य सिर्फ इतना था कि पिछली सदी और घर से पहली बार बाहर निकली और इस शताब्दी में वह शक्ति के केंद्र में होगी। काफी आकर्षक विचार है यह। किंतु शक्तिपुंज तो वह ही है। दुःख की बात सिर्फ़ इतनी-सी है कि इस शक्ति-पुंज को जब तब प्रताड़ित करके धूल में मिलाने की कोशिशें होती रहती है।

मृदुला गर्ग कानून की ख़ामी के संबन्ध में कहती हैं कि "मेरी समझ में एक भीषण और बीभत्स कमी, बलात्कार-संबन्धी कानून में है

---

1. मृदुला गर्ग - चुकते नहीं सवाल - पृ. 70

और वह हमारे समाज की स्त्री-संबन्धी हेय दृष्टि और उसके सामंती रवैये को दर्शाती है। हमारी अदालतें, बलात्कृत स्त्री को 'चरित्रहीन' बताकर अभियुक्तों को लगातार बरी करती हुई आई हैं। महिला-संगठनों की वाजिब माँग है कि स्त्री के निजी 'सेक्स जीवन' से बलात्कार का कोई संबन्ध नहीं है। वेश्या के साथ किया गया बलात्कार भी अपराध है, वैसे ही जैसे किसी दुकानदार की हत्या अपराध है।"[1]

'सत्ता और स्त्री' नामक निबंध में उन्होंने न केवल सत्ता में स्त्री विषय पर चर्चा की है बल्कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में सत्ताधारियों द्वारा स्त्री पर होनेवाले अत्याचारों व न्याय-व्यवस्था की ख़ामियों पर भी प्रकाश डाला है। उनके विचारानुसार कानूनी, राजनीतिक व आर्थिक अधिकारों का मिलना तभी सार्थक हो सकता है, जब उन्हें सामाजिक स्वीकृति मिले। जब मृदुला जी स्त्री-अस्मिता संबन्धी प्रश्नों पर विमर्श करती हैं, तो उसके अच्छे-बुरे सभी पहलुओं पर बारीकी से विचार प्रकट करती हैं।

भारत में स्त्री संबन्धी कानून और समाज-व्यवस्था पर टिप्पणी करते हुए कहती हैं कि जो कानून नारी के हित के लिए बनाए गए हैं, वे तभी सार्थक हो सकते हैं, यदि उसको निर्णय लेने के अधिकार के साथ-

---

1. मृदुला गर्ग - चुकते नहीं सवाल - पृ. 70

साथ सामर्थ्य भी मिले। यह सामर्थ्य उसे खुद ही जुटाना होगा। अन्यथा उसको मिले अधिकार उसी के शोषण का माध्यम बन जाएगा। मृदुला जी ने *'मेरा'* कहानी में गर्भपात को नायिका का निजी प्रश्न बताया है। महिलाओं के लिए आरक्षण के प्रश्न पर मृदुला गर्ग शिक्षा-संस्थानों, नौकरियों व पंचायतों आदि में आरक्षण को नाकाफ़ी मानती हैं। मृदुला जी का मन है कि देश-भर के लड़के-लड़कियों के लिए समान ही नहीं बल्कि मुफ़्त शिक्षा का भी प्रावधान हो। प्राथमिक शिक्षा सभी की अनिवार्य आवश्यकता है।

आज भारत में स्त्री तीन स्तर पर एक साथ जी रही है। एक, वह विशिष्ट वर्ग, जिसे शक्ति चाहिए। दूसरी, जिसे अच्छी-ख़ासी साधारण ज़िंदगी की तलाश है, उसके सपने है जिन्हें वह पंख लगाना चाहती है। तीसरी, जिसे पता ही नहीं, सत्ता क्या होती है, सपने क्या होते हैं, अधिकार किस चिड़िया का नाम है। कानून क्या होता है। उसे तो दो वक्त की रोटी शांति से मिल जाए तो नसीब को सराहती है। इसी वर्ग की औरत को कल्याण, विकास और सशक्तीकरण इन तीनों की आवश्यकता है। अतः औरत की स्थिति को साधारणीकृत नहीं किया जा सकता।

अपने एक लेख के मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यास *'कठगुलाब'* के विषय में कहा है; 'इसे औरतों की कृति मत बनाइए।'[1]

---

1. राष्ट्रीय सहारा - शनिवार 27 अक्टूबर, 2001

'कठगुलाब' चार नारी-पात्रों और एक पुरुष-पात्क की कथा है। इन पाँच प्रतिनिधि पात्रों के माध्यम से मृदुला गर्ग ने स्त्री-जाति पर होनेवाले अत्याचारों की न केवल गाथा प्रस्तुत की है, बल्कि यह भी दिखाया है कि पूरब और पश्चिम में पुरुष मानसिकता लगभग समान है। बस में सफ़र करते या भीड़भाड़ वाले इलाके से पैदल चलते वक्त भेड़िए पुरुष की लार टपकाती नज़रों से किसी भी वर्ग की स्त्री नहीं बची।

मृदुला जी एक स्थान पर कहती हैं कि - "लेखक अपने जीवन के सत्य को जितने प्रखर और ईमानदार ढंग से रचना में प्रकट करता है, उतना सायास रूप से लिखी जीवनी में नहीं कर पाता। रचनाकार की प्रकृति ही ऐसी होती है कि सायास सच कहने के चक्कर में वह आधे झूठ को पूरा सच बतलाने पर मजबूर हो जाता है।"[1]

मृदुला गर्ग ने नारीवाद की नवीन परिभाषा गढ़ी है। अपने लेख 'देसी फेमिनिस्ट' में उन्होंने भारतीय समाज में 'फ़ेमिनिस्ट' शब्द के गाली रूप में प्रयोग करने पर बड़ी ही व्यंग्यात्मक टिप्पणी की है। लेखिका के अनुसार फ़ेमिनिज़्म (नारीवाद) का अर्थ है, "इतिहास और मौज़ूदा व्यवस्था को परखने-समझने की एक भिन्न जीवनदृष्टि या विश्वदृष्टि।"[2]

---

1. मृदुला गर्ग - रंग ढंग - मृदुला गर्ग की भूमिका से
2. मृदुला गर्ग - चुकते नहीं सवाल - पृ. 73

मृदुला जी के अनुसार नारीवाद का समर्थक कोई भी हो सकता है - स्त्री हो या पुरुष 'कठगुलाब' का पुरुष-पात्र विपिन नारीवाद का प्रबल समर्थक है। लेखिका द्रौपदी चीर-हरण के प्रसंग को उठाती हुई इस प्रश्न पर विचार करती है कि 'हारा हुआ पुरुष स्त्री को दाँव पर कैसे लगा सकता है' साथ में स्त्री अस्मिता संबन्धी प्रश्न उठता है कि क्या पुरुष स्त्री को दाँव पर लगा सकता है? यदि हाँ तो स्त्री पुरुष की संपत्ति है? मृदुला जी सवाल उठाती है कि "कोई भी पुरुष स्त्री का स्वामी क्यों हो? और उससे भी वज़नदार यह सवाल, स्त्री का मूल्य उसके व्यक्तित्व में निहित है या पुरुष से उसके संबन्ध में"[1]

मृदुला गर्ग के विमर्श के केंद्र में श्रमिक औरत है, जो परिवार के लिए रोज़ी-रोटी का जुगाड़ करने के बाद भी पुरुष से स्वयं को नीचा मानती है। नारी के दोहरे शोषण के संबन्ध में मृदुला गर्ग का विचार है कि सबसे अधिक उसका यौन शोषण हो रहा है। नारी-विमर्श में लेखिका को सबसे अधिक शील की समस्या खटकती है। उनके अनुसार "स्त्री है तो मादा, चाहे जिस वर्ग से हो, जितने घंटे काम में खपती हो, जितनी कम मज़दूरी पाती हो.... समस्या है तो शील की, शील की रक्षा की ओर शील पर आक्रमण की।"[2]

---

1. मृदुला गर्ग - चुकते नहीं सवाल - पृ. 74
2. वही - पृ. 44

नारी-स्वतंत्रता

मृदुला जी कहती है कि 'नारी को आज विज्ञापन के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। लोग सिर्फ़ यह सोचते हैं कि स्त्री घर की शोभा बनी रहे, जैसे भौतिक उपकरणों का संचय ही उसकी नियति हो। नारियों में भी वर्ग विभेद की स्थिति है, जिनके पास पैसा है, उन पर उपभोक्ता संस्कृति का प्रभाव अधिक पड़ रहा है। ...अपने यहाँ लोग नारी की बौद्धिक संपदा को न आँककर उसका मूल्यांकन भौतिक संपदा से करते हैं।'[1]

कमल कुमार कहती हैं - "स्त्री की अब तक की लड़ाई उसको देह माने जाने के विरुद्ध थी। उसे सोच और विचार-संपन्न इंसान समझे और समझाए जाने की थी। लेकिन आज की भौतिक संपन्नता, उपभोक्तावादी संस्कृति, वस्तुवाद और बाज़ारवादी ताकतों ने सबसे बड़ा संकट उसी के सामने खड़ा किया है। वह आज फिर इंसान से देह बनने को उतारू है।"[2]

अपनी अस्मिता की खोज में मृदुला गर्ग के लगभग सभी पात्र वायवीय लगते हैं। सारे नारी-पात्र पुरुष से दैहिक संबन्ध स्थापित करते हैं। अधूरेपन को भर नहीं पाते। मन के चक्रों में उलझती-छटपटाती यह स्त्री उस तीसरे वर्ग की स्त्री के उत्थान की दिशा में कुछ भी नहीं करती, जिसका ज़िक्र अपने विचारात्मक लेखों में लेखिका ने बार-बार किया है।

1. अजकल, जुलाई 2001 - पृ. 16
2. राष्ट्रीय सहारा, 15 दिसंबर 2001

'चित्तकोबरा' (मनु), *'एक और अजनबी'* (शानी), *'उसके हिस्से की धूप'* (मनीषा) कभी अपने अधूरेपन को भर नहीं पाते। मृदुला गर्ग के आभिजात्य संस्कार विचार करने से रोकते तो नहीं, किंतु व्याहहारिक जीवन में बाधा ज़रूर देते हैं। मृदुला जी अपने लेखों में पश्चिम अनुकरण न करने की सलाह देती है, भारत के अनुरूप ढ़लने की बात कहती हैं, किंतु नैतिक मूल्यों को अस्वीकार कर देती हैं, साथ ही विवाह-संस्था पर भी चोट करती हैं। पश्चिम का अनुसरण भले ही न करें, किंतु वहाँ के समाज से अपनी तुलना कर अपनी अस्मिता की खोज तो कर ही सकते हैं। लेखिका देह की पवित्रता को नहीं मानती।

नारी-स्वतंत्रता के विभिन्न पक्षों में से एक है - नारी का घर के कामकाज के एवज़ में पैसे माँगना। इस स्त्री-संबन्धी अधिकार विमर्श में मृदुला गर्ग पश्चिम के समाज का उदाहरण देती है, जहाँ बच्चों के पालन-पोषण का दायित्व राष्ट्र का होता है। किंतु यही तनख्वाह की माँग यदि भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में देखे तो भी इस माँग की कोई तुक नहीं होती। मृदुला गर्ग कहती है कि तनख्वाह या पारिश्रमिक की माँग मज़दूर मालिक से करता है। फिर गृहणी को तनख्वाह कौन देगा? पति? इसका सीधा अर्थ तो यह हुआ कि पति पत्नी का मालिक है और पत्नी उसकी नौकरानी।

मृदुला गर्ग संबन्धों को व्यावसायिक दृष्टि से देखने का विरोध करती हैं। उनके अनुसार परिवार सर्वाधिक शक्ति, पारस्परिक स्नेह और सौहार्द देता है। वे कहती हैं कि सबसे प्रबल भावना जो परिवार को बनाए रखती है, वह सुरक्षा की भावना ही है। सबसे बड़ी सुरक्षा भावात्मक होती है।

नारी-अस्मिता संबन्धी नारी-विमर्श में सबसे अधिक प्रहार भारतीय संस्कृति पर विवाह-संस्था का पर हुआ है। मृदुला जी कहती हैं - "मेरे पास एक स्वतंत्र अस्तित्व है, जो कोई मुझसे छीन नहीं सकता।"[1]

विवाह को हमारे देश में जीवन का अनिवार्य आश्रम माना गया है। वे लिखती हैं - "जिस समाज में औरत की हर बीमारी का इलाज शादी हो, अकेले हो पाने की चाह जगाना उसकी बीमारियों को लाइलाज बनाना है।"[2]

लेखिका अपने पास स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं। शादी के बाद भी उन्होंने अपने इस अस्तित्व को बचाए रखा। साहित्य रचना में रत मृदुला गर्ग इस बात की पुष्टि करती हैं - "मैं उन औरतों में से हूँ, जिसने हाथ में कलम शादी के बाद पकड़ी, जब आम पढ़ी-लिखी औरत, कलम साधना छोड़, पति-साधना शुरू कर देती है। पति-साधना मैंने भी की। पति सध भी गया पर प्रश्न वही-का-वही रहा, जो शादी से पहले था। एक अकेले कोने की तलाश जो सिर्फ़ मेरा हो।"[3]

---

1. मृदुला गर्ग - रंग ढंग - पृ. 38
2. वही - पृ. 28
3. वही - पृ. 34

नारी-अस्मिता-संबन्धी प्रश्नों के विमर्श में लेखिका ने मातृत्व की नवीन व्याख्या करने का प्रयत्न किया। नारीवाद अविवाहित मातृत्व को स्वीकृति देता है। भारत के कानून में 'हिंदू दत्तकता और भरण पोषण' अधिनियम 1956 की धारा और आठ के अनुसार कोई भी हिंदू पुरुष या स्त्री (बालिग, अविवाहित, तालाकशुदा या विधवा) पुत्र-पुत्री गोद ले सकते हैं।[1]

वास्तव में मृदुला गर्ग नारी-स्वतंत्रता की पक्षधर तो हैं पर वे कतई नहीं चाहतीं कि उसकी भाव-भूमि बंजर या शुष्क हो। स्त्री का स्त्रीत्व इसी में निहित है। इस भाव को उन्होंने *'कठगुलाब'* में प्रस्तुत किया है। उनकी नारी-अस्मिता संबन्धी दृष्टि में भावपक्ष समृद्ध है। मृदुला जी ने साज-श्रृंगार की वस्तुओं को नारी-सौंदर्य के उपादान के रूप में चित्रित किया है। ये पुरुष की गुलामी के प्रतीक नहीं हैं। करवाचौथ यद्यपि पति-पत्नी प्रेम का द्योतक है परंतु व्रत त्यौहार मात्र औरत ही के हक़ में नहीं आने चाहिए। इसे मानने की बाध्यता मात्र स्त्री को न हो। मृदुला गर्ग नारी-शोषण के साथ-साथ व्यक्ति के द्वारा अपने से कमतर के शोषण की भी आलोचना करती है। मृदुला जी लेखन को स्त्री या पुरुष नहीं सिर्फ लेखन मानती हैं। "मैं लेखक हूँ। नहीं, लेखिका। और भी हूँ न। ज़्यादा महत्त्वपूर्ण क्या है, लेखक होना या औरत होना।"[2]

---

1. हंस अप्रैल, 1997 - पृ. 77
2. मृदुला गर्ग - रंग ढंग - पृ. 34

मृदुला गर्ग के विवादास्पद विषय उन्मुक्त नारी के हैं जिसमें बिना अपराध-बोध के विवाहेत्तर संबन्धों को स्वीकारना, दूसरा सेक्स का खुलापन है। इसे उनके लगभग सारे कथा-साहित्य में देखने को मिलता है। अश्लीलता के प्रश्न पर मृदुला गर्ग ने सफाई दी है - "मैं समझती हूँ कि साहित्य में श्लील-अश्लील महत्त्वपूर्ण मुद्दा है ही नहीं.... 'चित्तकोबरा' के एक दृश्य को लेकर बावेला मच गया, जिसमें मन और शरीर का द्वैत और संभोग में नायिका का सहभागी न होना दिखलाया गया था। मंतव्य था संपूर्ण प्रेम (जिसमें शरीर अभीष्ट वही होता, पर संप्रेषण का माध्यम अवश्य होता है) और प्रेमहीन शारीरिकता के विरोध को दिखलाना।"[1]

इस प्रकार नारी संबन्धी मुद्दों पर मृदुला गर्ग ने विस्तृत विचार किया है। इस विमर्श में उच्च, मध्य एवं निम्न वर्ग पर नारी की स्थिति का आकलन किया है। परंतु यह एक विशेष चिंताजनक प्रश्न है कि नारी-अस्मिता की खोज कहीं दिशाहीन यात्रा पड़ावों तक ही सीमित न रह जाएँ।

सामाजिकता और नारी-अस्मिता

समाज

जब व्यक्तियों के मध्य पाए जानेवाले संबन्ध एक व्यवस्था में बँधे होते हैं, तब इस व्यवस्था को ही समाज कहते हैं। "समाज पृथक-पृथक

---

1. सारिका - 16-30 नवंबर 1984 - पृ. 47-48

व्यक्तियों का एक यांत्रिक समूह है। व्यक्ति एक दूसरे से स्वतंत्र है, वे स्वतंत्र जीवन-यापन करते हैं, उनका एक-दूसरे से समझौता होता है और समाज रचना हो जाती है।"[1]

विवाह

नारी-अस्मिता के संदर्भ में मृदुला गर्ग अपने लेखन में नवीन मूल्य-दृष्टि की स्थापना करती है। उनके अनुसार "पुरुष और स्त्री का संभोग.... कुछ नहीं है यह... महज़ एक गढ़े को भर देने की उत्कट लालसा है, जो हर मानव को विरासत में मिली है।"[2]

लेखिका का सोचना है कि स्त्री-पुरुष-संबन्ध को स्वतंत्र और स्वच्छंद होना चाहिए। इस स्वच्छंदता के लिए वे विवाह की मर्यादा को भी नहीं मानतीं। उनके लिए स्वतंत्रता व्यक्ति के लिए किसी भी मर्यादित संबन्ध से ज़्यादा महत्त्व रखती है। *'उसके हिस्से की धूप'* में लेखिका ने विवाह की प्राचीन पद्धति को बंधन मानते हुए मनीषा के द्वारा इसके परिवर्तित रूप को स्वीकार किया है। मनीषा को विवाह की पुरानी रस्मों में बिलकुल भी विश्वास नहीं है। जितेन से उदासीन होकर वह उससे तलाक ले लेती है। मनीषा विवाह के इस रूढ़ीवादी सोच से विद्रोह करती है। उसके अनुसार

---

1. जे.एन. सिन्हा - नीतिशास्त्र - पृ. 261
2. मृदुला गर्ग -चित्तकोबरा - पृ. 118

यह ज़रूरी नहीं कि विवाह के पश्चात् पति-पत्नी जो भी करें एक साथ करें। दोस्त भी बनाएँ तो एक। "यह वैवाहिक जीवन भी अजीब चीज़ है... जो करो एक साथ। साथ बैठो, साथ बोलो, चाहे बोलने को कुछ हो, चाहे नहीं, साथ घूमो, साथ दोस्त बनाओ, चाहे एक का दोस्त दूसरे को कितना ही नामुराद क्यों न लगे, साथ खाओ और साथ सोओ, चाहे एक के खराटे दूसरे को सारी रात जगाए क्यों न रखें।"[1]

'चित्तकोबरा' परंपरागत भारतीय विवाह-संस्था पर प्रश्नचिह्न लगाता है, जहाँ पति-पत्नी परस्पर साथ रहते हुए यंत्रवत् बर्ताव करते हैं, किंतु भारतीय विवाह संस्था में पति-पत्नी के संबन्ध का आधार केवल यौन-संबन्ध नहीं है, बल्कि परस्पर प्रेम, विश्वास और सबसे अधिक प्रतिबद्धता है। *'चित्तकोबरा'* में लेखिका ने भले ही 'मनु' की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है, किंतु इसका पुरुष-पात्र महेश परंपरागत रूपों से अलग है। "विवाह के बंधन में मेरा विश्वास नहीं है, मनु।"[2]

मनु की अस्मिता की खोज विवाह को बरकरार रखते हुए भी उसकी मर्यादा को लाँघ जाती है। उसे रिचर्ड के सान्निध्य में सुख मिलता है, तो दूसरी ओर अपने पति के साथ रत होने पर वह पीड़ा का अनुभव करती है।

---

1. मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 18
2. मृदुला गर्ग - चित्तकोबरा - पृ. 102

मृदुला गर्ग के *'वंशज'* उपन्यास में विवाह एक विडंबना है। सुधीर तथा उसकी पत्नी के परस्पर विपरीत स्वभाव उनके पारिवारिक जीवन को सुखमय बनाने में साधक हैं। उसकी पत्नी चूँकि अर्थलोलुप नारी है, अतः यहाँ नारी-अस्मिता तथा उससे जुड़े विवाह-पूर्व अथवा विवाहेत्तर संबन्धों का उल्लेख नहीं मिलता है।

'अनित्य' राजनीतिक उपन्यास है। इस उपन्यास के नायक अविजित के विवाह-पूर्व संबन्ध थे और विवाहोपरांत भी उसके प्रेम संबन्ध चलते रहते हैं। कारण है उसकी दांपत्य-जीवन से असंतुष्टि। उसकी पत्नी श्यामा अतिरिक्त सौंदर्य की स्वामिनी है, किंतु अविजित की दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति में असमर्थ होने पर अविजित के लिए नममात्र की पत्नी है और संगीता पत्नी न होते हुए भी पत्नी की आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम। काजल बेनर्जी के साथ उसके विवाह-पूर्व संबन्ध हैं तथा संगीता एवं रंजना से विवाहेत्तर संबन्ध। *'अनित्य'* में चार विवाहित जोड़े हैं - अविजित-श्यामा, संगीता-सुरेश मंडालिया - काजल मुकर्जी बाबू तथा स्वर्णा-लक्ष्मण का। स्वर्णा को छोड़कर शेष सब त्रासद हैं।

लेखिका के *'मैं और मैं'* नामक उपन्यास में विवाहित माधवी और राकेश की स्थितियों को जोड़कर दिखाया गया है। दोनों एक दूसरे के पति समर्पित हैं। "कितना प्यारा पति पाया है उसने। भारतीय पुरुष और

पत्नी के अकेलेपन की ज़रूरत को समझे, ऐसा पति जिस स्त्री को हो उसे और क्या चाहिए।"[1]

मृदुला गर्ग के उपन्यास *'कठगुलाब'* में विवाह-संबन्ध से गुज़र कर अपनी अस्मिता की खोज करते पात्र नज़र आते हैं। विवाह इस उपन्यास के स्त्री-पात्रों के लिए छल, पीड़ा और शारीरिक-मानसिक यंत्रणा लेकर आता है, जिसके बीच वे स्वयं को असहज महसूस करती हैं और उसके अस्तित्व को ही नकार देती है। जीजा द्वारा बलात्कृत स्मिता अमेरिका जाकर जिम जारविस से विवाह करती है, जो एक 'साइक्याट्रिस्ट' है। पहले-पहले अनुरक्त जिम बाद में वहशीपन में उतर आता है। अतः स्मिता भारत वापस आ जाती है। स्मिता की बहन नमिता पति के अपाहिज होते ही अपने बिज़नेस पार्टनर जो असीमा का भाई है; शारीरिक संबन्धों में घिर जाती है। वह एक मौकापरस्त औरत है। उसकी बेटी नीरजा महज़ बच्चा पैदा करने के लिए विपिन से दैहिक संबन्ध स्थापित करती है। इसी तरह असीमा की माँ विवाहित होकर चरित्रहीन पति को सहने में असमर्थ है और बेटी को बगैर विवाह विपिन के साथ रहने के लिए कहती है। इस उपन्यास के अकेले पात्र विपिन के साथ रहने के लिए कहती है। इस उपन्यास के अकेले पात्र विपिन के अनुसार "विवाह में मेरी भी विशेष आस्था नहीं है और नीरजा उससे इतना खौफ़ खाती है कि ज़ोर देने से

1. मृदुला गर्ग - मैं और मैं - पृ. 10

मानेगी नहीं। आप जानती होंगी, उसके माँ-बाप के संबन्धों की कटुता ने उसके मन में विवाह के लिए नफ़रत पैदा कर दी है।"[1]

मृदुला गर्ग के सभी औपन्यासिक पात्र अपनी अलग दृष्टि रखते हैं। कहीं वे आस्थापरक हैं तो कहीं अनास्थापरक।

मृदुला गर्ग की कहानी *'अवकाश'* मुक्त प्रेम और यौन-संबन्धों की कहानी है। एक पुरुष महेश से ऊबकर उसकी पत्नी दूसरे प्रेमी समीर के साथ उड़ना चाहती है। जब महेश उसे बच्चों के लिए समीर के पास जाने से रोकना चाहता है तो वह कहती है, "मैं क्या करूँ, प्यार किया नहीं जाता हो जाता है। यह मुझे खींच लिए जा रहा है। मुझे माफ़ करो, मैं तुम्हें बहुत दुःख दे रही हूँ, पर मुझे जाने दो, मुझे जाना ही है, ओह महेश, मैं कुछ नहीं कर सकती।"[2]

'कितनी कैदें' कहानी-संग्रह में ही संग्रहीत *'अगर यों होता'* में प्रेम की अतिशयता और काम का अभाव है। जिम एवं मधुर दोनों ही अलग-अलग विवाहित होते हुए भी एक दूसरे के प्रति अनुरक्त हैं। *'तुक'* कहानी में पत्नी के लिए पति का होना एक तरह से व्यवसाय है - "पति का होना उनके लिए एक स्थिति है, जिसके भीतर से कुछेक और सुखदायक स्थितियाँ पैदा होती है, जैसे बच्चों का होना, घर का होना, घर में ढ़ेरों काम

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 217
2. मृदुला गर्ग - कितनी कैदें - अवकाश - पृ. 114

का होना और अपनी ही तरह के जोड़ों के साथ सामाजिक ताल्लुकात का होना। पति का होना उनके लिए एक तरह का व्यवसाय है, जिसके माध्यम से उन्हें पैसा और व्यस्तता दोनों मिलते हैं।"[1]

इस कहानी की नायिका मीना प्रेम को व्यवसाय नहीं, अपितु एक सहज भाव मानती है।

'ग्लेशियर से' कहानी-संग्रह का 'होना' कहानी की नायिका भी आत्मनिर्भर है, किसी से प्रेम करती है। प्रेम ही उसके जीवन की सार्थकता है। 'खरीदार' कहानी की नायिका 'नीना' के लिए विवाह-संबन्ध ख़रीद-फ़रोख़्त हैं। इसीलिए वह आई.ए.एस. बनकर चुनाव का हक हासिल कर लेती है तभी शादी की स्वीकृति देती है। उसकी माँ कहती है कि, "यह तो दुनिया का कायदा है। पहले-पहल लड़की की सूरत देखी जाती है, और लड़के की कमाई। बाद में सब ठीक हो जाता है। तेरी तरह ज़िद करती तो आधी लड़कियाँ कुँआरी ही रह जाती।"[2]

'रुकावट' कहानी की नायिका विवाहित होते हुए भी पर-पुरुष से शारीरिक संबन्ध रखती है। यहाँ पति को इस बात की खबर तक नहीं है।

मृदुला गर्ग के समस्त कहानी संग्रहों में विवाहेत्तर संबन्ध, प्रेम के आवेग और सेक्स-चित्रण को स्वीकृति मिली है। उनकी नारी आधुनिका

---

1. मृदुला गर्ग - ग्लेशियर से - पृ. 50-51
2. वही - पृ. 83

होने और निर्बंध प्रेम की पक्षधर होने की वजह से विवाहिता होकर भी अन्य पुरुष के प्रति आकर्षित है। और यह संबन्ध उसे हेय नहीं लगता। इतनी स्वच्छंद होकर भी वह अपनी अलग अस्मिता की पहचान के लिए सचेत है। उसके दैहिक संबन्ध उचित हैं या अनुचित, नैतिक है या अनैतिक इन शब्दों के घरे से बाहर निकलकर पुरुष के उस शोषक मनोवृत्ति के ख़िलाफ़ खड़ी होती है, जहाँ पुरुष उसके साथ प्रेयसी के संबन्धों के धरातल पर नहीं, एक वेश्या के संबन्धों के धरातल पर जुड़ता है।

अतः इस प्रकार लेखिका के विवाहेत्तर संबन्ध दिखाने की वृत्ति खूब रमी है।

स्त्री और नैतिकमूल्य

नारी की अस्तित्वगत चेतना ने उसे अस्मिता के प्रति जागरूक ही नहीं किया बल्कि रुढ़िग्रस्त परंपरागत सामाजिक नैतिक मूल्यों को नकार भी दिया। किसी भी सजग एवं सचेत व्यक्ति को उद्वेलित करने वाले प्रश्न हैं - नैतिकता क्या है और उसके मानदंड क्या हैं? 'नैतिकता' मनुष्य के आचरण का संचालन करनेवाली समाज-सापेक्ष नियमावली होती है। यह मानव के व्यवहार को समाजोपयोगी तथा समाजानुकूल बनाती है। नवजागरण के उपरांत आधुनिकताबोध ने मनुष्य के नैतिक मूल्यों में भारी परिवर्तन किया। उत्तर आधुनिकता में नैतिक मूल्य और अधिक बिखरते चले गए।

व्यक्ति आज अपने नैतिक मूल्य खुद बना रहा है। नैतिकता के निर्धारण में व्यक्ति समाज का हस्तक्षेप नहीं स्वीकारता। पुरुषों के संग स्त्रियों ने भी नैतिकता के धरातल पर अपनी मान्यताएँ स्वयं निर्मित की है।

मृदुला गर्ग का समस्त लेखन प्राचीन नैतिक मूल्यों पर कुठारघात करता है। *'अनित्य'* (राजनीतिक उपन्यास) में अविजित के प्रेम संबन्धों की अतिशयता उदाहरण है। अपनी बेटी की उम्र की संगीता के प्रति अविजित की कामांधता नैतिक मूल्यों को छिन्न-भिन्न कर देती है। अपनी पत्नी को वह बादलों से बनी औरत कहता है, जो उसकी शारीरिक क्षुधा को पूर्ण करने में असमर्थ है। *'अनित्य'* का अविजित, संगीता के प्रति अपने अनैतिक आचरण को स्वयं ही 'जानवर की भूख' कह कर संबोधित करता है, किंतु लेखिका के नारी पात्र बिना किसी अपराध-बोध के शारीरिक संबन्ध स्थापित करते हैं। मृदुला गर्ग की नवीन नैतिकता एक बहुत बड़ा प्रश्न समाज के सामने रखती है कि परस्त्रीगमन से स्त्री जो कष्ट झेलती है वही कार्य स्त्री यदि समानता अथवा स्पर्धा के नाम पर करें तो क्या ग्राह्य है? मृदुला जी के स्त्री-पात्र संपन्न घरानों से ताल्लुक रखते हैं। यहाँ नारी के साथ पुरुष भी विवाह के बंधन को नकार रहा है। *'चित्तकोबरा'* में रिचर्ड और मनु प्रेम तो करते हैं। किंतु विवाह नहीं करना चाहते। रिचर्ड कहता है "मैं बच्चों को नहीं छोड़ सकता।"[1]

---

1. मृदुला गर्ग - चित्तकोबरा - पृ. 138

स्त्री की लड़ाई जो दासता से मुक्ति की थी, वह सहचरी पर आकर ठहर गई। मनु के विवाहेत्तर काम-संबन्ध का कारण महेश की उदासीनता नहीं, बल्कि मनु की घुमक्कड़ी वृत्ति है, जिसे उपर्युक्त कथन में वह स्वयं स्वीकारती है। लेखिका, 'नैतिकता' को अर्थहीन बताते हुए यह तर्क देती है कि, "समाज द्वारा स्थापित नैतिक मूल्यों के भय से दबा देने से ही प्रेम अशरीरी नहीं बन जाता। केवल कुंठा का रूप धारण कर लेता है, जो उसे हर समय भयभीत बनाए रखती है। पुरुष स्त्री के सम्मुख पड़ने से सिर्फ़ इसलिए कतराता है कि उसके भीतर काम-तृष्णा इतने भयंकर रूप से ललचाती रहती है कि शरीर मात्र को देखकर वह विचलित हो सकता है, उसे ब्रह्मचारी कहकर संबोधित करना एक मज़ाक ही है।"[1]

मृदुला गर्ग की *'उसके हिस्से की धूप'* की मनीषा पति के स्वभाव की एकरसता से उबरने के लिए मधुकर की ओर आकर्षित होती है। मधुकर का प्रेम पाकर मनीषा को लगता है जैसे "जीवन में पहली बार किसी ने उसे प्यार किया है। उसके पोर-पोर को, कण-कण को, उसके प्राण के रोम-रोम को, उसकी हँसी और रुलाई को, उसके विचार-कुविचार को।"[2]

मनीषा उपन्यास में लेखिका की हैसियत से प्रकट होती है। वह प्रत्येक क्षणों से प्रेरित होकर लिखती है। मधुकर की पत्नी बनकर जितेन

---

1. मृदुला गर्ग - चित्तकोबरा - पृ. 8
2. मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 110

से प्रेम करती है और जितेन की पत्नी बनकर मधुकर के सान्निध्य में सुख पाती है। नैतिक मूल्यों के लिए उसके यहाँ कोई स्थान नहीं। अस्मिता की खोज में विवाह-पूर्व अथवा विवाहेत्तर सेक्स संबन्ध आधुनिक नारी की यात्रा के पड़ाव हैं। आठवें दशक के उपन्यासों में ऐसे संबन्धों की भरमार सी है। मृदुला गर्ग के *'चित्तकोबरा'* के प्रेम-प्रसंग महिला-लेखन को क्रांतिकारी पहचान दिलाते हैं। लेखिका पर अश्लीलता के आरोप लगने पर इस आरोप के उत्तर में लेखिका का कथन - "अचरज हो रहा है इस प्रश्न पर। क्या उपन्यास 'अनित्य' की काजल बनर्जी, प्रभा, शुभा, संगीता, स्वर्णा को बिल्कुल भूल गए? उपन्यास 'मैं और मैं' की नायिका माधवी और भी अनेक कहानियों की नायिकाएँ? कहाँ है? इनके पास प्रेमी या पति? और अगर है ही तो जो 'तीसरा क्षितिज' या उससे भी आगे बढ़कर अनगिनत क्षितिज इन्होंने खोज लिए हैं, उनकी सीमा बिंदुओं को छू पाने में अक्षम। अगर 'उसके हिस्से की धूप' और चित्तकोबरा' उपन्यासों को भी लें, दोनों ही उपन्यासों में नायिका पति-प्रेमी के द्वंद्व से ग्रस्त ज़रूर होती हैं, पर परिणति उसकी तीसरे क्षितिज को छूकर ही होती है, प्रेमी या पति पाकर नहीं।"[1] लेखिका के अनुसार साहित्य में श्लील-अश्लील महत्त्वपूर्ण मुद्दा नहीं है। नैतिक मूल्य में साहित्य और समाज लेखिका के लिए भले ही कोई महत्त्व नहीं रखते, किंतु भारतीय सभ्यता और संस्कृति में इसके महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता।

---

1. वैचारिकी संकलन - अप्रैल, 1998 - पृ. 48

मृदुला गर्ग के लिए लेखन 'नाकाबिले बर्दाश्त' अनुभूति की अभिव्यक्ति है। मृदुला जी जिस अनुभूति की बात करती है वह आदिमानव का युग था। जिसमें मुक्त-यौन संबंध हुआ करता था। सभ्यता के विकास के साथ व्यवस्थाएँ अस्तित्व में आई और विवाह तथा परिवार अंग बनें। स्त्री-पुरुष के यौन संबंधों की स्वीकृति कानून व्यवस्था भी एक स्त्री और एक पुरुष के वैवाहिक संबंध को ही स्वीकृति प्रदान करते हैं। इससे इतर संबंध समाज और कानून दोनों ही अवस्थाओं में अवैध माने जाते हैं।

'अवकाश' कहानी मुक्त प्रेम तथा यौन संबंधों की कहानी है। इसकी नायिका मनु और मनीषा की भाँति पति के आगे समीर से प्रेम करती है और दैहिक संबंध स्थापित करती है। आगे वह अपने पति से तलाक लेने का प्रस्ताव रखती है। *'रुकावट'* की रीता इस बात पर पश्चाताप करती है कि वह अपने स्नेही पति के होते हुए मदन से संबंध रखती है। वह अपने और मदन के प्रेम-संबंध पर विचार करते हुए सोचती है– "उसका स्नेही, सज्जन, संवेदनशील पति, न सही प्रणय की उत्कट लालसा, न सही श्रृंगार का मुग्ध संगति, न सही उन्माद में लुप्त चेतना, स्नेह तो था।"[1]

मृदुला गर्ग की नारी-अस्मिता कहीं न कहीं पर पुरुषों के साथ दैहिक संबंध पर पूर्ण ज़रूर होता है। परंतु ऐसा करके मृदुला जी बताना

---

1. मृदुला गर्ग - चर्चित कहानियाँ - पृ. 159

चाहती है कि, यदि स्त्री भी पुरुषों के समान उतारू हो जाएँ तो स्वस्थ समाज की स्थापना कभी नहीं हो सकती। यदि पुरुष बीच हरकत करता रहेगा तो वह दिन दूर नहीं जब स्त्री को लगेगा - यदि पुरुष कर सकता है तो मैं क्यों नहीं? डॉ. वीरेन्द्र सक्सेना ने लिखा है – "वास्तविक आवश्यकता इस बात की है कि नारी इस बात को महसूस करे कि जीवन की सार्थकता स्वयं अपने व्यक्तित्व को विकसित करने में है, न कि किसी पुरुष का सहारा ढूँढ़कर उसकी समर्पिता बन जाने में।"[1]

मृदुला जी अस्मिता की खोज में प्रयासरत पात्रों के लिए जो परिस्थिति सामने आती है, उसमें स्त्री-पात्रों का आचरण उचित नहीं लगता। उनके पुरुष-पात्र भी अत्याधुनिक हैं जो स्त्री-स्वतंत्रता को बुरा नहीं मानते। *'उसके हिस्से की धूप'* का जितेन समझता है कि मनीषा को तलाक लेने की ज़रूरत नहीं है। *'रुकावट'* का नायक भी ऐसा ही सोचता है। परंतु ऐसे पात्र का वास्तविक जीवन में मिलना मुश्किल है। मृदुला जी जहाँ भी एकनिष्ठ नारी का चित्रण करती है वहाँ वह पति को संतुष्ट करने में सफल नहीं होती। *'वंशज'* की सविता विवाह संबंधी किसी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती परंतु पति के प्रति अपने दायित्व की पूर्ति नहीं करती।

भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का विशेष महत्त्व है। मृदुला गर्ग की नायिकाएँ पति से समस्त कामनाओं की पूर्त्ति करती हैं,

---

1. मधुमती - अक्टूबर, 1975 - पृ. 28

किंतु दूसरे अर्थ में, यंत्र बन जाती हैं। इंद्रिय-सुख या यौन-तृप्ति उन्हें प्रेमी के पास जाकर रोमांचकारी अनुभव पाने में ही होती है। मृदुला गर्ग का लेखन पाठकों के समक्ष महत्त्वपूर्ण प्रश्न खड़ा करता है कि भारतीय नारी जिस पश्चिम के मार्ग का अनुसरण कर रही है, और भारतीय नैतिक मूल्यों को तोड़ रही है वह उसे कहाँ लाकर खड़ा करेगी। जबकि पश्चिम की नारी स्वयं वहाँ तलाक, अकेलापन और अतिभोगवादी प्रवृत्ति के बीच जूझ रही है। *'मेरा'* की नायिका के लिए गर्भ निजी महत्त्व का प्रश्न हो सकता है क्योंकि वह विवाहिता है, लेकिन अवैध संबंध हमारे समाज में पश्चिम की भाँति 'चाइल्ड अब्यूज़' की एक नई समस्या को लेकर मुँह चिढ़ा रहे होंगे। मृदुला जी ने जिन वास्तविकताओं को अपने साहित्य में स्थान दिया है उनमें अपनी अस्मिता के प्रति सजग नारी न केवल प्राचीन मान्यताओं का परिष्कार करना चाहती है। अपितु अपने लिए नवीन मूल्यों की स्थापना भी करना चाहती है, जो उसकी प्रगति के मार्ग में बाधन नहीं, साधक सिद्ध हों।

आर्थिक संदर्भ

नारी-अस्मिता के प्रश्न में 'अर्थ' महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। मृदुला जी अपने लेखन में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती नारी का चित्रण करती है। उन्हें अर्थोपार्जन करते हुए दिखाया है। अर्थोपार्जन कहीं खालीपन भरने के लिए है तो कहीं विवशतावश अर्थ का अवलंबन ढूँढ़ा है।

मृदुला जी अपने संस्मरण में लिखती हैं - "शादी से पहले मैंने तीन साल कॉलेज में अर्थशास्त्र पढ़ाया था। तो उस कमाई में से जमा किए गए पैसों से मैंने एक टाइपराइटर ख़रीद लिया। मुझे याद है, मेरे पति को यह ख़ासी फ़िज़ूलखर्ची लगी थी। बात वाज़िब थी। 32 साल की उम्र में लिखना शुरू करने पर, कोई कैसे जान सकता है कि वह लिखता रहेगा, और टाइपराइटर आया था, पूरे दो हज़ार में।"[1] मृदुला जी का उपर्युक्त वक्तव्य एक घरेलू औरत के आत्मनिर्भर होने की संघर्षपूर्ण प्रक्रिया पर प्रकाश डालता है। वे कहती हैं - "लेखन से होनेवाली कमाई इतनी ज़रूर थी कि मैं अपना, सिर्फ़ अपना, जीवन-यापन कर सकूँ...... पारिश्रमिक एक संबल था, जो खांटी लेखन करने देता था।"[2]

अर्थ की महत्ता को दर्शाने के लिए लेखिका ने आधुनिक युग में पनप रही अर्थाभावजन्य स्थिति को अपनी रचनाओं में दिखाया है। *'टुकड़ा-टुकड़ा आदमी'*, *'दूसरा चमत्कार'*, *'गुलाब के बग़ीचे तक'*, *'मौन में मदद'*, *'मधुप पत्रकार'*, *'लौटना और लौटना'*, *'स्थगित कल'*, *'मेरे देश की मिट्टी अहा'*, *'ज़ीरो अक्स'* आदि कहानियों तथा *'वंशज'*, *'मैं और मैं'*, *'अनित्य'*, *'कठगुलाब'*, *'उसके हिस्से की धूप'* उपन्यासों में नारी के जीवन में अर्थ की महत्ता को दिखाया है।

---

1. कथादेश - मई, 1999 - पृ. 9
2. वही - पृ. 9

'उसके हिस्से की धूप' की नायिका 'मनीषा' जो कि लेखक है उसके जीवन में अस्मिता संबंधी खोज के दरमियान 'अर्थ' अलग-अलग महत्ता लेकर आते हैं। जितने की पत्नी रहते हुए लेखन उसके लिए शौक़ मात्र था। वह अपना खालीपन भरने के लिए कहानियाँ लिखती थीं। किंतु मधुकर की कम आय ने उसे नियमित नौकरी करने के लिए प्रेरित किया। "उसकी कहानियों में भी मांसलता आ गई और रूमानियत में वह बिकने लगीं। उसके रस-भरे क्षणों की क़ीमत लगने लगी। अब उसने पाया कि उनके बदले में मिला रुपया, उसके कॉलेज वाले वेतन से काफ़ी कम होते हुए भी उसके लिए नगण्य नहीं रह गया है। मधुकर की आय कभी भी अधिक नहीं रही थी, पर पिछले महीनों में क़ीमतें इतनी तेज़ी से बढ़ी थीं कि उसे अपना कमाना आवश्यक लगने लगा था।"[1]

यहाँ आधुनिक ज़माने के पति-पत्नी का ज़िक्र है जिन्हें जीविका चलाने के लिए अर्थोपार्जन करना पड़ता है।

स्त्री का घर से बाहर आकर काम करने का उद्देश्य था कि वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो सके। शोषण से मुक्ति पा सके। किंतु परिवर्तित समाज तथा अर्थव्यवस्था में केवल एक व्यक्ति द्वारा काम काम संभव नहीं। इस प्रकार आज के युग की जीवनशैली ने नारी को अनिवार्य

---

1. मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 33

रूप से कामकाजी बना दिया। अर्थशास्त्र की छात्रा और अध्यापिका रही मृदुला गर्ग जीवन में अर्थ की महत्ता को भली-भाँति पहचानती हैं।

'वंशज' की सविता आर्थिक रूप से कामकाजी तो नहीं है किंतु जीवन में 'अर्थ' को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देती है। वह एक दुनियादार औरत है, जो भौतिक संपत्ति को सर्वोपरि मानती है। जज साहब की आज्ञाकारिणी बहू बनने के पीछे की मानसिकता द्रष्टव्य है - "जैसे ही उसकी समझ में आ गया कि उस संभ्रात घर के ऐश्वर्यमयी स्वामिनी बनने के लिए उसे सुधीर के नहीं, जज साहब के कंधे थामने होंगे, वह 'पिया मिलन' की व्यग्र रोमानी वधू से कर्तव्य-निष्ठा से ओत-प्रोत कुलवधू बन गई।"[1]

सविता का चरित्र आज की उपभोक्तावादी संस्कृति के अर्थलोलुप व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है तो संगीता उपभोक्तावादी संस्कृति की शिकार है। अविजित उसका संरक्षक तो बन जाता है, किंतु बदले में उसका दैहिक शोषण करता है। संगीता इस शोषण की स्मृतियों से कभी उबर नहीं पाती। उसकी माँ गौहरबाई एक वेश्या थी और देह बेचकर पेट पालती थी। उसने यह व्यापार स्वेच्छा से अपनाया है। किंतु संगीता अविजित के एहसानों तले दबी थी अर्थ से उत्पन्न त्रासदी प्रस्तुत वाक्य व्यक्त करता है। "चंदे से पढ़ी हुई लड़कियाँ अपने प्रेमी के नाम के आगे भी जी लगाती है

---

1. मृदुला गर्ग - वंशज - पृ. 116

और शादी मालदार सेठों के बेटों से करती है..... आगे फिर कभी किसी लड़की की पढ़ाई में चंदा दें, तो सूक्ति काम आएगी....।"[1]

इसी उपन्यास की काजय-बैनर्जी, मुकर्जी बाबू जैसे संपन्न प्रतिष्ठित व्यक्ति की पत्नी है। अपनी अस्मिता की आहुति नहीं देना चाहती और पति से तलाक़ लेकर अकेले रहना स्वीकारती है। वह प्रभा के कॉलेज में इतिहास की लेक्चरर है। इस प्रकार अर्थ का अवलंबन उसे स्त्री-शोषण से मुक्ति का मार्ग दिखलाता है। 'मैं और मैं' की नायिका माधवी भी लेखिका हैं और संपन्न घराने से ताल्लुक रखती हैं। वह अपनी मानसिक तुष्टि के लिए ठीक 'उसके हिस्से की धूप' की 'मनीषा' की भाँति लेखन करती है। उसके इसी समृद्ध जीवन से आकृष्ट होकर कौशल कुमार उसका आर्थिक शोषण करता है। उदाहरण द्रष्टव्य है– "सौ रुपए मिलते ही आपका पैसा लौटा दूँगा। इस वक्त हाथ तंग है। ऐसा कीजिए, आप मुझे बीस रुपये और दे दीजिए। पैसा मिलते ही इकट्ठा तीस दे जाऊँगा।"[2]

एक ओर अर्थ की संपन्नता कौशल कुमार को माधवी का शोषण करने के लिए बाध्य करती है, तो दूसरी ओर अर्थ की विपन्नता अनाथ स्मिता (कठगुलाब) को जीजा के घर में शरण लेने को बाध्य करती है। स्मिता और संगीता (अनित्य) दोनों ही नारी-चरित्र लगभग समान

---

1. मृदुला गर्ग - अनित्य - पृ. 15
2. मृदुला गर्ग - मैं और मैं - पृ. 14

परिस्थितियों से जूझते दिखाई देते हैं। दोनों ही पढ़-लिखकर आत्मनिर्भर होना चाहते हैं, किंतु शिक्षा के लिए धन कहाँ से आए। अविजित की आर्थिक सहायता संगीता की भावुकता का फ़ायदा उठाकर उसका दैहिक शोषण करती है, तो स्मिता, जीजा द्वारा बलात्कृत होती है।

आर्थिक तंगी के कारण स्मिता को पल-पल ज़िल्लत का सामना करना पड़ता है - "गाली की तरह उछाले गए जीजा के रुपए उठाने पड़े। कितनी घिन्न आई थी, इन्हें छूने पर। चश्मे के बग़ैर एक दिन भी काटना अंधे कुएँ में गिरने की तरह था।"[1]

मृदुला गर्ग अपनी रचनाओं में भिन्न परिस्थितियों के संदर्भ में नारी की आर्थिक स्थिति का चित्रण करती हैं। नारी-अस्मिता के प्रश्नों में आर्थिक संदर्भ के विमर्श के लिए विस्तृत विचार-भूमि उपलब्ध कराई है। इन विभिन्न परिस्थितियों में उनके नारी-पात्र एक ओर तो अर्थ का अवलंबन पाकर अपने व्यक्तित्व को ऊँचा उठा लेते हैं, तो कहीं दूसरी ओर अति महत्वाकांक्षी होकर पूँजी के दास बनने से भी गुरेज नहीं करते।

'टुकड़ा-टुकड़ा आदमी' नामक कहानी-संग्रह की एक और कहानी है *'दो एक-फूल'* जिसकी नायिका मालती शर्मा अविवाहित डॉक्टर है। उसके घर में झाड़ू-पोंछा करके शांतम्मा आपना जीवन यापन करती है। शांतम्मा का पति अपनी कमाई के पैसों से शराब पीकर घर में मारपीट

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 17

करता है और औरत को मजबूरी में घर से बाहर निकलकर अर्थोपार्जन करना पड़ता है। यहाँ औरत दोहरे शोषण की शिकार है। अर्थ की शक्ति होते हुए भी वह अपनी नियति को बदल नहीं पाती। शांतम्मा का पति कहता है, "अब सारी उमर बैठी-बैठी रोटियाँ तोड़ेगी या काम पर भी जाएगी।"[1]

'यह मैं हूँ' की सरल कालरा रेडियो स्टेशन में काम करके अर्थोपार्जन में पति का हाथ बँटाती है। उसके पति को पीने की लत है और नौकरी छूटे हुए भी छह महीने से अधिक हो गए हैं। पैसों की तंगी के कारण उसे मॉडल बनकर सौ-सौ रुपए कमाने पर विवश होती है। वह कहती है – "हाथ तंग है। रेडियो स्टेशन से उसकी आमदनी इतनी नहीं कि सब शौक़ पूरी किए जा सकें। यों तो पति की नौकरी छूटती-जुड़ती रहती है, पर इस बार अंतराल कुछ अधिक खिंच गया है। उफ, यह पीने की लत।"[2]

'लौटना और लौटना' का हरीश कमाऊ लड़की से शादी करना चाहता है, ताकि शादी के बाद ख़र्चे की परेशानी का सामना न करना पड़े - "हाँ, पर बेकार की लड़कियाँ देखने से क्या फ़ायदा? ये बातें ज़रूरी हैं। एक तो लड़की डॉक्टर होनी चाहिए, वहाँ बहुत पूछ है उनकी, काफ़ी पैसा कमा लेती हैं और दूसरे.....।"[3]

---

1. मृदुला गर्ग - टुकड़ा-टुकड़ा आदमी - दो एक फूल - पृ. 66
2. मृदुला गर्ग - टुकड़ा-टुकडा आदमी - यह मैं हूँ - पृ. 14
3. मृदुला गर्ग - कितनी कैदें - लौटना और लौटना - पृ. 65

'एक और विवाह' की कोमल आर्थिक रूप से स्वावलंबी है। वह दिल्ली के एक कॉलेज में लेक्चरर है और विवाह को स्त्री के लिए बिना पैसे की नौकरी समझती है। मदन उससे पूछता है–

"विवाह के बाद आप क्या करना चाहेंगी?

कोमल : किस क़िस्म का काम?

मदन : मेरा मतलब, नौकरी।

कोमल : पैसों के लिए या बिना पैसों के?

मदन : क्या मतलब?

कोमल : बिना पैसा पाए नौकरी तो सभी विवाहित स्त्रियाँ करती हैं।"[1]

अर्थ के अवलंबन ने स्त्री को अपनी लड़ाई लड़ने की शक्ति दी, किंतु बढ़ते बाज़ारीकरण ने परिवर्तित रूप में उपस्थित होकर उसके समक्ष अस्मिता का संकट पुनः खड़ा कर दिया है। *'दुनिया का कायदा'* में रक्षा एक क्रय की वस्तु ही लगती है। पति सुनील मिस्टर मेहता से अपना काम निकलवाने के लिए रक्षा को एक 'शोपीस' की तरह इस्तेमाल करता है।

'मेरा' की नायिका एक बार फिर से नारी-अस्मिता के सवाल पर सोचने पर विवश करती है, जिसने स्वयं चुनकर महेंद्र से प्रेम-विवाह

---

1. मृदुला गर्ग - कितनी कैदें - पृ. 65

किया है। वह विवाह के मूल में छिपी पुरुष की मानसिकता को समझ पाने में असमर्थ है कि यह विवाह महज़ उसकी नौकरी के कारण किया गया समझौता - भर है अथवा कुछ और। महेंद्र का सोचना है कि दोनों की आय से मिल-मिलाकर घर चल जाएगा - "सोचा था, मीता पढ़ी-लिखी, होशियार, नौकरी-पेशा लड़की है, उसकी योजना में खुशी से हाथ बँटाएगी। साथ ही अमरीका ले जाएगा और जो दो साल उसे वहाँ एम.एस. में लगेंगे, उतने वहीं कोई छोटी-मोटी नौकरी कर लेगी।"[1] मीता जैसी आत्मनिर्भर लड़की अपनी कमाई होने पर भी निर्णय लेने में विवश दिखाई देती है कि वह संतान पैदा करे अथवा नहीं। महेंद्र के लिए वह सर्वप्रथम कमाई का साधन है, बाद में उसकी पत्नी। भावी आर्थिक संकट दोनों के मध्य तनाव की स्थिति उत्पन्न कर देता है।

इस प्रकार आधुनिक युग में व्यक्ति की सोच व्यवसायिक होती जा रही है। और 'मीता' जैसी लड़कियाँ आर्थिक शोषण को विवश होकर सह रही है। पति-पत्नी के आत्मिक संबंधों को पैसा किस कदर खोखला बना देता है *'मेरा'* कहानी इसी पर प्रकाश डालती है, साथ ही यह सत्य भी उद्घाटित करती है कि नारी की आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास का संयोग उसे बड़े-से-बड़े निर्णय लेने की शक्ति देता है। 'अर्थ' ने नारी को परनिर्भरता से मुक्ति दिलाई है और वह पराश्रिता की हीनभावना से मुक्त होकर शोषण का विरोध कर पाने में समर्थ है। नीता (मेरा) तो प्रेम-विवाह

---

1. मृदुला गर्ग - ड़ैफ़ोडिल जल रहे हैं - मेरा - पृ. 61

करके दहेज की समस्या से मुक्ति पा लेती है, किंतु स्मिता (कठगुलाब) पढ़-लिखकर आत्मनिर्भर होना चाहती है, ताकि उसकी शादी बिना दान-दहेज़ के हो जाए। वह कहती है – "कमाई करूँगी तो शादी बिना दहेज़ होनी आसान हो जाएगी।"[1]

'गुलाब के बग़ीचे तक' कहानी में लेखिका ने दिखाया है कि अगर बड़े घर के लड़के के साथ शादी करनी हो तो वर-मूल्य ज़्यादा होगा। "फ़िल्म प्रोड्यूसर अपने लड़के को एक अदना मैनेजर की लड़की से शादी करने की इजाज़त तबी देंगे, जब वह कम-से-कम उतना दहेज़ लाए जितना उनके बड़े लड़के की बहू लाई थी।"[2]

'मिज़ाज' कहानी की श्वेता का मानना है कि "हिन्दुस्तानी लड़की को बिना मोटी रकम के दहेज़ के ऊँचे ख़ानदान का लड़का नहीं मिल सकता, जब तक किसी को उससे प्रेम ही न हो जाए.....।"[3]

'ख़रीदार' की नायिका नीना दहेज की समस्या के चलते शादी ही नहीं करती है और जीवन के बारे में बड़ी ही यथार्थवादी सोच रखती है - "पूरी दुनिया दो गुटों में बँटी है - दुकानदार और ख़रीदार। ठीक है, मैं भी ख़रीदार बनूँगी... विक्रेता नहीं ख़रीदार।"[4]

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 15
2. मृदुला गर्ग - टुकड़ा-टुकड़ा आदमी - गुलाब के बगीचे तक - पृ. 72
3. मृदुला गर्ग - उर्फ सैम - मिजाज़ - पृ. 92
4. मृदुला गर्ग - ग्लेशियर से - खरीदार - पृ. 84

कात्यायनी मृदुला गर्ग के बारे में लिखती हैं - "मृदुला गर्ग जी यह साफ़ कर देती हैं कि वे स्त्री की उपेक्षा या उसकी अस्मिता के प्रश्न जैसे किसी भी सवाल को, स्वतंत्र स्वायत्त रूप में ही नहीं देखती बल्कि पूरे समाज की अन्य विसंगतियों के साथ देखती हैं।"[1]

मृदुला जी प्रबुद्ध साहित्यकार हैं। उन्होंने नारी-अस्मिता के आर्थिक संदर्भों को बख़ूबी पहचाना है। भिन्न कथा-चित्रों के माध्यम से परिस्थितियों की सृष्टि करते हुए रचना जीवन के सच को पाठकों के सामने बेहतर तरीके से प्रस्तुत किया है। सायास या अनायास जीवन से जुड़े प्रश्न उजागर हो जाते हैं। उनके कथा-चित्रों में आर्थिक संदर्भ औरत की शक्ति भी बने हैं, तो उसके शोषण का माध्यम भी। कुछ नारी-पात्र कामकाजी है, जो परिवार द्वारा आर्थिक शोषण का शिकार है, तो कुछ दुनियादार औरत है, जो गृहिणी होते हुए भी धन-संपत्ति को जल्द-से-जल्द अपने कब्ज़े में कर लेना चाहती हैं।

मृदुला जी प्रबुद्ध साहित्यकार हैं। आर्थिक संदर्भों को उन्होंने विभिन्न कथा-चित्रों में भिन्न-भिन्न परिस्थितियों की सृष्टि की है। उनके कथा-चित्रों में अर्थ स्त्री की ताकत भी बनते हैं, और शोषण का माध्यम भी। कुछ स्त्री-पात्र कामकाजी होकर परिवार द्वारा आर्थिक शोषण की शिकार है तो

---

1. मृदुला गर्ग - चर्चित कहानियाँ - भूमिका से

कुछ दुनियादार औरत धन-संपत्ति जल्द से जल्द अपने अधीन कर लेना चाहती हैं। मृदुला जी के अधिकांश नारी पात्र कामकाजी हैं पर अर्थ का संबल लेकर वे जीवन के अन्य महत्वपूर्ण निर्णय लेते हैं। *'झूलती कुर्सी'* की शेफाली, इंडियन एयरलाइंस में काम करती है जो अविवाहित रह कर अपने प्रेमी का इंतज़ार करती है। *'तुक'* की नायिका 'मीरा' के लिए विवाह एक नौकरी है। "पति का होना उनके लिए एक तरह का व्यवसाय है, जिसके माध्यम से उन्हें पैसा और व्यस्तता दोनों मिलते हैं।"[1]

'अलग-अलग कमरे' के डॉ. नरेंद्रदेव की पुत्रियों के तो जीवन का उद्देश्य ही अधिकाधिक संपत्ति इकट्ठा करना है।

'कठगुलाब' की असीमा भी मानती है कि दुनिया में प्रत्येक कार्य अर्थ के लिए ही होता है। वह कहती है - "सब काम पैसे का खेल है। एक बार इन जाहिल मर्दों को भरोसा हो गया कि हम ट्रेनिंग देंगे तो केवल औरतों को वरना बाहर से मैकिनिक आएँगे और पैसा ले जाएँगे, तो पैसे के लालच में औरतों को आगे कर दिया।"[2]

'तीन किलो की छोरी' की शारदाबेन की ज़िन्दगी का महत्त्व, उसके कामकाजी होने से है। शारदाबेन का जीवन स्तर इस कमाई से काफी

---

1. मृदुला गर्ग - ग्लेशियर से - झूलती कुर्सी - पृ. 50
2. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 239

उठा है - "उसे तो उस फरक से मतलब है, जो उसके कमाए सौ रुपए माहवार से, उसकी अपनी ज़िंदगानी में आया है। छोटे के स्कूल में नाम लिखाने को लेकर कितना फ़साद हुआ करता था घर में।"[1]

अधिकांश लड़कियों के सामने विवाह के पहले ही नौकरी छोड़ने की शर्त रखी जाती है या विवाहोपरांत नौकरी छुड़वा दी जाती है।

'बाहरी जन' की नंदिनी की नौकरी विवाह के पश्चात् बड़े घर में छुड़वा दी जाती है। "अपनी नौकरी वह छोड़ चुकी। शर्त थी शादी की। वह रह सकती है, दोबारा नौकरी भी जुटा सकती है। पर उसका पति इतनी आरज़ू से मिला माँ का जँवाई और बड़े घर का आदर्श बेटा, नितिन कभी नहीं मानेगा।"[2]

'वह मैं ही थी' की नायिका के लिए आर्थिक स्वतंत्रता विलास की वस्तु है। *'मिजाज़'* कहानी की श्वेता का पति होटल में उसके आकर्षक व्यक्तित्व को देखकर शादी का प्रस्ताव रखता है पर शादी के बाद उसकी नौकरी छुड़वा देता है। यह उसकी औरत को कमतर समझने की मानसिकता है। किंतु *'बर्फ़ बनी बारिश'* की बिन्नी न तो नौकरी को छोड़ती है और न ही अपने कर्त्तव्य से मुख मोड़ती है। पति के बिमार होने पर स्कूल से लंबी

---

1. मृदुला गर्ग - शहर के नाम - तीन किलो की छोरी - पृ. 5
2. वही - पृ. 47

छुट्टी लेकर पति के पास चली जाती है। *'छत पर दस्तक'* नामक कहानी की नलिनी असमय विधवा होने पर भी अपनी छोटी सी नौकरी के बलबूते पर अपने बेटे सुधीर का भरण-पोषण करती है। "नलिनी भी स्कूल में पढ़ाती थी, अपने और सुधीर के खाने-पहनने लायक कमा थी लेती थी।"[1]

'समागम' कहानी संग्रह की *'बीच का मौसम'* नामक कहानी की माया आई.ए.एस. अफ़सर है जो तलाक़ होने के बावजूद हार नहीं मानती। अपना निर्णय स्वयं लेती है। माया का मानना है कि "हम जैसे मध्यवर्गीय, आर्थिक रूप से ठीक-ठाक, पढ़ी लिखी औरतों के लिए, चंद रोज़ का बसंत पा लेना, संभव भी हो जाता है।"[2]

स्त्री जब अर्थ की शक्ति से परिपूर्ण होती है तो साधन-संपन्न भी हो जाती है। पुरुष उसकी इसी दृढ़ता से भयभीत हो जाता है। औरत को निर्बल करने के सारे पैंतरे आज़माता है। पत्नी या स्त्री के ऐसी हीन भावना पैदा कर देना पति या पुरुष चाहता है ताकि उसका कद इनसे ज़्यादा न बढ़ सके। और ना ही स्त्री इसका दुस्साहस ही कर सके।

सांस्कृतिक संदर्भ

भारतीय संस्कृति की विशिष्टता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए विवेकानंद जी का कथन स्मृति में आता है। "पश्चिम की नारी

---

1. मृदुला गर्ग - समागम - छत पर दस्तक - पृ. 48
2. मृदुला गर्ग - समागम - समागम - पृ. 103

पहले पत्नी है, फिर माँ, जबकि भारत की नारी पहले माँ है और बाद में पत्नी। यह एक बुनियादी अंतर है।"[1] वहाँ वह पूरी तरह स्वतंत्र नहीं हुई है। पहले से भी अधिक यौन-हिंसा की शिकार हो रही है।

सांस्कृतिक दृष्टि में नारी की भूमिका पर विचार करने के पूर्व संस्कृति का अर्थ जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

मैथ्यू ऑर्नल्ड के अनुसार - "संस्कृति अपूर्णत्व से पूर्णत्व की ओर उन्मुख सुंदर अभिव्यक्ति एवं सुव्यवस्थित अभियान है। वह पूर्णत्व जो मानव को मानवता और समाज की सर्वांगीण उन्नति की ओर प्रेरित करता है।"[2]

मैलिनोवस्की ने कहा है - "संस्कृति वह सामाजिक विरासत है, जिसमें धर्म, समाज दर्शन, नैतिक मूल्यों से लेकर सामाजिक संस्थाएँ रीति-रिवाज़ सभी कुछ सम्मिलित है।"[3]

भारतीय संस्कृति में स्त्री पुरुष गृहस्थी रूपी धुरी के पहिए हैं। एक पहिए के क्षति पहुँचने पर गाड़ी का रुकना लाज़मी है। परंतु व्यवहार में नारी की स्थिति दोयम दर्जे की ही रही। आज स्वतंत्रता से आगे बढ़कर वह उच्छृंखलता की सीमा तक पहुँच गई है वह हताश होकर कहती है कि उसने यह क्षण तो नहीं माँगा था।

---

1. आशारानी व्होरा - भारतीय नारी : दशा और दिशा - पृ. 167
2. मदन गोपाल गुप्त - मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति - पृ. 78
3. आप्टे - शिक्षा और समाज - पृ. 20, 21

समलैंगिकता लेखिका को भले ही आकर्षित न करे परंतु यौन-संबंध उनका विषय रहा है जो भारतीय संस्कृति के पवित्र विवाह-संस्कार को अस्वीकृत करते हैं। *'उसके हिस्से की धूप'* की मनीषा और जितेन का पुनःसंबंध यह बात साबित करता है - "जितेन आजीवन निर्वाह की माँग नहीं करेगा। वह दोनों एक-दूसरे के सामने दो सर्वथा स्वतंत्र व्यक्तियों की तरह खड़े हैं.... न कोई बंधन है, न कर्त्तव्य, न लोभ।"[1]

'चितकोबरा' की नायिका की भाँति आज की नारी पुरुष के समान दोहरे व्यक्तित्व को अपनाती है। बाहरी रूप में वह पति से प्रेम का दिखावा करती है और अपने अंतरंग संबंध को किसी दूसरे पर अर्पण कर देती है। *'रुकावट'* (कहानी), *'चितकोबरा'* (उपन्यास) तथा *'उसके हिस्से की धूप'* में नारी का यही आचरण दिखाया है। ऐसा करके लेखिका ऐसी स्त्रियों का भी बख़ान करती है जो पुरुष को धोखा देती है। साथ में इस बात का भी खुलासा करती हैं कि यदि पुरुष अपने हद पार करता गया तो वह दिन दूर नहीं जब स्त्रियाँ भी सोचने लगेगी कि यदि पुरुष कर सकता है तो मैं क्यों नहीं? उस वक्त काल को कोई रोक नहीं पाएगा और समाज का संतुलन बिगड़ जाएगा। समाज अस्वस्थ हो जाएगा। ज़रूरी है कि दोनों अपनी सीमाओं का उल्लंघन न करें। स्त्री के त्याग, बलिदान और क्षमा भाव का दुरुपयोग न करें।

---

1. मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 39

'दो एक फूल' कहानी में शांतम्मा के पति द्वारा संस्कृति का उल्लंघन दिखाया है जो परस्त्री से संबंध बनाकर सिफिलस के रोग का शिकार होता है। पत्नी और उसका गर्भस्थ शिशु भी इसका शिकार होता है। डॉ. मालती की चिंता वाजिब है "वह भी जानती थी कि सिफिलस का इलाज सीधा और सहज है, बशर्ते वह दुबारा न हो। इसके लिए शांतम्मा और उसके पति का इलाज ही नहीं करना होगा, यह भी देखना होगा कि पति शांतम्मा को दुबारा दूषित न करे, यानी स्वयं भी दुबारा दूषित न हो। केवल डॉक्टर मालती शर्मा की हिदायतें उसे नहीं बचा सकतीं।"[1]

इस भटके हुए नारीवाद ने सांस्कृतिक मूल्यों को तो आहत किया ही है, साथ ही मानसिकता दुर्बलता, हीनता, कुंठा, अस्थिरता और मानसिक विकृति को आमंत्रित करके परिवार को विघटन के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। भारतीय संस्कृति को सर्वथा त्याज्य माननेवाली, यौन-उच्छृंखलता के अंधानुकरण में व्यस्त, आधुनिक नारी को यह जान लेना चाहिए कि इस देश में ज्ञान-विज्ञान अपनी उन्नति के चरम् शिखर पर रहा है। उसके पार्श्व में न केवल समाज-व्यवस्था अपितु व्यक्ति का ही हित छिपा हुआ है। 'अस्मिता' की खोज सर्वप्रथम मानसिक उत्थान से ही संभव है। भौतिक उत्थान तो इसके पश्चात् ही श्रेयस्कर रहेगा। स्वतंत्रता की दौड़ में अंधी नारी किस अंधकूप में गिरने के लिए दौड़ रही है, स्वयं वह भी नहीं जानती।

---

1. मृदुला गर्ग - टुकड़ा-टुकड़ा आदमी - दो एक फूल - पृ. 64

मृदुला गर्ग के लेखन में नारी का अर्थावलंबन वह सुविधाजनक स्थिति है, जिसके द्वारा वह बिना विवाह किए किसी भी पुरुष के साथ स्वच्छंद जीवन-यापन कर सकती है। मृदुला गर्ग के उपन्यास *'उसके हिस्से की धूप'* में मनीषा तलाक़ लेकर पुनःविवाह करने की भूल कर बैठती है। मृदुला गर्ग अपने लेखन में सर्वत्र विवाह-संस्था का नकार करती है। *'चितकोबरा'* में वह स्पष्ट कहती है - "प्रेमहीन शरीर-संबंध, जो भारतीय विवाह-पद्धति की स्वाभाविक स्थिति है, भयानक आत्मपीड़न के अलावा कुछ नहीं है।"[1]

भारतीय संस्कृति में चार पुरुषार्थों का विशेष महत्त्व है - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मानव से अपेक्षा की जाती है कि वह धर्म पर आस्था रखें, समाज और परिवार के निमित्त कर्तव्यपालन कर अपनी इच्छाओं तथा शारीरिक वासनाओं की पूर्ति करे और ईश्वर-प्राप्ति के लिए ईश्वर की भक्ति-भावना में मग्न रहे। काम शब्द का प्रयोग संकुचित तथा व्यापक दोनों ही अर्थों में किया जाता है। पहले अर्थ के अंतर्गत मानव-मात्र की समस्त प्रवृत्तियों, इच्छाओं और कामनाओं का समावेश है और दूसरे अर्थ में काम केवल इंद्रिय सुख या यौन-प्रवृत्तियों की संतुष्टि-मात्र है। समाज में रहते हुए व्यक्ति समाज और परिवार के प्रति प्रतिबद्ध होता है। यदि वह समाज, परिवार और देश के लिए अपने कर्तव्यपालन से च्युत

---

1. मृदुला गर्ग - चित्तकोबरा - पृ. 10

होजाए तो सारी व्यवस्था ही चरमरा जाएगी और अराजक स्थिति पैदा हो जाएगी। यदि सभी स्त्रियाँ परपुरुषगामी हो और पुरुष भी परस्त्रीगामी हो तो घर का नज़ारा कैसा होगा? इस बात की ओर इशारा करना मृदुला जी का लक्ष्य रहा है।

मृदुला गर्ग ने परंपरा से सर्वथा भिन्न पुरुष-पात्रों की सृष्टि की है जो पत्नी अवैध संबंधों के बारे में जानकर भी उसके जीवन में हस्तक्षेप नहीं करते। अथवा दूसरी ओर *'कठगुलाब'* के प्रस्तुत पति और जीजा है, जो पत्नी पर अत्याचार करते हैं और 'साली' का बलात्कार करते हैं। वास्तविक जीवन में ऐसे चरित्र मिलने मुश्किल नहीं। जितेन, महेश, जगमोहन जैसे पुरुष-पात्र हद पार उदार दिखाई देते हैं और जिम जारविस, स्मिता का जीजा, नर्मदा का जीजा जैसे पुरुष-पात्र भी अतिहिंसक है। अधिकांश कहानियों में पुरुष एक खलचरित्र के रूप में स्त्री के मार्ग में रुकावट बनते हैं। *'कठगुलाब'* की असीमा उग्र नारीवाद की शिकार है जो पुरुषों को 'हरामी' शब्द से नवाज़ती है।

मृदुला जी ने पुरुष के उस रूप को नहीं दिखाया जो यथार्थ की कटुताओं से जूझकर थककर पत्नी के आँचल में खो जाना चाहता है। मृदुला जी ने प्रसव-वेदना को भी अभिव्यक्ति दी है। *'कठगुलाब'* में आकर अंततः भारतीय संस्कृति की विवाह-संस्था को स्वीकार कर लेती हैं। नीरजा विवाह कर लेती है और विपिन को स्मिता से विवाह करने की

सलाह देती है। ज़्यादातर फ़ेमिनिस्टों का भी यही हाल होता है। जो जीवन से थक-हारकर अंततः सुरक्षित जीवन की चाह में प्रौढ़ावस्था में विवाह कर लेते हैं।

स्त्री-अस्तित्व स्थापन में मातृत्व का महत्व

स्त्री-अस्वातंत्र्य के कोरे कागज़ पर स्त्री-अस्मिता स्थापन की बहकी निगाह अपने कर्मठ जिज्ञासु मातृत्व को ढ़ोने के लिए तत्पर है। निजत्व का अपना महत्त्व होता है। स्त्री पितृसत्ता द्वारा गठित संस्कृति में इसी को तलाशती रही है। मुक्त से मुक्त स्त्री भी अपनी मुक्ति को पितृसत्तात्मक संस्कृति से जोड़ नहीं पाई। प्राचीनतम् सांस्कृतिक परंपरा ने स्त्री को उसका निजत्व कभी महसूसने दिया ही नहीं। परंतु सोच नक्क़ाशी पाते ही अस्तित्व और स्वत्व के लिए छटपटाने लगी।

मृदुला गर्ग की कई कहानियाँ ममत्व के विविध संदर्भ उकेरती हैं। उनकी कहानी *'मेरा'* संपूर्ण निजत्व को गढ़ती है। 'मीता' अपने पितृसत्तात्मक संस्कृति के बिगड़े निजत्व से बाहर आती है और दृढ़ निर्णय लेने को संकल्पशील भी। "“अकंपित दृढ़ हाथों के बीच उसने उसे पकड़ा और खच से चीर डाला। ...तब तक रखती-चीरती चली गयी, जब तक उसकी चिंदी-चिंदी न हो गयी। फिर पास पड़ी रद्दी की टोकरी में उनकी बौछार करती वह उठ खड़ी हुई।" मीता पूछने लगी - "यह मेरा निजी मामला है?"....'बिलकुल', डाक्टर ने कहा।

"पति से पूछे बग़ैर गर्भ गिराया जा सकता है तो रखा भी जा सकता है?"''[1]

अपने जीवन की यांत्रिक स्थिति से मीरा बाहर आती है। घुटन भरा उसका क्षण उसके अपने अंतिम निर्णय तक आकर क्षीण हो जाता है। वह समझने लगती है कि जिस ज़िन्दगी में वह खुश थी वह महेन्द्र की महत्वाकांक्षाओं के लिए गढ़ी गई कल्पनात्मक स्थिति थी जिसे पार लगाने के लिए अनजाने हुई लापरवाही के कारण उसे अपने जिस्म को चीरना होगा। अपने बदन के हिस्से को काट फेंकना होगा। अमरीका जाकर एम.एस. करने और सुखद जीवन जीने की महेन्द्र की इच्छा के वह विरुद्ध नहीं। माँ के तर्क से उसके अपने तर्क का गला घुँट जाता है। परन्तु जब उसे पता चलता है कि बच्चे के जन्म एवं मृत्यु के संबंध में उसका अपना फैसला अधिक जायज़ है तो उसका निश्चय और दृढ़ हो जाता है।

'मेरा' एक स्त्री के अधिकार की कहानी है जहाँ उसे गर्भपात कराने का अधिकार है वहीं उसकी रक्षा करने का भी अधिकार है। स्त्री-स्वातंत्र्य के इस पहलू को लेखिका अपने सधे हए शब्दों में बयान करने में सफल हुई हैं। एक स्त्री लेखिका होने के नाते मृदुला जी जानती हैं कि स्त्री में मातृत्व की भावना पितृत्व की भावना से अधिक होती है। आत्मनिर्भरता

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - मेरा - पृ. 237, 238

से, स्वत्व-बोध से भरपूर स्त्री को मृदुला जी ने सामने रखा है। इसी आत्मनिर्भरता को महेन्द्र भी मीता की आँखों में देखता है।

'बाहरी-जन' की सरिता भी *'मेरा'* की मीता के समान प्रतिरोधात्मक मातृत्व रूपी स्त्री-अस्मिता का पथ-प्रदर्शन करती है। सरिता स्वभाव से और व्यक्तित्व से बोडम और बौनी नहीं थी। उसने अपनी बहू का साथ देकर कहा था कि यदि वह गोद लेना चाहती है तो ले लें। सरिता कहती है - "बोडम मैं हूँ या यें और इनके ऊँचे खानदान के नखचढ़े लोग। क्यों इतना चीख-चिल्ला रहे हैं बेचारी लड़की पर। न हुआ बच्चा तो न सही, गोद ले लेंगी। क्या इतना भी अधिकार नहीं है इसे?"[1]

नंदिनी और सास दोनों स्त्री-स्वातंत्र्य का प्रतीक हैं। सास विचार से बौनी या बोडम नहीं हैं। नन्दिनी ने हमेशा चाहा कि सास रोबीला व्यक्तित्व दिखाएँ पर वे अपने पति के नियंत्रण में दबी हुई हैं।

उच्चवर्गीय सारी सुविधा, शिक्षा एवं संपन्नता पाकर भी दोनों अपनी व्यक्तिगत ज़िन्दगी को निजी तौर पर जीने के अधिकार से वंचित हैं। नारी-जीवन की विवशता के साथ उसका बाहरी-जन होना कहानी का प्रतिरूप है। उच्च-वर्ग हो या निम्न, पढ़ी-लिखी या अनपढ़; औरत की नियति बन चुकी है - विवशता।

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - बाहरी जन - पृ. 517

प्रस्तुत कहानी में स्त्री एक बाहरी-जन का ही रूप है। परिवार में हैसियत एक बाहरी नौकर से कम नहीं। नंदिनी के बच्चा न होने पर उसे हक़ नहीं कि वह गोद ले सकें। उसे स्त्री-विशेषज्ञ को दिखाने की सलाह दी जाती है। सरिता जो राजेश्वर की पत्नी है बोडम कहलाई जाती है। प्रतिवाद पर भी स्त्रियाँ हक़ नहीं ले पातीं। परंतु वे स्वभाव से बौने नहीं हैं। पति राजेश्वर पुरुष-प्रधान अधिकार पर अहंकार रखनेवाला व्यक्ति है और सरिता और नंदिनी - स्त्री-स्वातंत्र्य का प्रतीक जो खुद भी विवश हैं। बहू को ससुर राजेश्वर डॉक्टर को दिखाने की सलाह देता है तो नंदिनी मन-ही-मन विद्रोह जताती है - "आपको मतलब ! यह मेरा निजी मामला है। बच्चा चाहती हूँ या नहीं मेरा निर्णय है। हो सकता है या नहीं मेरा भाग्य है। हो सकने के लिए कुछ करना, न करना, मेरी समस्या है। आपको क्या अधिकार है, मुझसे जिरह करने का। ठीक है, आप बच्चे के दादा-दादी बनेंगे। उसे प्यार देंगे-लेंगे। आपको उसकी चाहत हो, इससे मुझे इनकार नहीं, हमदर्दी है, पर अपनी चाहत को मुझ पर थोप कर मेरे जेलर बनने का अधिकार आपको नहीं है।"[1]

स्त्री की हैसियत, पितृसत्तात्मक एवं पुरुषसत्तात्मक समाज में नौकर से कम नहीं है। प्रस्तुत कहानी में मृदुला जी ने नारी के जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि पुरुषप्रधान समाज में

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - बाहरी जन - पृ. 514, 515

स्त्री की हालत उस बाहरी जन की तरह होती है जैसे नौकर हो। आज सुंदर स्त्री का ऊँचे घर में ब्याहने की परंपरा चली आ रही है। पर वह वहाँ दबी ही रहती है। कारण दो हैं। पहला कि वह स्त्री है और दूसरा कि वह मध्यवर्ग या निम्नवर्ग की है; उच्चवर्ग की नहीं।

भारतीय परंपरा के अनुसार बेटी को पराया-धन माना जाता है परंतु पराये घर में भी वह पराई ही रहती है। सवाल उठता है कि उसका असली घर होता कौन सा है? आज भी समाज उसका उत्तर नहीं दे पाएगा। क्योंकि यदि पति का घर अपना है तो उसे किसी भी मोड़ पर धक्के मारकर बाहर निकालने का हक़ ससुराल वालों को किसने दिया? और यदि बाप का घर अपना है तो शादी के बाद अपने ही घर में मेहमान क्यों बन जाती है? ऐसे ही कुछ सवालों को उठाने वाली कहानी है मृदुला जी की - *'बाहरी जन'* या पर्याय रूप में 'स्त्री'।

"नारी 'मानवी' है और उसका अपना एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है। स्वतंत्र-व्यक्तित्व उसी का हो सकता है, जो हृदय और मस्तिष्क के समुचित विकास से युक्त व्यक्तित्व द्वारा मनुष्य समाज से, रागात्मक के अतिरिक्त बौद्धिक संबंध स्थापित करने में सक्षम होता है। कौन ऐसा मनुष्य होगा जो राग और बुद्धि को समाज से काटकर इच्छा शक्ति और संकल्पों को पंगु बनते रहने की प्रक्रिया से लगातार गुज़रता रहेगा।"[1]

---

1. इन्दु वशिष्ट - आधुनिक कवि और नारी अस्मिता : नारी संकल्प और महादेवी वर्मा - पृ. 74

इसी समस्या को मातृत्व एवं पारिवारिक नज़रिए से चार दोस्तों के माध्यम से मृदुला गर्ग ने *'बीच का मौसम'* में प्रस्तुत किया है। तलाक़ टूटते-बिखरते रिश्ते, अकेलेपन की त्रासदी आदि को कहानी में चार स्त्री दोस्तों के माध्यम से उभारा गया है - पम्मी, राजश्री, क्षिप्रा और माया।

क्षिप्रा का दुःख उसे शराबी बना देता है। उसे पीड़ा है कि उसका पति इसलिए दूसरी औरतों के साथ अवैध संबंध रखता है क्योंकि वह माँ नहीं बन सकती। वह हफ़्ते में तीन-तीन बार दौरे का बहाना कर चला जाता है। नियति है कि सदियों से स्त्री ही बाँझ ठहराई गई। पुरुष के लिए तो कोई शब्द ही नहीं। राजश्री जब कहती है कि थोड़ा-बहुत तो चलता है तो क्षिप्रा फट पड़ती है - "थोड़ा बहुत! हफ़्ते में तीन दिन दौरे का बहाना करके शहर से बाहर रहता है और तू कहती है थोड़ा बहुत!"- - - - - - - - "मैं माँ नहीं बन पायी इसी से.... इधर-उधर मुँह मारता घूमता है.... मैं.... सब कुसूर मेरा है" उसने कहा।"[1]

पम्मी क्षिप्रा की बात को बक़वास मानते हुए कहती है कि वह भी तो माँ नहीं बन सकती। पर इसका मतलब यह कतई नहीं है कि कोई भी उसे धोखा देता फिरे। पम्मी अपनी कुतिया 'मीशा' को ही संतान मानती है। यदि चाहे तो 'माया' के आँगनबाड़ी से बच्चा गोद ले सकती है। पर उसे राज्यश्री का अनुभव नहीं चाहिए जिसकी संतान होते हुए भी ना के बराबर

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - पृ. 646

है। दोनों उससे दूर रहते हैं। अतः मृदुला जी चारों सहेलियों की विविध-स्त्री समस्याएं उनके अस्तित्व बोध को मातृत्व के माध्यम से उभारती हैं। मातृत्त्व उनकी कमज़ोरी नहीं ताक़त बनती है। माया के गोद लेने का फैसला उदाहरण है। उपर्युक्त मातृत्त्व मृदुला जी के उपन्यास *'कठगुलाब'* से काफी मेल खाते हैं। अस्मिता संघर्ष के धरातल पर मातृत्त्व और स्त्री-अस्मिता *'कठगुलाब'* की खास पहचान बनी है।

माँ बनने की खुशी तो ज़ाहिर है काफी आत्मिक विषय है और सच भी। परन्तु नौ महीने कोख में रखकर पैदा करने की दुहाई बच्चों की समझ के परे है क्योंकि पैदा होने के बाद वे अपनी मर्ज़ी के मालिक होते हैं उनके सामने श्रवण कुमार के समान अपने अँधे माँ-बाप को कंधों पर लादकर चलने की न आदत होती है न ज़रूरत। वे 'एकलव्य' की तरह गुरुदक्षिणा के रूप में अंगूठा काटने का न आत्मबल रखते हैं और ना ही इच्छा। वे माता-पिता के ऋण के लिए नहीं बल्कि ख़ुद की ज़रूरत के लिए सजग रहते हैं। यदि उनके लिए कुछ करने को माँ-बाप सबल हैं तो ठीक; वरना उन्होंने क्या ठेका ले रखा है? वे पूछेंगे कि आपने हमें पैदा किया था? या जाली दस्तख़त करवाए थे? इन विपरीत परिस्थितियों में सदियों से स्त्री द्वारा गाढ़े गए मातृत्त्व के झंडे की धज्जियाँ उड़ जाती हैं। और 'आँचल में है दूध और आँखों में पानी' जैसे लव्ज़ जुबान से फिसलते हुए पुनः मातृत्व की सार्थकता और अस्तित्व के संबंध में सोचने पर मजबूर करते हैं।

मातृत्त्व का इतना सम्मानित पद कैसे फीका पड़ गया, या फिर यूँ कहें कि स्त्रियाँ क्यों इसे सामान्य घटना मात्र मानने लगीं? इसका जवाब है पितृसत्ता का षड्यंत्र। पितृसत्ता ने स्त्री की कोख पर नियंत्रण रखने हेतु और पुरुष की संपत्ति का उत्तराधिकारी पाने के हेतु अपना अधिकार जमाया। स्त्रियों ने मातृत्व का गौरवमय पद केवल अपनी स्वतंत्रता के लिए बाधक मानकर ही सामान्य घटना नहीं माना बल्कि पितृसत्ता के षड्यंत्र को देख-परखकर और जानकर ही अपनी अस्मिता की बात उठाई। तभी तो बिना पति के संतान वाली माँ कुलच्छनी होती है। उसे कोई मातृत्व का महानतम पद प्राप्त नहीं होता। पति से इतर संतान को मान्यता प्राप्त नहीं है। उस ईश्वर के अंश को न केवल अवैध माना जाता है, बल्कि उसपर पाप का मुहर भी लगाया जाता है।

अतः कहना मुश्किल न होगा कि स्त्री को जननी और भूमि से तुलना करने का उद्देश्य पृथ्वी के दो पक्षों से है। एक सूखे और दूसरे उर्वर। उर्वर भूमि को दी जाने वाली महत्ता के समान ही उर्वर-स्त्री भी समाज में मान्य है। सूखी भूमि या बांझ स्त्री मात्र अपमानित। बंधव्य का यह अपराध स्त्री मात्र के कोश में है, पुरुष के नहीं क्योंकि वह किसी अन्य पुरुष द्वारा अपनी पत्नी का बीजारोपण करवाने का अधिकारी था जिसे मनु महाराज नियोग की संज्ञा देते हैं। महाभारत युद्ध की पृष्ठभूमि ही प्रदेश में उत्पन्न पुरुषों की कलह से निर्मित हुई है।

चूँकि स्त्री खुद पुनर्रचना कर सकती हैं, पुरुष का उसके सामने झुकना लाज़मी था। मृदुला गर्ग *'कठगुलाब'* के विपिन द्वारा यही साबित करती हैं। 'विपिन' भी अपना ख़ून पाना चाहता है। इसीलिए वह 'स्मिता' और असीमा को छोड़ अपनी बेटी के उम्र की 'नीरजा' से संबंध चाहता है। "पुरुष में कितनी माया-ममता क्यों न हो वह गर्भ में रखकर मनुष्य प्राणी को जन्म नहीं दे सकता। पुरुष के स्पर्म का कृत्रिम रूप से दान किया जा सकता है। उसे बर्फ में जमाकर बैंक में संजोया जा सकता है। स्त्री न चाहे तो उसे यह जानने की ज़रूरत नहीं है कि उसके गर्भ में पलने वाले शिशु का शुक्राणु दान करनेवाला पुरुष कौन है?.... और गर्भ ही क्यों? स्तनपान कराने का एकाधिकार भी स्त्री के पास है। स्वार्थी से स्वार्थी स्त्री के पास निःस्वार्थ, निष्कलुष प्रेम कर पाने का सामर्थ्य है।"[1]

विपिन अपने से आधी उम्र की नीरजा से विवाह करने की ज़रूरत नहीं महसूसता। उसे सिर्फ एक शिशु चाहिए जो उसका उत्तराधिकारी हो। उसके वंश को आगे बढ़ा सके। सवाल उठता है कि क्या यह विपिन का बच्चे के प्रति वात्सल्य नहीं है? अगर इस बात पर विचार करें तो उसे अपने बच्चे के लिए कांट्रेक्ट की क्या ज़रूरत? अनाथ बच्चों की संख्या में दुनिया भर में कमी नहीं। किसी पर भी अपना बेशुमार प्यार न्यौछावर कर सकता है।

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 199

पितृसत्ता स्त्री के मातृत्व अर्थात् कोख़ पर नियंत्रण करने का पुराना नुस्ख़ा अख़्तियार इसलिए कर रही है कि उसे विवाह से स्वतंत्र कर उस पर आधुनिकता का मुलम्मा चढ़ाया जा सके। विवाह का जोख़िम उठाने को विपिन तैयार नहीं। वह किसी अनाथ को गोद नहीं लेना चाहता और ना ही किसी रंडी से ख़ुद की औलाद चाहता है। क्योंकि इससे समाज में उसकी इज्ज़त घटेगी। इसलिए नीरजा के साथ का कांट्रेक्ट ही हर माइने में सही लगता है। और नीरजा की कोख़ पर पितृसत्ता की तरह अविवाहित कुंवारी कन्या पर अपना निश्‍चित नियंत्रण चाहता है।

पितृसत्ता ने जितने पुराने लुभावने नारे आविष्कृत किए हैं उसे स्त्रियों ने सिर झुकाकर स्वीकारा और पुष्ट भी किया। पितृसत्ता और संपत्ति का घनिष्ठ संबंध है। इनके सुरक्षा कवच को पीढ़ी-दर-पीढ़ी अन्य स्त्रियों को हस्तान्तरित भी करती आई हैं। इसे लाँघने वाली कुलच्छनी कुलटा मानी जाती है। जैसे *'कठगुलाब'* की नर्मदा जिसे उसी की बहन के पति से ज़बरदस्ती ब्याहने के लिए खुद बहन और गाँववालों ने मजबूर किया क्योंकि इससे नर्मदा की संपत्ति (जो वह कमाकर लाती है) किसी और के पास चली न जाएँ।

परन्तु आधुनिक स्त्री का सार्वभौमिक भगिनीवाद के चलते उनका दोहन हो रहा है। उन्हीं में से एक मातृत्व है। यदि मातृत्व पितृसत्ता के अनुकूल न हो तो उसे मान्यता नहीं मिलती। उसे वेश्यावृत्ति ही समझा

जाता है। गॉल्सवर्ती (Golsworthy) स्पष्ट करते हैं - "यदि कोई पुरुष विवाह संबंध की निष्ठा को भंग करता है तो वह अपने परिवार में कोई नया रक्त नहीं ला रहा होता। जबकि पत्नी के असतीत्व से परिवार में नया रक्त प्रविष्ट हो रहा है। इसलिये पत्नी का व्यभिचार अधिक पापपूर्ण माना जाता है।"[1]

राजाराममोहन राय ने अपने अध्ययन में व्यक्त किया था कि सती होने का आर्थिक कारण था - विधवाओं को उनका स्त्री-धन न लौटाना पड़े या संपत्ति में ही वे हिस्सा न माँग लें अथवा गर्भ के माध्यम से किसी अन्य का रक्तवीर्य न ले आयें, इन सब संभावनाओं का अंत उस युग में सती द्वारा ही हुआ। लेकिन आज इन सबके खिलाफ कानून है। तभी आधुनिक विधवा, स्त्री के लिए संबल भी बन जाती है।

स्त्री जब तक घर की चहारदीवारी के अंदर क़ैद रहेगी और उसी के रथ पहिए की भाँति धुरी में घूमती रहेगी तब तक मातृत्व की महत्ता के आगे सोच ही नहीं सकती। परंतु स्त्री सामाजिक मैदान में कदम रखते ही उसकी वैयक्तिक छाया और जीवन का दायरा भी बढ़ा है। उसकी सोच बदली।अब वह अन्य कार्यों में भी इतनी व्यस्त है कि किसी एक विशिष्ट पितृसत्ता द्वारा निर्मित महिमा-मंडित क्षेत्र में ध्यान देने का वक्त नहीं है। अतः मातृत्व स्त्री-जीवन को संचालित करने का कारक न रहकर अस्मिता निर्धारण का केन्द्र अनेक कारकों में से एक बन गया है।

---

1. डॉ. राधाकृष्णन - धर्म और समाज - पृ. 204

अतः स्पष्ट है कि मृदुला गर्ग समस्त विवादों से परे महान मानी जाने वाली मातृत्व की अवधारणा को कठघरे में खड़ा करती है। उसके हर महानतम मुलम्मे को उतारकर फिर से अस्तित्व और प्रासंगिकता खोजने का प्रयास करती है। कई पात्रों का ज़ायका लेने पर व्यक्त होता है कि वे मातृत्व को अस्मिता संघर्ष की बाधा मानते हुए दूर हटाना चाहती है परन्तु यह पूर्णतः सही भी नहीं है। मृदुला गर्ग का उद्देश्य है कि स्त्री अपने मातृत्व से मुक़रना नहीं चाहती साथ में इसे अपने अस्तित्व पर हावी होने भी नहीं देना चाहती। वह इसी को केन्द्र बिन्दु बनाकर अपने जीवन की इतिश्री नहीं करना चाहती बल्कि उत्तरदायित्व का नया आयाम जोड़ना चाहती है। साथ में आधिकारिता का भी दावा करती है। वह केवल पुरुष को ही अपना वंश नहीं देना चाहती बल्कि अपनी संतान को निर्भय एवं जागरूक नागरिक बनाना चाहती है। अतः मातृत्व कमज़ोरी नहीं बल्कि उसकी अस्मिता का पूरक तत्व बन गया है जो किसी की भी (पति की) धौंस पट्टी के आगे झुकने को तैयार नहीं।

नारी अपने पैरों पर खड़े होने तथा मातृत्व को अपनी शक्ति का दूसरा रूप बनाने पर भी इस बात को वह समझ चुकी है कि बच्चे एक सीमा तक ही माँ-बाप के सम्मुख उनकी चाह रखते हैं। मातृत्व जीवन-भर की व्यस्तता नहीं। अतः स्त्री भी आत्मऋण की दिशा में अग्रसर हो चली है। मातृत्व भी इसका एक पहलू भर है।

स्त्री-सृष्टि की सृजनाधिष्ठित संकल्पनाएं एवं स्त्री-अस्मिता का प्रकोप

स्त्री होने के साथ-साथ मृदुला गर्ग एक लेखिका भी हैं और यह उनकी अस्मिता का एक अंग है। मृदुला जी को चुभनेवाली सबसे बड़ी चीज़ है साहित्य लेखन में महिलाओं को मुख्य धारा से काटकर देखा जाना। साहित्य-समाज में एक धारणा है कि यदि नारी, लेखन में हस्तक्षेप करेगी तो नारी-विषयक प्रश्नों को ही उठाएगी। आलोचकों ने स्त्री-लेखन को मध्यवर्ग की ऊबी हुई औरतों का खाली समय में लिखा गया लेखन कहा। नारी ने जब लिखा तो सर्वप्रथम अपने आहत मन और पीड़ा के बारे में लिखा, किंतु अश्रुविगलित होना उसे बहुत अधिक समय तक न भाया। दुर्व्यवस्थाओं के प्रति उसका विद्रोह खुलकर व्यक्त हुआ। उन्होंने अपनी सामाजिक पारिवारिक स्थिति पर खुलकर लिखा। मृदुला गर्ग के स्त्री-संबन्धी विचार 'नारी-आंदोलन' और 'नारी-स्वतंत्रता : विभिन्न पहलू'। जैसे दो उपशीर्षकों में विभाजित कर सकते हैं।

समाज और सृजन के आपसी संबंध को लेकर लेखक नए लेखन-क्षेत्र में आते ही खलबली मचा देते हैं। यदि लेखन-क्षेत्र का वह नया सदस्य लेखक न होकर लेखिका हो तो अस्तित्व स्थापन के बीच पुरुष के लेखकीय हाथ 'ब्लैकमैल' जैसा काला रूप अख़्तियार करते भी कहीं-कहीं दिखाई देते हैं। फिज़ूल की बातों को समीक्षा का विषय बनाकर वे स्त्री-लेखन और सृजनकर्ता की चंचल मानसिकता पर हावी होने लगते हैं। इसी

अहंबोध और ब्लैकमेल को लेकर चलती माधवी के अस्तित्व पर धब्बा लगाता लेखक कौशल कुमार जैसे लोगों का विवरण मृदुला गर्ग की *'मैं और मैं'* नामक उपन्यास में दर्ज है। कौशल कुमार का माधवी के पुरस्कार के पैसों को उधार में लेकर न लौटाना तथा मणिकौल की फिल्म का बहाना करके, माधवी के उपन्यास की समीक्षा करके उसका दोहन, ऐसे ही चंद लेखकों की बात करता है जो नई लेखिका का शोषण करते हैं। यहाँ माधवी का ब्लैकमेल हुआ है।

माधवी अंतिम दौर में अपना विद्रोह और प्रतिरोध कौशल कुमार के हथियार से करती है और अंतिम जीत भी हासिल करती है। उसे अपना ढलता अस्तित्व वापस मिल जाता है।

उपन्यास में घर-परिवार के बाहर एक स्त्री-लेखिका की अस्मिता का ध्वंस होना और अहं की टकराहट में ब्लैकमेल के पंजों से एक स्त्री लेखिका का अपना अस्तित्व वापस पाना दर्ज है। जिस तरह विष, विष को काटता है उसी प्रकार माधवी भी कौशलकुमार पर जवाबी हमला करती है और सफल भी निकलती है।

रचनाकार अपने लालित्य से व्यापक परिप्रेक्ष्य को उपन्यास, कहानी इत्यादि विधाओं में रूपायित करता है वह चाहता है कि उसका सही समीक्षक उसे मिले। परंतु ताज़े सृजनकर्ता का पहला कदम लेखन-क्षेत्र के

दाँवपेच से वाकिफ़ नहीं होता कि उसके साथ छल हो सकता है। यदि वह नया रचनाकार स्त्री हो तो पितृसत्तात्मक लेखन-पद्धति उसकी सृजन-कला में भी अपना शोषण ले आएगी। पर इस संदर्भ से अपने को बचाते हुए माधवी नामक सृजनकर्ता अंततः अपनी मंज़िल पा लेती है।

अपने अस्तित्व गठन के लिए मनुष्य की बेहतरीन अभिनय कुशलता कदम दो कदम की दूरी पर हमेशा विद्यमान रहती है। धन एवं यश के लिए खुद को दाँव पर लगाने में कोई हिचकता नहीं। इसके लिए कोई भी छल-कपट करने के लिए वह तैयार है। स्त्री-अस्मिता सृजनात्मक स्तर पर अस्तित्व का अंतरंग विस्तार है। अवहेलित सृजनात्मकता एवं सृजनात्मक 'बलैकमेल' इसी की परिणति है। आधुनिक ज़माने में चाहे दफ़्तर में हो या, बैंक, पोस्ट ऑफिस या बिल भरने की जगह कुछ ऐसे लोग मिल ही जाते हैं जिनकी हमें काफी ज़रूरत होती है और जिनकी मदद के बगैर हमारा काम आगे बढ़ ही नहीं पाता। ज़रूरत हमारी होने की वजह से हम 'अहं' की चोट बर्दाश्त किए जाते हैं। इसी तरह प्रस्तुत उपन्यास में भी माधवी, कौशल कुमार द्वारा मिलने वाले औपन्यासिक चर्चे के लिए अपने 'अहं' को दाँव पर लगाती है। कौशल द्वारा अपने प्रेम का इज़हार बार-बार करने पर; घिन्न आने पर भी उसे बर्दाश्त करती है। उसका बिन बुलाए घर आना माधवी को पसंद नहीं। परंतु अपने रुत्बे के लिए दुनियादारी के खातिर तथा मेज़बान होने के नाते 'अहं' की चोट सहती

जाती है। 'अहं' की चोट अपनों के खातिर भी सहती है। माँ की जान बचाने हेतु वह कौशल कुमार के इशारों पर नाचती है। माधवी का हर वक़्त उसे उधार दे देना, उसके बेवक्त का आना पसन्द न होने पर भी बर्दाश्त करना केवल इसलिए स्वीकारती है क्योंकि कौशल कुमार एक अच्छा समीक्षक है।

अपनी कार्यसिद्धि की भावना ही उसे ऐसा करने पर मजबूर करती है। माधवी ने जो कुछ भी किया वह सहज मानवीय भावना ही है। अंत में माधवी चुप रहकर कौशल का विरोध करती है। माधवी का प्रकोप एक स्त्री-लेखिका का प्रतिरोध है जिसके चलते कौशल जैसे व्यक्ति अपनी ही खोदी हुई खाई में खुद गिर जाते हैं। कौशल कुमार की निम्नलिखित भावना प्रमाण है, "वह साफ महसूस कर रहा है कि दीवार के पीछे खड़ी माधवी जिसे वह देख नहीं सकता, धीरे-धीरे लुप्त हो रही है, रोज़ थोड़ा-थोड़ा सिकुड़ कर, मोम की प्रतिमा आग की तपिश पाकर रफ्ता-रफ्ता पिघल रही हो जैसे। नहीं माधवी लोप नहीं हो सकती।.... अपने अस्तित्व के आतंक से वशीभूत उसका फूलता-मुरझाता अस्तित्व उसे चाहिए।"[1]

माधवी अपने सृजन एवं व्यक्तिगत अस्तित्व की रक्षा करती है तो कौशल अपना अस्तित्व खतरे में पाता है क्योंकि उसका अस्तित्व माधवी की अस्मिता से जुड़ा हुआ था। स्त्री को नीचा दिखाकर कुछ पुरुष

---

1. मृदुला गर्ग - मैं और मैं - पृ. 210

खुद को ऊँचा महसूसते हैं। पुरुष-सोच की इसी थल को माधवी जैसी स्त्री नस्तनाबूद कर डालती है।

स्त्री-अस्मिता की प्राप्ति सृजन मे पाती 'मनु', मृदुला जी के अन्य उपन्यास *'चित्तकोबरा'* की नायिका है। मनु पति महेश और प्रेमी रिचर्ड के बीच तय नहीं कर पाती कि उसकी आत्मसार्थकता कहाँ है। पति से तलाक़ और प्रेमी से विवाहित होने में या पति-त्याग किए बग़ैर प्रेम करने में। अंत में वह खुद कविता के क्षेत्र में अपने भावों का समावेश करती है जिससे मनोकामना की परिसमाप्ति होती है। कविताओं के संकलन का नाम है - 'जिप्सी मन'। 'भूख' और 'गोलीकांड' भी कुछ अन्य विषय हैं। वह चाहती है कि रिचर्ड उसकी कविता पढ़े परंतु पते का पता नहीं। पाँच कविता संकलन के बाद कहानी और उपन्यास पर भी निशाना साधती है। फिर भी मनु अंत में द्वन्द्व से ग्रस्त है - "पता नहीं मैं खुद नहीं जानती, मैं क्या बनना चाहती हूँ। इतना खाली खोखला वक्त है मेरे पास। कभी सोचती हूँ अभिनेत्री बन जाऊँ कभी सोचती हूँ पी.एच.डी. कर डालूँ - किसी कॉलेज में पढ़ाऊँ.... फैक्टरी का काम देखूँ.... विधानसभा के लिए खड़ी हो जाऊँ..... दुनिया भर में घूमूँ..... अस्पतालों में जाकर मरीज़ों की सेवा करूँ..... किसी मिशन में भरती हो जाऊँ..... कविताएँ लिखूँ।"[1]

---

1. मृदुला गर्ग - चित्तकोबरा - पृ. 138

सृजनात्मक लेखन से प्राप्त खुशी, गर्व आदि के बारे में मनु मन ही मन रिचर्ड से संवाद करती है। दिन की थकान और रात की नींद जीवन की धारदार-धार बन चुका है। मृदुला जी मानती हैं कि *'उसके हिस्से की धूप'* और *'चित्तकोबरा'* दोनों ही उपन्यासों में नायिका द्वन्द्व के बावजूद तीसरे क्षितिज यानि मानसिक आधार को चुनती है।

मुक्ति की आधुनिक अवधारणा को घेरे, स्त्री के मानसिक अस्वातंत्र्य से अस्मिता के तल को खोजता और नया आकार देता उपन्यास है - *'उसके हिस्से की धूप'।* सृजनशीलता में अस्तित्व की ठोस छाप उत्सुकता से पैदा करने में लेखिका का ज़हन इच्छित रहा है। वस्तुतः मृदुला जी का शीर्षक-विश्लेषण उनकी दृष्टि-संपन्नता का परिचय देता है। स्वातन्त्र्य-अस्वातन्त्र्य के चक्रव्यूह में फँसी 'मनीषा', जितेन एवं मधुकर दोनों के साथ मुक्ति की साँस नहीं ले पाती। वह स्वतंत्रता सृजनात्मकता में पाती है।

अस्तित्व की तलाश में भटकती स्त्री मनीषा आधुनिक अकेलेपन की त्रासदी से त्रस्त है। व्यस्त जीवन के गहराते अंधेरे में जितेन 'ईद का चाँद' है। मनीषा एक स्वस्थ खुले आसमान की ज़िन्दगी चाहनेवालों में से है। 'कार' के बंद दरवाज़े से 'स्कूटर' की खुली साँस उसे अधिक राज़ आती है। उनके बीच बढ़ते संबंध के बारे में जितेन के मद्रास जाने से पूर्व उसे आगाह करती है। परंतु जितेन मात्र इतना कहकर चला जाता है कि प्रेम की परिणति विवाह नहीं। प्रेम चुक जाने पर खास नहीं रहता। "नहीं मनीषा,

ऐसा नहीं होता। प्रेम क्षणिक वस्तु है। जब चुक जाता है तो विवाहित जीवन ऐसा ही होता है।"[1]

लेखिका होने के नाते लेखन ही में मनीषा अपनी पूर्णता खोजती है। इसका पता उसे तब चलता है जब उसकी मुलाकात जितेन से दोबारा होती है। चार साल बाद जब जितेन को मनीषा देखती है तो उसे ऐसा लगता है जैसे उसे उसके सूखे जीवन में एक दिशा मिल गई हो और यह दिशा उसे ज़रूर मंज़िल तक पहुँचाएगी। परंतु लक्ष्य उसने जितेन को माना था परंतु यथार्थ यह था कि जितेन के ज़रिए मनीषा ने अपने लेखन की सच्चाई को पहचाना। जितेन ने मनीषा के कहानी-संग्रह 'क्षण भंगुर' पर उसके हस्ताक्षर माँगे तो उसे एहसास हुआ कि यही उसकी पूर्णता है। जितेन द्वारा हस्ताक्षर माँगे जाने पर पहला अक्षर 'म' जो मनीषा ने लिखा था वह उसे अपने अस्तित्व का एहसास कराता है। "मनीषा ने उसके हाथ से दोनों चीज़े थाम लीं और अकम्पित लिखाई में अपना नाम मुखपृष्ठ पर लिख दिया। मनीषा। यह उसका अपना नाम है। इसका ताल्लुक़ न जितेन राय से है, न मधुकर नागपाल से। मनीषा के 'म' के मुखपृष्ठ पर फैलते-फैलते, उसके होंठों पर भी संतुष्ट मुस्कुराहट फैल गयी। जिस आत्म-गौरव का अनुभव उसने इन कहानियों को लिखते समय और फिर उन्हें संकलन-रूप में देख कर किया था, आज जितेन के सामने उन्हें अपना घोषित करते हुए

---

1. मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 87

फिर उसके अंतर को गहरे से छू गया। हस्ताक्षर कर देने के बाद भी कुछ देर तक, वह किताब को कसकर थामे रही, और नज़र मुखपृष्ठ पर जमाये रही। लगा, जीवन की तमाम विचलता के बीच एक ऐसा बिन्दु भी है जो सदा अपनी जगह स्थिर रहेगा।"[1] उसे मालूम हुआ कि स्त्री हमेशा सहारा ढूँढती है। पहले अपने माँ-बाप फिर अपने पति से पुनः अपने बच्चों से। परंतु उसे अपने अस्तित्व का कुछ पता नहीं। उसे अपने अस्तित्व का मिलना ऐसा लगा जैसे एक प्यासे को पानी से भरा कुँआ मिल गया हो। उसकी एक बूँद ही उसे गदगद कर गई। मनीषा का 'म' तो उसके लिए पूरा सागर था। उसे जीवन-पथ के खुरदुरे रास्ते में समतल ज़मीन मिल गई। परंतु इन सबके बावजूद उसने माँ बनने का इरादा न त्यागा। क्योंकि पति-पत्नी तभी पूर्ण होते हैं जब वे माँ-बाप बन जाएँ। अगले दो सालों में उसका विचार कर मनीषा ने कदम बढ़ाया। उसे न तो जितेन से और ना ही मधुकर से वह स्वतंत्रता मिली जो वह दिली तौर पर चाहती है।

मनीषा की भाँति ही माधवी भी अंत में अपना अस्तित्व पा लेती है। वह कौशल कुमार को मात देकर खुद अपनी मुक्ति का रास्ता ढूँढ़ लेती है।

मृदुला गर्ग की सूक्ष्मग्राही सामाजिक-चेतना, स्त्री-चेतना खासकर मध्यवर्गीय स्त्री-चेतना से जुड़ी नज़र आती है। मनीषा के लिए प्रोफेसर का

---

1. मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 38

काम करना, महज़ वक़्त की घड़ी को अपने जीवन में व्यस्त रखने के लिए था। वह यह अच्छी तरह जानती है। नौकरी में घिसे-पिटे जुमलों को पुनः-पुनः विद्यार्थियों को पढ़ाने और ज़रा सा लीक् से हटते ही उसे महसूस होता है कि वह अपनी स्वतंत्रता के साथ पढ़ा नहीं सकती। उसे परम्परा के अनुसार ही चलना पड़ेगा।

मृदुला जी ने स्त्री-लेखन की सृजनात्मक गतिविधियों में स्त्री-अस्मिता का भरपूर अनुसंधान किया है। नारी को अपने अधिकारों का आभास हो चुका है। वह दीर्घकालीन तंद्रा से मुक्त हो जाग गई है। स्त्री-शक्ति एवं अस्मिता के लिए प्रकोप जताते पक्ष पर मृदुला जी अपने औपन्यासिक पात्रों द्वारा सृजनात्मक स्तर पर प्रकाश डालती हैं। स्त्री पंखहीन पक्षी की भाँति किसी की दया पर निर्भर रहना नहीं चाहती बल्कि सृजनाधिष्ठित अस्तित्व चाहती है। महामानव के संप्रदाय से पुरुष को साधारण मानवी-स्तर पर लाना भी मृदुला जी का लक्ष्य है। सृजनात्मकता उपर्युक्त कथन के लिए सर्वोत्तम कलाकृति है जिसकी एक कड़ी खुद मृदुला गर्ग भी हैं।

'कठगुलाब' सृजन की संकल्पना और उसके टूटने पर पड़ते प्रकोप को पूरी ताकत के साथ बयान करता है। 'मारियान' ऐसी स्त्री-पात्र है जिसने अपनी ही औलाद को खोया है। इर्विंग व्हिटमेन से विवाह के उपरांत उसके सपनों को पूरा करने के लिए अपने जीवन और भावनाओं

के अंश को शोध का रूप दिया। उसका मातृत्व इस शोध में साफ ज़ाहिर होता है। मारियान मेहनती, संवेदनशील, कर्मठ, प्रतिभाशाली सर्जक थी। परंतु उसमें प्रपंच बुद्धि नहीं है। अपने सृजनात्मक संतान को बनाए रखने के लिए इर्विंग की खातिर अपनी संतान को भी मार डाला था। उसने गर्भपात करा लिया था। जब इर्विंग ने उससे कहा कि "गर्भ मैं धारण कर रहा हूँ, बीज तुम डाल रही हो"[1] तो मारियान पिघल गई और अपनी पूरी ताकत इसे पैदा करने में लगा दी। वही उसकी कमज़ोरी थी।

'वूमेन ऑफ द अर्थ' की रॉक्जॉन, एलेना, सूजन, रूथ कोई और नहीं उसी के व्यक्तित्व के हिस्से थे। उनका दुःख मारियान का दुःख था। इसे इर्विंग ने अपने नाम से छपवाया और मारियान को दूध से मक्खी की तरह उठाकर बाहर फेंक दिया।

इर्विंग ने पत्रकारों को यह बताया कि इर्विंग व्हिटमैन की बीबी मारियान मनोविकृत और उन्माद की मारी है। वह इस मतिभ्रम में जी रही है कि 'वुमेन ऑफ द अर्थ' जैसा बेस्ट सेलर उपन्यास उसी की मदद से लिखा गया है। जिस सर्जनशील लेखिका मारियान ने संवेदनशीलता के कारण इर्विंग के दिए हुए सभी विषयों पर सामग्री जुटाई थी वह कहीं नज़र नहीं आई। "एक अनुभवी और प्रबल शोध कर्ता की तरह उसने सुनियोजित ढंग से तथ्य व विवरण इकट्ठे किए। फिर तार्किक आधार पर उनका

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 94

तटस्थ विश्लेषण कर उचित शीर्षक देकर, सिलसिलेवार उन्हें फाईल किया। शुरू में अनुभव लिखा और अंत में इंडेक्स देने की तैयारी की।"[1]

मारियान तो उपन्यास को ही बच्चा मान बैठी थी, पर बाद में न उपन्यास हाथ आया और न माँ बनने की इच्छा पूर्ण हुई। गैरी कपूर से शादी कर लेने के बाद भी उसकी यह इच्छा अपूर्ण ही रही। चाहत से, अहसास से, तकलीफ से रूथ और मारियान एक थे। रूथ ने भी अपने पति रोमांस के लिए बारह साल के बेटे कार्लोस को पीछे स्पेन में छोड़ा था जो बाद में कभी उसे नहीं मिला। दुबारा माँ बनी तो भीषण सूखे में। बच्चे को पालने, उसे बड़ा करने की, इच्छा मारियान के भीतर ही दबकर रह गयी। परंतु मारियान चुप नहीं रही। उसने विद्रोह किया। उसको अपनी अस्मिता वापस चाहिए थी। 'रिलीफ फॉर एब्यूज़्ड वुमेन', रॉ में भाग लिया और इर्विंग पर केस कर दिया। केस कोर्ट के बाहर सेटल हुआ परंतु जीत हासिल न कर पाई। किंतु बाद में स्मिता की ज़िन्दगी पर पुनः किताब छपवाकर उसने अपने दूसरे सृजन को जन्म दिया और ख्याति प्राप्त की। धीरे-धीरे लोग भी समझने लगे की इर्विंग ने जो कुछ कहा और लिखा था वह उसका अपना नहीं है। मारियान ही उसकी लेखिका है क्योंकि व्यक्ति चुरा तो सकता है पर शैली पुनः उसी प्रकार लिख नहीं सकता। इस प्रकार मरियान ने अपनी औलाद को बाप की बजाय माँ के नाम से जनम दिया और अपनी किताब लिखी। सृजन का यह रूप मातृत्व का रूप ही है।

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ 76

उसी प्रकार कठगुलाब के अन्य पात्र स्मिता, असीमा, नर्मदा सभी मातृत्व की भावना के होते हुए भी अधूरेपन से त्रस्त हैं। परंतु बाद में गोधड़ गाँव में सभी अपनी अस्मिता पा लेती हैं। स्मिता खुद माँ नहीं बन सकी पर सभी गाँववालों की 'बा' ज़रूर बन जाती है। वह शिशु-जन्म से वंचित रही तो भी पिता के उगाए कठगुलाब के बीज को हाथ में लेकर घूमती रही। कठगुलाब ज़रूर उगा और पूरे ज़ोरों पर उगा। गोधड़ गाँव में कठगुलाब की खेती की। जो कठगुलाब कहीं नहीं पनपा वह गोधड़ गाँव की उस पावन भूमि में उगा जहाँ स्मिता ने अपनी अस्मिता पाई। कठगुलाब का उगना स्मिता की सृष्टि का ही प्रतिरूप है। नर्मदा और असीमा भी स्मिता का साथ देती हैं। अतः वे मातृत्व के सृजनाधिष्ठित मूल्य को प्रस्तुत करने में सफल हुई हैं।

कन्या जन्म

बालक-बालिका भेद सदियों की रूढ़ीग्रस्त परंपरा है जिसकी छींटे अब भी मौजूद हैं। *'मीरा नाची'* कहानी की 'मीरा' अपने इन्हीं छींटों की दास्तान बयान करती है। 'स्व' की माँग कहानी द्वारा स्पृहणीय है। मृदुला जी 'मीरा' के ज़रिए स्त्री-समूह के अस्तित्व का स्फुलिंग हमारे समक्ष रखती हैं।

'मीरा नाची' अपनी माँ के नियंत्रण में दबी लड़की की कथा है। जिस तरह कृष्ण की मीरा उनके स्नेह में लोक-लाज त्याग कर भक्तों के

समक्ष राज-रानी होकर भी अपनी सुध-बुध खोकर नाची थी उसी तरह मृदुला जी की मीरा भी एक पल के लिए संसार के समक्ष स्थैर्य होकर नाची है। आज़ादी महसूस करती है। "लेटे लेटे फैला आसमान दीखता तो बाकी दूरियाँ दिखनी बंद हो जाती थीं।

मैं उठ कर बैठ गयी। हाय, क्या नाच था उसका।"[1]

मीरा का नाच उस पौराणिक मीरा से काफी हद तक मेल खाती है। उसे भी भजन एवं नाच पर दुनियावालों एवं घरवालों ने नकारा था और इस साधारण मीरा (स्त्री) को भी नकार रहे हैं। आखिर कब तक वह भद्दी मान्यता एवं नियंत्रण माने? सहनशीलता की भी हद होती है। मन मारकर जीना मात्र स्त्री की नियति क्यों? मृदुला जी ने पाठकों के सामने ऐसे कई सवाल प्रस्तुत कहानी द्वारा खड़े किए हैं। पौराणिक एवं आधुनिक दोनों मीराओं का नाच लोक-लाज को तोड़ना ही है। दोनों में विद्रोह झलकता है। अतः कह सकते हैं कि मृदुला जी ने मीरा के छोटे से नाच द्वारा स्त्री की अधिकतम या तमाम समस्याओं को एकसूत्र में बाँधा है जो स्त्री, जन्म से मरण तक झेलती आ रही है। *'कठगुलाब'* की नर्मदा और *'अनाड़ी'* की स्वर्णा बाल-मज़दूरी से पीड़ित हैं। वे घरबार चलाती है और फिर भी मान्यता नहीं मिलती।

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - मीरा नाची - पृ. 568

स्त्री-अस्मिता के मुद्दों को जर्जरित पौराणिक मान्यताओं की घनघोर परंपरा के बक्से से स्वस्थ रूप में बर्हिजगत तक पहुँचाने का प्रयास इस लघु कहानी *'मीरा-नाची'* द्वारा मृदुला गर्ग ने किया है। इसे अस्मिता-बोध की संक्रमण कथा कहना गलत न होगा। नारी-स्वातंत्र्य की गुहार मचाती मीरा कवि 'सुमित्रानंदन पंत' के निम्नांकित पंक्तियों को आवाज़ देती हैं -

"मुक्त करो नारी को मानव।
चिरबन्दिनी नारी को
युग-युग की बर्बर काया से;
जननी-सुख-प्यारी को।"[1]

'पंत' अपनी 'युगवाणी' में कहते हैं -

"स्नेह मुक्त रहे परस्पर
नारी हो स्वतंत्र जैसे नर।"[2]

स्वतंत्रता का लुत्फ़ कहानी का मुख्य मुद्दा है। मृदुला जी यही लूका स्त्री-समूह में उठाना चाहती है। क्योंकि वे स्त्री-अस्तित्व को सुदृढ़ करने की मांगलिक कामना करती हैं। उन्हें इस बात का रणरणक है कि जर्जरित मूल्यहीनता स्त्री के माथे पर वर्तमान काल में भी मुद्रित है।

---

1. डॉ. इन्दु वशिष्ट - आधुनिक कवि और नारी अस्मिता - पृ. 70
2. सुमित्रानंदन पंत - युगवाणी - पृ.

स्वावलंबन स्त्री-अस्तित्व की पहली माँग है जिसे स्वायत्त करने के लिए स्वरूपज्ञान (आत्मज्ञान) और स्वाभिमान दो अस्त्र हैं जिनकी स्वीकृति स्त्री को स्वयं पानी होगी। मृदुला जी के कलम रूपी शस्त्र का सौरभ संपूर्ण कथा-साहित्य में मौजूद है। प्रतिरोध की प्रज्ञप्ति देना उनका उद्देश्य है क्योंकि तभी स्त्री-अस्तित्व-स्थापन का प्रत्यवेक्षण पूर्ण होगा।

निष्कर्ष

स्वतंत्रता का संबंध अस्तित्व से है। इसे पाने हेतु 'बोध' का होना आवश्यक है तो साथ में 'प्रतिरोध' भी ज़रूरी है।

भारतीय समाज हमेशा से पुरुषसत्तात्मक समाज रहा है। स्त्री को घर की चहारदीवारी में कैद रखा जाता था। आज स्त्री कुछ हद तक ही स्वतंत्र हुई है। स्त्री की स्वतंत्रता का अर्थ यह कतई नहीं है कि वह अपनी संस्कृति और सभ्यता से छूट जाएँ और अश्लीलता पर उतर आए। स्त्री की माँग मात्र इतनी हो कि दायरे में रहकर वह भी अपनी स्वतंत्रता को आप जिये। उसे पुरुष का मोहताज न बनना पड़े बल्कि साथी बनें। पुरुष से आगे निकलने की होड़ को स्त्री-स्वतंत्रता नहीं कहा जा सकता। यदि स्त्री स्वतंत्रता चाहती है तो उसे पहले 'स्वतंत्रता' के मायने को समझने होंगे। तभी मानवीयता के सही अर्थ की स्थापना स्त्री-स्वातंत्र्य से जुड़ पाएगी। जब तक स्त्री इस दिशाहीनता पर विजय प्राप्त नहीं करेगी, अपनी काबलियत

पर शर्म महसूस करने की बजाय गर्व अनुभव नहीं करेगी, अपने सृजन-तत्व को मौलिक चिंतन और लेखन-प्रतिष्ठापित करने में लीन नहीं होगी; साहित्य एवं जीवन में कालजयी रचना तथा स्त्री-अस्तित्व का अभाव खटकता रहेगा।

वस्तुतः मृदुला गर्ग का कथा-साहित्य स्त्री की अपनी अस्मिता के रक्षार्थ प्रतिरोध व्यक्त करता है। उन्होंने अपने कथा-साहित्य में अस्मिता हेतु संघर्ष करती तमाम स्त्रियों की गवाही दी है। ये गवाही उन सहमी स्त्रियों की जागृति के लिए भी है जो जबावदेही से कतराती हैं। कथा-साहित्य की प्रतिक्रियाओं को महज़ लेखिका के स्तर पर न देखकर प्रत्येक स्त्री की उभरती संवेदना के स्तर पर देखना होगा। जीवन का बृहद चित्रण मानवीय अस्मिता के बल पर ही सुरक्षित हो सकती है। सुरक्षा कवच दलीलों से नहीं, स्त्री को व्यक्ति रूप में देखने पर ही प्राप्त होगा। यही स्फुलिंग मृदुला जी अपने कथा-साहित्य का केन्द्र बिन्दु मानती हैं। स्त्री-अस्तित्व के लुत्फ़ को संपूर्ण कथा-साहित्य में मृदुला जी ने तरजीह दी है। आँखों देखी तथा आभासित अनेक मसलों का वैविद्य कहानी एवं उपन्यास में स्पृहणीय है। पाठकों के साथ संप्रेषण कई सवालों के साथ हुआ है। स्त्री-जीवन के समस्त अनुभवों के निरूपण को कई सवालों के साथ व्यक्त किया गया है। सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन की सूक्ष्मतम् अभिव्यक्ति की प्रगल्भता का श्रेय मृदुला जी को जाता है। आधुनिकता का नारा लगानेवाली लेखिका

स्त्री-पुरुष संबंधों के स्वतंत्र अस्तित्व की पक्षधर हैं, जो भारतीय संस्कृति के वैवाहिक बंधन को अस्वीकृत करती हैं, यद्यपि *'कठगुलाब'* में आकर विवाह, समाज और मानवीय संबंधों के प्रति विशेष अनुरक्ति दृष्टिगोचर होती है। भारतीय संस्कृति से सर्वथा भिन्न पश्चिमी ढंग पर स्त्री-पुरुष संबंधों का चित्रण करनेवाली लेखिका के कथा-साहित्य में सांस्कृतिक चिह्न मिलते हैं जो उनके व्यक्तित्व में गहरे पैठ गए संस्कृति के संस्कारों को अभिव्यक्त करता है। यथार्थ जीवन में भी विवाह और परिवार का अस्तित्व लेखिका का वास्तविक परिचय देता है।

मृदुला जी समकालीन समय में प्रतिपादित स्त्री की विसंगतियों, समस्याओं, संकटों एवं संघर्षों का प्रांगण कथा-साहित्य के मध्य प्रज्जवलित करती हैं। स्त्री-अस्तित्व का दर्पण आत्मनिर्भता एवं आत्मविश्वास है जिसे तथाकथित मूल्यों की प्रतिकूल प्रतिकृति से सुरक्षित रखना स्वयं स्त्री का दायित्व है। क्षत-विक्षत होते अस्तित्व और व्यक्तित्व के लिए भावात्मक, बोधात्मक और प्रत्यक्ष विद्रोह के कई प्रतिदर्श मृदुला जी का कथा-साहित्य प्रतिबिम्बित करता है। मृदुला गर्ग को यकीन है कि विश्व-स्तर पर स्त्री अपने अस्तित्व के संघर्ष में अवश्य विजयी होगी। साहित्यकार के नाते उनका प्रतिभाग जारी है।

❖❖❖

अध्याय - तीन

मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ

मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ

वर्ग विभाजन : एक अवधारणा

व्यक्ति समाज की इकाई है। वर्ग-संकल्पना का नियामक इस इकाई का समाज में स्थान निर्धारित करता है। व्यक्तियों का समूह वर्ग की बुनियाद है। वर्गों की अवधारणा समूहों के सामाजिक भेद पर आधारित है। वर्गीकरण समाज के उत्पादन वितरण और श्रम साधनों की बुनियाद पर आधारित होता है। सामाजिक स्तर पर विभाजन का निर्धारण करने वाले स्रोत हैं सम्पत्ति, रहन-सहन, शिक्षा, आय-स्रोत, वंश-परंपरा, प्रतिभा, व्यक्ति विशिष्टता। 'जिंसबर्ग' ने अपनी ओर से वर्ग की अवधारणा प्रस्तुत की है। 'जिंसबर्ग' ने कहा है कि एक वर्ग के अन्तर्गत ऐसे सदस्य होते हैं जो एक ही वंश से उत्पन्न हों, एक से धन्धों में लगे हों, जिनकी शिक्षा समान हो, जो धन की दृष्टि से समान स्तर रखते हों और जिनके जीवन-निर्वाह का ढंग भी एक सा हो। ऐसे सभी सदस्यों के विचार, भावनाएँ, प्रवृत्तियाँ और व्यवहार समान होते हैं।

अक्सर व्यक्ति के वर्ग का निर्धारण उसके आर्थिक सामाजिक स्तर पर आधारित होता है। लिहाज़ा एक स्तर की व्यक्ति इकाइयों का समूह ही तत् स्तर के विशेष वर्ग का निर्माणकर्ता होता है।

समाज में व्यक्तिगत सम्पत्ति की भावना के साथ ही वर्ग-भावना बढ़ती गई और आज यह अपने स्पष्ट रूप में विद्यमान है। आधुनिक युग में वर्ग तथा वर्ग-संघर्ष को विशिष्ट सामाजिक प्रक्रिया के रूप में मार्क्स ने वैज्ञानिक और तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। 'फ्रांस' के 'फूरियर' तथा 'सेंट साइमन' वर्ग-संघर्ष की धारणा को इससे पहले ही विवेचित कर चुके थे। किन्तु मार्क्स और एंगेल्स ने बाद में अपना नवीन सिद्धांत 'कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो' में सन् 1847 ई. में आधुनिक युग के एक प्रभावशाली विचार के रूप में प्रस्तुत किया। बाद में 1867 ई. में प्रकाशित पुस्तक 'दास केपिटल' (Das Capital) में मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष के सिद्धांत को 1848 ई. की फ्रांस की राज्य क्रांति के संदर्भ में विवेचित किया। उसने क्रांति और उसके लक्ष्य के रूप में 'वर्गविहीन समाज' की धारणा को स्थापित किया।

'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के अनुसार व्यक्ति की "आय, सम्पत्ति, व्यवसाय, व्यवसाय में उपलब्धि, रहन-सहन का स्तर, नैतिक विशेषताएँ, शैक्षिक स्तर तथा समाज में शक्ति के अभ्यास केन्द्रों तथा विशेष संस्थाओं, जिनमें वह कार्य करता है, से सम्बद्ध उसके वर्ग का

निर्धारण करने वाले प्रमुख तत्व हैं।"[1] समाज में उत्पादन की वृद्धि के साथ व्यक्तिगत सम्पत्ति की भावना बढ़ती गई। और आज प्रत्यक्षतः इसका स्पष्ट रूप प्रकट है। मार्क्स ने इतिहास के प्रारंभिक काल में वर्गों की स्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखा है– "इतिहास के शुरु के युगों में समाज प्रायः सभी जगह जटिल रूप में भिन्न-भिन्न रूप में बँटा दिखायी देता है। उसमें ऊँच-नीच के बहुत से सामाजिक दर्जे पाये जाते हैं। प्राचीन रोम में पेट्रोशियन, सामन्त, प्लेबियन और दास मिलते हैं। मध्य युग में सामंती राजा, उनके अधीन छोटे-छोटे सरदार, शिल्प संघ के मालिक, मज़दूर, कारीगर, काम सीखने वाले उम्मीदवार, अर्द्धदास दिखाई पड़ते हैं। लगभग इन सभी वर्गों में भी कितनी ही छोटी-मोटी श्रेणियाँ होती थीं।"[2]

अतः स्पष्ट है कि वर्ग विभाजन की अवधारणा सामाजिक वर्गीकरण, सामाजिक विभेदीकरण, सामाजिक मूल्यांकन एवं पुरस्कार आदि के आधार पर होती सामाजिक असमानता है।

समाज वर्गीकरण : ऐतिहासिक संदर्भ

समाजशास्त्री वर्गों के निर्माण की प्रक्रिया भिन्न रूप में करते हैं। प्लेटो दार्शनिक विचारक हैं। उन्होंने नागरिकों को तीन वर्गों में रखा है-

---

1. Encyclopaedia Britanica Vol. VI - P. 873
2. कम्यूनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र - पृ. 35

संरक्षक, सहायक एवं श्रमिक। पुनः संरक्षक, शासक और गैर शासक वर्गों में विभाजित है। अरस्तू के अनुसार हर राज्य में तीन वर्ग होते हैं। अत्यधिक धनी वर्ग, अत्यधिक ग़रीब वर्ग और तीसरा मध्यम वर्ग। वे ख़ुद को मध्यम श्रेणी के वर्ग में गिनना पसंद करते हैं। मार्क्स कहते हैं कि पहले उत्पादन अधिक नहीं होता था इसलिए वर्ग-भावना नहीं थी। उत्पादन बढ़ा तो वर्ग भी बना। व्यक्तिगत संपत्ति की भावना के साथ समाज में श्रेणीभेद होने लगे। 1859 में 'दास केपिटल' के अन्तर्गत कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो में अपनी बात उन्होंने रखी है। 'कार्ल मार्क्स' समाज में खासकर दो वर्ग मानते हैं। शोषक और शोषित वर्ग। वर्गीकरण में तीन श्रेणियाँ हैं : प्रथम - बुर्ज़ुआ (शोषक वर्ग), द्वितीय - प्रोलितेरियत (शोषित वर्ग), दोनों के मध्य - पेटी बुर्ज़ुआ (मध्य वर्ग)।

इतिहासकार, अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री मैक्स वेबर ने भी माना कि सम्पत्ति व्यवस्था पर नियन्त्रण ही यह निर्धारित करता है कि उत्पादन में किसी वर्ग की क्या भूमिका होगी। मैक्स बेबर मध्य वर्ग को सामाजिक वर्ग की संज्ञा देते हैं। उन्होंने तीन वर्ग की बात कही है। प्रथम - सम्पत्तिवान वर्ग, द्वितीय - सम्पत्तिहीन वर्ग, तृतीय - सामाजिक वर्ग में अन्तिम को अपने सामर्थ्य के अनुसार किसी भी वर्ग में शामिल होने की आज़ादी दी है। जिंसबर्ग वर्ग को दलों के सामाजिक भेद पर आधारित

मानते हैं। उन्होंने एक वर्ग में ऐसे लोगों को माना है जो धन, वंश और जीवन-निर्वाह के ढंग में एक समान हो। ऐसे दल के विचार, भावनाएँ एवं प्रकृतियाँ और व्यवहार समान होते हैं।

लेनिन 1917 की बोल्शेविक क्रान्ति के अग्रदूत रहे हैं। उन्होंने यहाँ वर्ग व्यक्तियों के दल पर आधारित माना है। इन दलों की भिन्नता का आधार व्यक्ति की सामाजिक उत्पादन पद्धति है। यह पद्धति उत्पादन के साधनों से ही ज्ञात होता है। यह अन्तर कुछ श्रमजीवियों के संगठन के कार्यों पर तथा कुछ सामाजिक धन के अर्जित करने के उपायों पर आधारित होता है।

अतः कह सकते हैं कि एक विशिष्ट वर्ग का निर्माण, एक विशिष्ट प्रकार के आर्थिक और सामाजिक स्तर वाले व्यक्ति के एक समूह के अंतर्गत आबद्ध होकर होता है।

मध्यवर्ग

मार्क्स ने जब मध्यवर्ग का नामकरण किया तब यही सोचा था कि शासक वर्ग का एक छोट हिस्सा, यह मध्यवर्ग आगे चलकर सर्वहारा वर्ग में विलुप्त हो जाएगा। परंतु यह समस्त देशों में विस्तार पाता गया। मध्यवर्ग के विस्तार का कारण था - पूँजीवाद, औद्योगिक एवं नगरीय सभ्यता में वृद्धि।

मध्यवर्ग का उदय

मध्यवर्ग के नामकरण पर विचार करते हुए 'एफ.सी.पाम' (F.C-Palm) लिखते हैं कि 19वीं शताब्दी के अन्त में छोटे-छोटे भू-स्वामी तथा किसान इस मध्यवर्ग से सम्बद्ध हो गए थे, परन्तु मध्यवर्ग नाम सन् 1812 ई. से पहले किसी वर्ग के लिए प्रयुक्त नहीं किया गया था। अतः निश्चित है कि 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में ही मध्यवर्ग अस्तित्व में आया और पूँजीवाद औद्योगिक सभ्यता के साथ विस्तृत होता चला गया। संसार के समस्त देशों में ये तीनों वर्ग पाए जाते हैं। चाहे उनका स्वरूप परिस्थितियों के अनुसार भिन्न भले ही हों। उच्च वर्ग या तो स्वयं शासक वर्ग है या अप्रत्यक्ष रूप से शासन पर उसका गहरा प्रभाव है।

मध्यवर्ग का संघर्ष

इस संघर्ष में मध्यवर्गीय व्यक्ति मज़दूरों के साथ मिलकर अपनी मध्यवर्गीय हस्ती को बनाए रखने के लिए पूँजीपति वर्ग से लोहा लेते हैं। यह मध्यवर्ग की अजीब स्थिति है कि विचारक या बुद्धिजीवि पूँजीपति वर्ग का अंग होकर भी यह उसी के विरुद्ध वर्ग संघर्ष में भाग लेता है। जहाँ यह वर्ग उच्च तथा निम्न वर्ग के साथ मिलता है, वहाँ इसकी भी अपनी कुछ विशेषताएँ हैं, जिनके कारण यह वर्ग दोनों वर्गों से अलग है।

मध्यवर्ग की अवधारणा

वर्तमान संख्या की व्यापकता, विशालता और सक्रियता की दृष्टि से मध्यवर्ग समाज का प्रमुख वर्ग है। यह वर्ग पूँजी और श्रम के दो विरोधी तत्वों के बीच सुरक्षित दीवार की तरह स्थित है। समाज में मध्यवर्ग के व्यापक प्रभाव को देखते हुए इसे परिभाषा की निश्चित सीमा में बाँधना कठिन है क्योंकि मध्यमवर्ग की प्रवृत्तियाँ शहर से शहर, समुदाय से समुदाय और परिवार से परिवार तक में अलग-अलग होती हैं, जिससे इस वर्ग की कोई निश्चित परिभाषा देने की समस्या कठिन हो जाती है।

मध्यवर्ग का उदय

मध्यवर्ग का उद्‌भव औद्योगिक क्रान्ति और पूँजीवादी व्यवस्था के जन्म के साथ जुड़ा हुआ है। इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति 1760-1830 में हुई। कुछ खास बिन्दु नीचे उद्धृत हैं।

क) यूरोप में मध्यवर्ग का उदय 17वीं शताब्दी में व्यावसायिक उन्नति और उपनिवेशों से अतिशय धन-संचय के कारण हुआ।

ख) अतुल शक्ति के बल पर माल उत्पादन करके संसार के बाज़ारों पर अपना अधिकार जमाया।

ग) मध्यवर्ग के अस्तित्व स्थापन से सामंती शक्ति का ध्वंस होने लगा।

घ) स्वेच्छाचारी राजा, सामंतों के वंशगत अधिकार छिन्न कर मध्यवर्ग के पास आ गए।

ङ) पूँजीवादी लोकतंत्र की प्रतिष्ठा हुई।

च) पूँजीवाद का जन्म और मध्यवर्ग का उदय हुआ।

छ) भारत में मध्यवर्ग के विकास में अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों का सहयोग तथा प्रभाव रहा।

ज) भारतीय मध्यवर्ग का जन्म इंग्लैण्ड के साम्राज्य तथा तीन-चार शताब्दियों तक उससे गहरे संपर्क का परिणाम है। मध्यवर्ग का स्वरूप देश-काल और सीमा के अनुरूप विभिन्न देशों में अलग-अलग है।

झ) भारत में वर्गों का उदय आदिम साम्यवाद या वर्गविहीन समाज से हुआ। ऐतिहासिक युगों में यह वर्ग संघर्ष-ब्राह्मण-क्षत्रियों में, ब्राह्मण-बौद्धों में, अभिजातकुलीय और निम्नवर्गियों के विभिन्न रूपों में विद्यमान रहा है। बाद में समाज वर्गों के स्थान पर विभिन्न जातियों तथा उपजातियों में बँट गया।

अँग्रेज़ों के आने से पहले भारतीय समाज राजा-महाराजाओं, ज़मींनदारों, नवशिक्षितों और व्यवसायियों तथा किसानों, मज़दूरों, कारीगरों

आदि में बँटा था। 16 वीं सदी में अंग्रेज़ों, फ्रांसीसियों और डचों के सम्पर्क से देश का समाज नई सभ्यता और संस्कृति से जुड़ा। शासन का पतन हुआ और सब अंग्रेज़ों के अधीन आ गया। पहले इनका उद्देश्य केवल व्यवसाय था पर बाद में अनुकूल परिस्थितियों के कारण शासन करने लगे। शताब्दियों से भारत में व्यक्ति को, जाति, परिवार तथा समाज के अधीन रखा था। कृषि व्यवस्था तथा घरेलू उद्योगों पर आधारित ग्रामीण व्यवस्था अपने आप में एक पूर्ण इकाई थी। व्यापार-नीति ने गाँव को भी अपनी चपेट में ले लिया। अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद की छाया में पूँजीवाद का विकास हुआ। इसी के साथ 'मध्यवर्ग' पैदा हुआ। डॉ. त्रिभुवन सिंह जी भारत में मध्यवर्ग के उद्‌भव और विकास का कारण अंग्रेज़ी साम्राज्य को मानते हैं। हिन्दू जाति की नवजात चेतना के मूल में अन्य दो कारण वैज्ञानिक साधना तथा नवशिक्षा था।

भारत ब्रिटेन का उपनिवेश था, अतः दोनों महायुद्ध, विश्व की प्रमुख घटनाओं ने नव-शिक्षित मध्यवर्ग की चेतना को प्रबुद्ध कर दिया था। यह सब प्रभाव भारतीय मध्यवर्ग की स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भागीदारी का कारण बनी। स्वतंत्रता आन्दोलन के नेतृत्व का श्रेय इसी मध्यवर्ग को है। गाँधीजी भी मोतीलाल नेहरु, जवाहरलाल नेहरु, बल्लभाई पटेल तथा जिन्ना की तरह मध्यवर्ग के थे। ब्रिटिश शासन की नौकरशाही में भी मध्यवर्ग

की ही प्रमुखता थी। भारतीय समाज में मध्यवर्ग का उदय मुगल शासन के अंतिम काल तथा कम्पनी शासन के अन्तर्गत हुआ। 1833 के बाद स्वव्यापार एकाधिकार उन्मूलन का महत्त्व बढ़ा। मध्यवर्ग का अपना प्रभाव 1892 से पहले से देखा जा सकता है। इस वर्ग की चेतना का जन्म राजनीतिक और आर्थिक जागृति के रूप में हुआ।

हिन्दी कथा-साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ

हिंदी कथा-साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ को साहित्यकारों ने महत्त्वपूर्ण स्थान देते हुए अपने लेखन का विषय बनाया है। प्रेमचंद पूर्व कथा-साहित्य में यद्यपि तिलस्म, जासूसी, ऐय्यारी और रोमांसादि विषय थे पर मध्यवर्ग के वजूद से दूर नहीं हो पाएँ हैं। लिहाज़ा प्रेमचंद पूर्व के कथा-साहित्य में मध्यवर्गीय की विविध समस्याओं का चित्रण बख़ूबी प्राप्त है। प्रेमचंदकालीन कथा-साहित्य में मध्यम वर्ग की समस्याओं का विवेचन व्यापक धरातल पर था। इस युग के अधिकांश साहित्यकारों ने मध्यवर्गीय समस्याओं को विस्तृत परिप्रेक्ष्य में देखा। इस युग में मध्यवर्गीय जीवन का विस्तृत विवेचन हुआ है। 8 अक्टूबर 1936 ई. में प्रेमचंद जी का यशःशेष होने के पश्चात हिन्दी कथा-साहित्य की यात्रा का दूसरा पड़ाव आया। यह वह समय है जब गाँधीजी के नेतृत्व में स्वतंत्रता-आंदोलन पूरे उफ़ान पर था। आज़ादी की ललकार और चेतना-प्रसार का दोनों काम साहित्यकार

बड़ी शिद्दत से कर रहे थे। बाद में रफ्ता-रफ्ता कथाकार चरित्रों की मनोवैज्ञानिक नब्ज़ पकड़ने लगे। मध्यवर्ग के व्यक्ति का मनोविश्लेषण उसके भीतर तक झाँक कर किया गया। इसी समय भारत छोड़ो आन्दोलन, द्वितीय विश्वयुद्ध, मुल्क़ की आज़ादी, विभाजन की विकराल घटना, सांप्रदायिक दंगे, गणतंत्र की स्थापना आदि घटी। यह सब मध्यवर्ग से जुड़ा है और साहित्यकारों ने इस तमाम पहलुओं को कथा-साहित्य का महत्त्वपूर्ण विषय चुना।

मृदुला गर्ग आठवें दशक की लेखिका हैं। उन्होंने भी अपने कथा-साहित्य में भिन्न कथनी तथा भाषागत ज्ञान के ज़रिए मध्यवर्ग के स्वरूप को निरूपित करने का प्रयास करने के साथ-साथ उनकी समस्याओं और उनका यथार्थ प्रस्तुत करने का कार्य भी किया है।

मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ

जिस तरह जीवन अंतर्विरोधी होता है उसी तरह वर्ग भी। मध्यवर्गीय आचरण इन अंतर्विरोधों का हामी है। मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में ख़ुद को खास एवं अलग समझते, ख़ुद से अलग दुनिया को न परखने वाले या फिर न परख सकने वाले, हर प्रतिक्रिया के क्षणों में प्रतिक्रियाविहीन रहकर ख़ुद को छिपाते, ख़ुद को आधुनिकतावादी कहते, ढोंग रचते, दमित प्रगतिशीलता के स्वरों को बुलंद करते तथा संघर्ष करते, रूढ़ीगत विचारों को असुरक्षित माहौल से बचाने के लिए स्वीकारते

मध्यवर्गीय पात्र ख़ूब नज़र आते हैं। उनके कथासाहित्य में मध्यवर्ग तथा उसके यथार्थ का चित्रण भिन्न पड़ावों के अनुपात में चित्रित हुआ है। मध्यवर्ग का यह यथार्थ समकालीन समस्याओं का केन्द्र है। कारण है कि मध्यवर्ग भिन्न संस्कृतियों के अंतर्विरोधों से युक्त है।

कथा-साहित्य का यथार्थ 'भोगा हुआ यथार्थ' है। मध्यवर्ग के सभी पहलुओं - आशा-आकांक्षा, निराशा, बेरोज़गारी, परस्पर-संबंध, कुंठाएं, पीड़ा, घुटन, अनास्था, संत्रास व ऊब इत्यादि का चित्रण कथा-साहित्य करता है। इन सबके मूल में आर्थिक विपन्नता व अभावग्रस्तता है। भूख, गरीबी, अभाव निम्नवर्ग में भी है लेकिन मध्यवर्ग के सम्मुख एक विवशता अपनी सफेदपोशी कायम रखने की भी है। मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण साहित्यकारों ने अपने कथा-साहित्य में किया है। इसका कारण यह है कि अधिकांश नए साहित्यकार मध्यवर्ग से संबंधित हैं। अतः इस जीवन को उन्होंने पूरी तरह जाना-पहचाना और भोगा है। मध्यवर्ग समाज के प्रमुख वर्ग के रूप में निरन्तर विकसित होता रहा है। आज भी यह समाज का प्रमुख वर्ग है। मृदुला गर्ग भी मध्यवर्ग से ताल्लुक़ रखती हैं।

अणु परिवार

संयुक्त परिवार प्रथा प्रारंभ से ही भारत में समाज-व्यवस्था का आधार रही है। पाश्चात्य शिक्षा एवं आर्थिक संघर्ष के कारण इस प्रथा का

टूटना प्रारंभ हो गया था। वैयक्तिक अभिरुचियों तथा उनको पूरा करने की मनशा ने संयुक्त परिवार के विघटन में सहयोग दिया। संयुक्त परिवार प्रथा का सबसे बड़ा लाभ वृद्ध तथा असहाय व्यक्तियों को था। लेकिन इसके विघटन के बाद इस सुरक्षा का अभाव पुरानी पीढ़ी को खटकने लगा। आर्थिक अभावों के कारण पुत्रों ने वृद्ध माता-पिता को घर में उस तरह का आश्रय नहीं दिया, जैसी उनको आकांक्षा थी। घर अणु परिवार में विभाजित होने लगा। इसका मुख्य कारण प्राइवेसी की कमी तथा आर्थिक समस्या रही। मृदुला गर्ग की अधिकांश कहानियों के पात्र अणु-परिवार से ताल्लुक़ रखते हैं। *कितनी कैदें, जिजीविषा, वितृष्णा, हरी बिंदी, मेरा, गुलाब के बगीचे तक, लौटना और लौटना, अलग-अलग कमरे, बीच का मौसम, यह मैं हूँ, मौत में मदद, बर्फ बनी बारिश* आदि कहानियाँ इसके अंतर्गत आते हैं। उनके उपन्यास के पात्र भी अणु परिवार के ही हैं। *मैं और मैं, कठगुलाब, उसके हिस्से की धूप, अनित्य, वंशज* आदि सभी उपन्यासों में परिवार के सदस्यों की संख्या में काफी कम है। *'कितनी कैदें'* में मनोज और मीना, *'जिजीविषा'* में आदित्य भंडारी और उसकी पत्नी, *'हरी बिंदी'* में नायिका और पति राकेश, 'मेरा' में मीना और मनोज, *'गुलाब के बगीचे तक'* में पत्नी और दो बच्चे बेटी (बिट्‌टो) और बेटा आदि इसके दृष्टान्त हैं।

मृदुला गर्ग के पात्रों द्वारा यह सिद्ध होता है कि मध्यवर्ग संयुक्त परिवार की बजाय 'अणु परिवार' में यक़ीन रखता है। क्योंकि संयुक्त

परिवार में उन्हें अपना निजी कोना नहीं मिलता जिसे वे चाहते हैं। संयुक्त परिवार व्यवस्था में नारी को सबसे अधिक शोषण का शिकार होना पड़ता है। अशिक्षित नारी तो संयुक्त परिवार के शोषण से समझौता कर लेती है परंतु शिक्षित नारी ने इन सबके प्रति विद्रोह करके इस प्रथा को तोड़ने का प्रयास किया है। *'बाहरी जन'* की नंदिनी को यह कतई गवारा नहीं कि माँ बनने के उसके फैसले पर कोई हस्तक्षेप करे। उसका ससुर राजेश्वर उसे डॉक्टर को दिखाने की सलाह देता है। मगर वह गोद लेना चाहती है। यह ज़रूरी नहीं कि उसका खुद का बच्चा न होने तक डॉक्टरी इलाज करवाते रहे। बहू नंदिनी को ससुर राजेश्वर बच्चे के लिए डॉक्टर को दिखाकर ऑपरेशन की हिदायत देता है तो बहू नंदिनी मन में कहती है - "आपको मतलब ! यह मेरा निजी मामला है। बच्चा चाहती हूँ या नहीं, मेरा निर्णय है। हो सकता है या नहीं मेरा भाग्य है। हो सकने के लिए कुछ करना, न करना, मेरी समस्या है। आपको क्या अधिकार है मुझसे जिरह करने का। .....अपनी चाहत को मुझ पर थोप कर मेरे जेलर बनने का अधिकार आपको नहीं है।"[1]

यहाँ मृदुला गर्ग व्यक्त करती हैं कि पढ़ी-लिखी स्त्री अपने व्यक्तित्व को ध्वस्त होता देखती है तो उसके मन में अलग परिवार की चाहत पैदा हो जाती है। इसी तरह माता-पिता और आर्थिक रूप से

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - बर्फ बनी बारिश - पृ. 514, 515

आत्मनिर्भर न होने वाली सन्तानों के बीच खाई बढ़ जाती है। ऐसी अवस्था में भी अणु परिवार की माँग बढ़ती है। अक्सर महानगरों में ऐसा देखा जाता है। मृदुला जी की *'उर्फ सैम'* भी इसी बात को व्यक्त करता है। सावन प्रताप सिंह उर्फ सैम जब तक देश में बिना काम-धाम के पड़ा था उसे कोई पूछता नहीं था। परंतु उसकी कमाई आते ही उसमें और उसके बड़े भाई में भेद किया जाता है। पुराने ज़माने में हमारे दादा-परदादा एकजुट होकर एक घर के भीतर कई रिश्ते संजोते थे। पर आज परिवार कटता जा रहा है। परिवार माँ-बाप और बच्चों में सीमित है। जहाँ रिश्ते जिए जाते थे आज केवल यंत्र है। इसी यांत्रिक जीवन पर मृदुला जी ने ग़ौर फरमाया है। पहले छोटी-छोटी ज़रूरतों के लिए सब मिलकर हल सोचते थे। बातचीत में वक़्त कैसे गुज़रता था पता ही नहीं चलता था। रिश्ते-नातों की काफी अहमियत थी। एक ही छत के नीचे कई रिश्ते पनपते थे। पर आज रिश्ते और बातचीत एक 'इडियट बॉक्स' के सामने खत्म हो जाते हैं। अलग-अलग रहकर रिश्तों में दूरियाँ पैदा हो जाती हैं। सावनप्रताप भारत की चंद अच्छाइयों में से एक - 'संयुक्त परिवार' को गिरते नहीं देख सकता। आर्थिक तंगी माता-पिता को संयुक्त परिवार के खिलाफ ज़रूर खड़ा करती है। यह बात बाप-बेटे के संवाद से पता चलता है – "“अब बेटा, संयुक्त परिवार का चलन आजकल उतना रहा नहीं, तुम तो जानते हो।" "यही तो ग़लती कर रहे हैं आप लोग। हिंदुस्तान में जो अच्छी बातें हैं, उन्हें मिटने

दे रहे हैं। पता है आपको, अमेरिकी समाजशास्त्री कहते हैं; बच्चों की परवरिश के लिए संयुक्त परिवार उत्तम है।""[1]

आर्थिक प्रतियोगिता भी 'अणु परिवार' का रास्ता खोल देती है। मृदुला गर्ग की *'बाकी दावत'* में इस बात का खुलासा किया गया है। निम्न मध्यवर्ग, उच्च मध्यवर्ग के तौर तरीकों से काफी प्रभावित होता है। और उन जैसा ही बनना चाहता है। यही कारण है कि बीबी बाई के घर की चकाचौंध के कारण ड्राइवर मणिराम के बच्चे दीपक और ललिता भी उन्हीं की दौड़ में शामिल होना चाहते हैं। यहाँ वे भी प्राइवेसी और अलग अणु परिवार में रहते हैं।

संयुक्त परिवार में विघटन का एक और मुख्य कारण पुरानी एवं नई पीढ़ी की वैचारिकता में अन्तर है। पीढ़ियों का यह संघर्ष केवल व्यक्तियों का संघर्ष नहीं। मान्यताओं और मूल्यों का संघर्ष भी है। यही पीढ़ियों का संघर्ष *'उसकी कराह', 'लौटना और लौटना' 'अलग-अलग कमरे', 'वंशज'* (उपन्यास) में दिखाई देता है। *उसकी कराह* में सुधा बीमार है और बिस्तर पकड़ चुकी है। यदि सुमीत फैक्टरी की तरफ ध्यान नहीं देगा तो पैसा डूब जाएगा। इसी वजह से मेरठ से माँ आती है। परंतु माँ बुआ की ननद से बेटे को जोड़कर देखती है। यहाँ तक की सुधा का बेटा

1. मृदुला गर्ग - जूते का जोड़ गोभी का तोड़ - उर्फ सैम - पृ. 179

भी सोचता है “बीमार वह भी होता है, जब-तब, पर कुछ दिन बिस्तर पर रह कर चलने-फिरने लगता है। माँ जाने कब से खाट पर पड़ी है। बीच बीच में दो-चार दिन चलते-फिरते खुश भी नज़र आती है। फिर खाट पकड़ लेती हैं और पिता जी से चिड़चिड़ाना शुरु कर देती हैं। लगता है, उन्हें बिस्तर पर पड़े रहने की आदत हो गयी है, वैसे ही जैसे चीखने-चिल्लाने की।”[1]

उपर्युक्त उद्धरण से पता चलता है कि, मध्यवर्ग के पास बिल्कुल समय नहीं है। वे दौड़ रहे हैं। उन्हें बीमार लोग खटकते हैं। संयुक्त परिवार में तो बड़े-बूढ़े होते ही हैं। वे बीमार से कम नहीं होते। यह भी एक वजह है संयुक्त परिवार के विघटन की और अणु परिवार के उदय की। साथ में सुमीत के पुनर्विवाह की बात माँ द्वारा छेड़ना साबित करता है कि कहीं न कहीं पुरानी पीढ़ी भी दाम्पत्य-विघटन का कारण बनती है जिससे अणु परिवार की माँग औरत करने लगी।

‘अलग-अलग कमरे’ में आधुनिक पीढ़ी ‘स्व’ की भावना में अंतर्लीन दिखाई पड़ती है। कहानी में सुरेन्द्र, उषा एवं आशा का अलग-अलग कमरों में रहना उनकी अलग-अलग ज़िन्दगियों का दायरा बन जाता है। इन्हीं दायरों में उनका अस्तित्व सीमित हो जाता है। यहाँ वे पिता नरेन्द्र

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - उसकी कराह - पृ. 15

देव से दूर रहते हैं। उषा उन्हीं के पाले हुए बेटे के साथ पिता की इजाज़त के बगैर भाग जाती है। इससे मध्यवर्गीय परिवार में पनप रही व्यक्तिवादी प्रवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है। वहीं डॉ. सुरेन्द्र देव का अपने बूढ़े फालिज़ से त्रस्त डॉक्टर पिता से कहा गया निम्नलिखित कथन साबित करता है कि उन्हें घर अणु से भी अणु परिवार के रूप में चाहिए। सुरेन्द्र अपने पिता से कहता है - "“बुढ़ापे में फालिज़ होना आम बात है।” उसने लापरवाही से कहा, “फीस लेकर आ जायेंगे तो चला जाऊँगा।”"[1] यहाँ मध्यवर्ग के सोच के दायरों का कम होते जाना भी प्रस्तुत है। प्रत्येक मध्यवर्गीय परिवार में होने वाली यह आम घटना है कि सन्तानों की महत्वाकांक्षा के कारण परिवार का पुराना ढाँचा टूट रहा है। माता-पिता और संतान के बीच हर घर में यह खाई बनती जा रही है। एक कारण अपनी मान-मर्यादा का भी होता है। मध्यवर्ग भीतर से चाहे जितने भी खोखले और दुःखी हो पर इसकी ज़रा भी भनक बाहर किसी को पड़ने नहीं देता।

आँकड़े बताते हैं कि सौ में से अस्सी जोड़ों के असफल रहने का कारण परिवारों का संयुक्त होना है। नए घर में आकर नई ब्याही लड़कियों को अपने व्यक्तित्व को नए सिरे से ढालने की कठिनाई से दो-चार होना पड़ता है। जब वे इस प्रयत्न में असफल रहती हैं तो उन्हें प्रतिपल

---

1. मृदुला गर्ग - हरी बिंदी - अलग-अलग कमरे - पृ. 134

सास-ननदी के ताने सुनने पड़ते हैं। इसीलिए लड़की के माता-पिता विवाह के लिए ऐसे वरों की खोज करते हैं जो पारिवारिक दबाव से अलग रह सकें। मध्यवर्गीय शिक्षित लड़कियों की इस मनोवृत्ति को समझकर अनेक दकियानूसी विचारों वाले अभिभावक अपने संरक्षकों के लिए उन्हें पसंद नहीं करते।

मध्यवर्गीय समाज में अधिकांशतः अपने पिता द्वारा उन पर अपने विचारों को जबरदस्ती लादने की परंपरा है। इससे पिता-पुत्र में संघर्ष होता है और संतान अलग रहना पसंद करती है। *'वंशज'* उपन्यास में भी शुक्ला साहब की थोपी गई मान्यताओं, तालीम और नौकरी को ठोकर मारकर बेटा सुधीर धनबाद और रानीगंज के कोयला खान में माइनिंग इंजीनियर का काम करने चला जाता है। वह चाहता है कि वह वहीं अपना घर बसा ले।

मृदुला जी के उपन्यास के सभी पात्र अणु परिवार में जीते हैं। *'उसके हिस्से की धूप'* में मनीषा और जितेन या फिर मनीषा और मधुकर। *'वंशज'* में सुधीर सविता और जज शुक्लासाहब। वहाँ भी सुधीर अलग रहना चाहता है। इसकी वजह घरवालों के बीच के मतभेद और नई एवं पुरानी पीढ़ी के विचारों के बीच की खाई है। सुधीर के उसूल, जज शुक्ला साहब के उसूलों से टकराते हैं। पिता-पुत्र का संघर्ष सुधीर को अलग रहने

पर मजबूर करता है। *'मैं और मैं'* में माधवी, राकेश और उनके बच्चे, *'चित्तकोबरा'* में महेश, मनु और दो बच्चे, *'अनित्य'* में अविजित श्यामा और तीन बच्चे, *'कठगुलाब'* में दर्जिन बीबी के यहाँ असीम, असीमा, और दर्जिन बीबी आदि अलग रहने के लिए विवश हो गए। परंतु *'मिलजुल मन'* में पाँच बच्चे और माता-पिता का ज़िक्र कर पुनः संयुक्त परिवार के प्रति अपना मोह मृदुला जी प्रकट करती हैं। कभी-कभी यह संयुक्त परिवार आज की माँग सी प्रतीत होता है। यह मृदुला गर्ग के परिवार की ही कथा है।

वृद्धावस्था

मध्यवर्ग में माता-पिता अपनी संतान के बारे में पहले से ही कुछ धारणाएँ बनाकर रखते हैं। उन्हें अपने अनुसार चलाने का प्रयास भी करते हैं। संतान अपनी रूचियों और उनकी धारणाओं में कोई संगति न पाकर अपने अभिभावकों का विरोध करती हैं। ऐसी ही कुछ धारणाएँ *'लौटना ही लौटना'* के अभिभावकों ने हरीश से लगाई थी। हरीश अमरीका जा बसा था। अब लौटा है। वह शादी करने आया है। माता-पिता को उम्मीद है कि वह शादी करके वहीं रहेगा। पुराना मकान पक्का बनवाकर वे वहाँ रह सकेंगे। हरीश मकान की मरम्मत तो करता है परंतु मकान किराये पर देकर उसका पैसा अपने खाते में जमा करने का बंदोबस्त करके चला जाता है। यहाँ दिखाया गया है कि अपने बेटे के साथ रहने की

ख्वाइशों के कारण बेटे की हर माँग पूरा करने वाले माँ-बाप वृद्धावस्था में बस मेहमान बन कर रह जाते हैं।

हरीश अपनी सुरक्षा के लिए मकान बनवाने की बात करता है। ताकि प्रोपर्टी हो जाएँ। माँ-बाप के लिए छत नहीं बनवाता। अपनी पसंद की लड़की से शादी कर वह अमरीका चला जाता है। मृदुला जी कहना चाहती हैं कि विदेशों की बावत भारतीय अपनी संस्कृति को भूलकर तेज़ी एवं रफ़्तार की ज़िन्दगी में गुम होते जा रहे हैं। जहाँ हमारा देश, हमारी संस्कृति, हमारे माँ-बाप एक बिंदु से नज़र आ रहे हैं जो केवल बुढ़ापे का मापदंड बन कर रह गए हैं। "यथा समय हरीश का मनचाहा विवाह हो गया, दक्षिण - यात्रा संपन्न हुई और मकान बन कर तैयार हो गया। पर बाबूजी का अपने मकान में रहने का स्वप्न पूरा न हो सका। जाते समय हरीश मकान किराये पर चढ़ा गया और किराये के रुपये अपने नाम से बैंक में जमा कराने का बंदोबस्त कर गया।"[1]

मृदुला गर्ग की *'छत पर दस्तक'*, *'बाँसफल'*, *'उधार की हवा'*, *'चौथा प्राणी'*, *'साठ साल की औरत'*, *'बर्फ बनी बारिश'*, *'मंज़ूर - नामंज़ूर'*, *'बंजर'*, *'उल्टी धारा'*, *'उर्फ सैम'* आदि कहानियों में वृद्धावस्था के कई पहलुओं को मध्यवर्ग के यथार्थ के साथ जोड़ कर देखा गया है।

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - लौटना और लौटना - पृ. 27

मध्यवर्गीय समाज में वृद्ध जन परिवार की घुटन से भागते हैं। समस्त मध्यवर्गीय परिवार में बच्चों की खुशी के खातिर बरसों पुराना ढाँचा टूटता नज़र आ रहा है। मृदुला जी की *'छत पर दस्तक'* यद्यपि अमरीकन रीति को व्यक्त करता है किन्तु उसके पीछे एक ठोस उदाहरण भारतीय मध्यवर्ग भी है। इस मध्यवर्ग के बड़े-बूढ़े बुढ़ापे से डरते हैं। प्रस्तुत कहानी में रॉबर्ट जैसे वृद्ध व्यक्ति का अकेले फ्लैट में रहना आम बात नहीं है। उसका सुधीर की माँ नलिनी से ध्वनिमूलक वार्तालाप (डंडे को ठोक कर) साफ ज़ाहिर करता है कि वह एक साथी चाहता है जो उससे बात करें। वृद्धाश्रम का बढ़ना यही ज़ाहिर करना है कि अब बूढ़ों को संतान घर में रखना नहीं चाहती। कहानी में रॉबर्ट को पागल कहना इसी बात का सबूत है। "सॉरी। पर है वह पागल। सठियाया बूढ़ा। ओल्ड होम में जाने को तैयार नहीं है। अकेले घर में बंद रहता है और रात-रात भर चलता है। हमारे पास शिकायतें आती रहती थीं। पहले 204 में एक अमेरिकन रहते थे, उन्होंने इसे निकलवाने का नोटिस दिलवा दिया था। फिर वे चले गये और कोई हिंदुस्तानी आ गया। शिकायत आनी बंद हो गयी। पर आप....?" "मैं 204 की माँ हूँ", वह हंस पड़ी, "बूढ़ों के घर जाने को मैं भी तैयार नहीं, पर मैं पागल नहीं हूँ और न राबर्ट हैं।"[1]

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - छत पर दस्तक - पृ. 607

आदमी नागरिकता कहीं भी कैसे भी हासिल कर सकता है। इंसान को दुबारा जन्म लेने में वक़्त नहीं लगता। इंसान के भीतर और बाहर कई चीज़े ऐसी हैं जो मरती भी हैं। हिन्दुस्तानी माँ-बाप के अमरीकन बच्चे कहलाए जा सकते हैं। पल-भर में माँ-बाप का स्थान देश ग्रहण कर लेता है और तौर-तरीक़े सीखते-सीखते सदियाँ गुज़र जाती हैं। परंतु ज़ायका वहीं का रहता है। पाश्चात्य संस्कृति से विस्मित नलिनी कहती है - "इस देश में भरा-पूरा जवान आदमी, मिनट भर में हिंदुस्तानी से अमेरिकन बन जाता था। माँ-बाप की नागरिकता, सदियों की विरासत खून और नस्ल, सब धरे रह जाते हैं और आदमी बिना गर्भ में आये, बिना मदद या परवरिश नया जन्म ले लेता है। शरीर का चोला तक नहीं उतारता, ज़िंदा का ज़िंदा...."[1]

अमरीकी रॉबर्ट के माध्यम से लेखिका कहती हैं कि हिन्दुस्तान में खासकर मध्यवर्ग में यह रीति बढ़ती जा रही है। इसी बात की ओर इशारा करती एक और कहानी है - *'बांसफल'*। यद्यपि यहाँ बात वृद्धाश्रम तक नहीं पहुँचती किंतु फिर भी उसकी कगार तक ज़रूर आ खड़ी होती है। बुढ़ापा बचपने की फिर से शुरुआत होता है। तभी तो वे हमउम्र के नाम पर बच्चों को साथी बनाते हैं। यह कहानी दादी और पोते अजय के आपसी

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - छत पर दस्तक - पृ. 590, 591

रिश्ते को बयान करता है। अक्सर देखा गया है कि मध्यवर्गीय एकांतता में व्यक्ति वृद्ध जनों का बचपना बर्दाश्त नहीं कर पाता। नौजवान खुद अनुशासन में जीते हैं और बच्चों को भी उसी अनुशासन में पालते हैं। यह अनुशासन मध्यवर्ग का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। सटीक रूप से कहें तो उनका रुत्बा है। अजय की माँ को अजय का उसके दोस्तों के सामने अनुशासनहीन व्यवहार पसंद नहीं आता। उसे लगता है कि यदि दादी उनके साथ न होती तो अजय इतना बदतमीज़ न होता। दादी-पोते का रिश्ता तो सदियों का है। अजय उन्हें चिढ़ाता, वे चिढ़तीं फिर उसे मनाने चली जातीं। पोते से अपमानित होकर भी वे सही नहीं। पोते का दादी पर बिगड़ना देखिए -

"दूँ दाल? कह कर दाल से भरी कटोरी उसकी थाल में टिका दी।

झन्न की आवाज़ के साथ कटोरी फ़र्श पर जा गिरी।

""रोज़ रोज़ क्यों पकाती हो घिया - चने की दाल। अक़्ल का इस्तेमाल नहीं कर सकतीं," वह चीखा, फिर खिलखिला कर हंस दिया। विजय दर्प से भरी हंसी।

उनका चेहरा अपमान से लाल पड़ गया, पर सिर झुका कर वे एक खिसियाती हंसी हंस दी।"[1]

---

1. मृदुला गर्ग - संगति विसंगति - बाँसफल - पृ. 428

उपर्युक्त संदर्भ खाने की मेज़ पर बहू की दोस्त (घर के मेहमान) के सामने होता है। ऐसा करना मध्यवर्ग में अनुशासनविहीन समझा जाता है। वृद्धों की हरकतों में बचकानापन होता ही है। वे दुनियादारी नहीं समझते और ना ही उन्हें स्थल-काल का बोध होता है। यही वजह थी कि दादी अजय के साथ बार-बार लड़ती-झगड़ती है, पूरे घर में भागती दौड़ती रहती है। मध्यवर्गीय जवानों की मानसिकता, वृद्धों से काफी अलग होती है। माँ-बाप का अनुशासन जैसे बड़ों की इज़्ज़त, अच्छे लफ्फाज़ शब्दों का इस्तेमाल, बदतमीज़ी से दूर रहना आदि वृद्धों और बच्चों के रिश्ते से या उनकी हर वक़्त की तरफदारी से बेअसर हो जाता है। दादा-दादी की शय उन्हें और बिगाड़ देती है। यही कारण है कि मध्यवर्गी वृद्धों के साथ रहने से हिचकिचाते हैं। वृद्ध जनों को कुछ सुनाई नहीं देता तो भी हर बात जाननी बहुत ज़रूरी होती है। न बताओ तो न बताने का इल्ज़ाम और बताओ तो गलत सुनने से मन में मैल भर जाता है। कुछ बातें जो घर तक सीमित रखने वाली होती हैं उन्हें पता चलते ही वक्त से पहले आस पड़ोस तक पहुँचा आते हैं। इस कहानी में अजय, दादी की राय के कारण बदतमीज़ हो गया है। वह बात-बात पर चिढ़ता और बदतमीज़ी करता है। बहू की सहेली को उस पर दया आती है, "मेरी सहेली ने ठीक कहा था। वे वहाँ न रह रही होतीं, तो अजय इतना मुंहफट न होता। अपनी माँ के गांभीर्य के नीचे पब्लिक स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों की तरह ऊपरी तौर पर

अनुशासित रहता। अनुशासित या धुन्ना, जो कहो। ज़ेहनी तौर पर मेरी सहानुभूति सहेली के साथ थी।"[1]

किसी मेहमान के सामने किसी भी तरह का खुद पर मज़ाक मध्यवर्गी बर्दाश्त नहीं कर पाता। दादी का बहू को खाते वक़्त मज़ाक उड़ाना मध्यवर्गी बहू को अच्छा नहीं लगता। यह एक आम बात है। ""बहू को तो.... हमारी पसंद नहीं," वे, हंसी, "क्यों बहू, तुम्हारी सहेली भी तुम्हारी तरह चुग्गा चुगती है? हमारी बहू तो एकदम चिड़िया की तरह दाना चुगा करती है। थाली देखो, तो भरी की भरी तमाम। हमारी समझ में तो आता नहीं, बिना खाये आदमी कैसे चलता-फिरता है। खिलौना हो तो अलबत्ता..... चाबी भर दो और चल पड़े ठुमुक ठुमुक.... क्यों भई, ठीक कहा हमने?""[2]

मध्यवर्ग हर समाज के हर खेमे में मौजूद है। *'उधार की हवा'* में क्लर्क के रूप में उपस्थित होते हैं। पूरे पैंतीस बरस काम करके प्रोविडेंट फंड के पैसे से बाऊजी किंग्सवे कैंप से दो मील दूर एक बंजर ज़मीन खरीद कर खेती करना चाहते हैं। शहर में ग्रेजुएट हुए तो भी उनका बचपन खेतों में बीता। उनकी इच्छा वापस गाँव जाने की है। उन्होंने राधेश्याम के

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - बाँसफल - पृ. 427
2. वही - पृ. 427

साथ मिलकर ग्रेट्युएटी के पाँच लाख रुपये से ज़मीन खरीदकर वहाँ ट्यूबवेल, ट्रेक्टर जतन-जुगाड़ सब कर लिया। मनीशा और गिरीश उनके दो मध्यवर्गीय बेटे हर मध्यवर्गी बच्चों की तरह उनकी तबियत की चिंता करते हैं। उनके हर फैसलों पर रोक लगाते हैं। वे चाहते हैं कि बाऊजी भी अपने हमउम्र के समान सैट-सपाटा करें, पोते-पोतियों के साथ खेलें। वृद्ध जन कभी खुद को किसी से कम दिखलाना या आश्रित समझना पसंद नहीं करते। वे भी गाड़ी की जगह बस में यात्रा करते हैं। औरतों को खड़ा देख सीट दे देते हैं। औरतों का उन्हें देखकर उठना उन्हें अच्छा नहीं लगता। वे खुद को अब भी जवान मानते हैं और किसी का व्यंग्य बर्दाश्त नहीं करते। यही कारण है कि बाऊजी एक स्त्री के उठने पर भी महिलाओं वाली सीट पर नहीं बैठते। "तभी स्टॉप पर बस रुकी और लापरवाही की हालत में वे आगे को झूल गये। महिलाओं वाली सीट से एक महिला उतरने के लिए उठी, तो उनसे बोली, "आप बैठ जाइए।""

"नहीं-नहीं," वे फ़ौरन तन गए और पास खड़ी जवान लड़की को बैठने का इशारा किया, "महिलाओं की सीट है," उन्होंने कहा।"[1]

वृद्ध-जन हमेशा अपनेपन की माँग करते हैं। वे हमेशा स्वतंत्र रहना चाहते हैं। बच्चों के इशारों पर चलना उन्हें पसंद नहीं। खासकर

---

1. मृदुला गर्ग - दस प्रतिनिधि कहानियाँ - पृ. 58

मध्यवर्गीय बुज़ुर्ग अपने रिटायरमेंट के बाद किसी पर भी आश्रित रहना खुद की तौहीन समझते हैं। उन्हें राहत हमेशा खुली हवा में मिलती है। उधार में मिली खुली हवा भी काफी सुकून देती है। जिसे शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता। महेश और बाऊजी का बचपन को लेकर हुए कथन इस बात को सिद्ध करता है - "बाऊजी के होठों की मुस्कुराहट दिलकश हो गयी.... होता तो है मनीश! उस हिसाब से तुम्हारा दूसरा बचपन आ गया। जल्दी पोते-पोतियों से खेलोगे। जहाँ तक मेरा सवाल है, मेरा दूसरा बचपन कब का बीत चुका, अब दूसरी जवानी आई है। वे हँस पड़े।"[1]

बुढ़ापे में व्यक्ति खुली आज़ादी चाहता है वे अपने अधूरे सपनों को पूरा करना चाहते हैं। कार ड्राइवर बच्चूसिंह को चकमा देकर बाऊजी का बस में चढ़ना यही बताता है कि बाऊजी स्वतंत्र रहना चाहते हैं। उधार की ही सही पर यह स्वतंत्र हवा ही उन्हें चैन देती है। बाऊजी सोचते हैं - "ताज़ी हवा ने सारी थकान हर ली थी। वह बस कंडक्टर भी बावला था। ताज़ी हवा का ताल्लुक़ मौजूदा हालात से हो, ज़रूरी नहीं है। उधार पर भी मिलती है, नहीं जानता होगा बेचारा।"[2]

चंद मध्यवर्गी बुज़ुर्गों को साथ नहीं चाहते। परंतु पैसों के लालच में साथ रख लेते हैं। बाऊजी के बच्चे भी खेत बेचकर उन पैसों से

1. मृदुला गर्ग - दस प्रतिनिधि कहानियाँ - पृ. 57, 58
2. वही - पृ. 62

पॉश कॉलोनी में ज़मीन खरीद कर मकान बनाने की बात करते हैं। उन्हें अपने बाबूजी की कोई चिंता नहीं होती। यदि बाऊजी चाहें तो उनके साथ रह सकते हैं वरना पुश्तैनी मकान तो है ही।

'चौथा प्राणी' भी एक वृद्ध आदमी की घर में शोचनीय स्थिति बयान करने वाली कहानी है। उसका स्थान घर में अंतिम है। इस चौथे आदमी का नाम बी.एन. सरकार है। इस घर के अन्य सदस्यों में अचला (बहन), वीरेन (पति), श्यामला (बेटी) के साथ चौथा प्राणी भी है। अक्सर देखा जाता है कि बच्चे बड़े-बूढ़ों को अपने घेरे में बिठाना पसंद नहीं करते। कहीं घूमने जाते तो वृद्धों का होना मौज-मस्ती विहीन समझा जाता। वृद्ध अपने परिवार के घेरे में सचमुच अंतिम नंबर पर होता है। प्रस्तुत कहानी में भी बीरेन चौथा आदमी है। बाकि सबको एकसाथ बताकर इसका ज़िक्र किया गया है। परंतु कुछ मध्यवर्गीय वृद्ध ऐसे भी होते हैं जो अपना आत्मसम्मान और अपनी अस्मिता नहीं खो देना चाहते। *'चौथा प्राणी'* में बीरेन का मौन, एकांतप्रिय होना, कहीं घूमने न जाना, बुलाने पर भी 'ना' कहना यही दर्शाता है। यदि वह गया तो शायद वे मज़ा न ले सकें।

अधिकांश मध्यवर्गीय युवक-युवती प्रणय की अपेक्षा विवाह को अधिक महत्त्व देते हैं। परंतु यह ज़रूरी नहीं कि वे प्रणय-भावना में बँधे ही ना। कहीं-कहीं वृद्धों में भी यह भावना विद्यमान रहती है। मध्यवर्गीय

औरतें यदि साठ साल की हों तो उन्हें समाज, अनैतिकता के चरण में कभी नहीं देखता। किंतु साठ साल की उम्र में भी मोहब्बत हो जाती है इसका उदाहरण देती कहानी है *'साठ साल की औरत'*। मृदुला जी का कहना है कि प्रणय भावना का उम्र से कोई ताल्लुक नहीं होता। प्रणय की श्रेष्ठता लोकापवाद से इतर है। सुश्री सुरभि घोष को डॉ. चन्द्र से प्यार एवं आकर्षण होता है। गिरिजाघर में मिले सुश्री घोष और चन्द्र प्रणय और लोकापवाद के संबंध में बात करते हैं। "साठ की होने पर औरत निरापद हो जाती है। कुछ भी करे लोकापवाद नहीं होता। कितनी बेवकूफ़ी की बात थी। जैसे लोकापवाद का न होना औरत को निरापद करने को काफ़ी हो। और जो लोक से इतर अपना मनोजगत है उसका क्या? पर उसका आग्रह तो साठ की होने पर पता चलेगा न? चालीस की उम्र में साठ इतनी दूर लगता है कि जो चाहो कह लो।"[1]

प्रस्तुत कहानी में मृदुला गर्ग ने सुश्री घोष की कहानी के एक वक्तव्य - 'साठ की उम्र में लोकापवाद नहीं होता' से यह बताया है कि औरत की उम्र चाहे जो हो उसमें इच्छाएँ आकांक्षाएँ वहीं रहती हैं। पर चालिस की उम्र में साठ की उम्र काफी दूर नज़र आती है। इसलिए कुछ भी कहा जा सकता है। ऐसी आकांक्षाएँ मध्यवर्गीय वृद्ध महिला में देखी जा

---

1. मृदुला गर्ग - स्त्री मन की कहानियाँ - साठ साल की औरत - पृ. 182

सकती हैं। मध्यवर्गी बुज़ुर्ग अपने दम पर जीना चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि वे कभी भी दिखाएँ कि वे कमज़ोर है। *'मेरे देश की मिट्‌टी, अहा'* में बिन्नी का पति अमर अपने बेटों सुरेश और रमेश के साथ अमरीका में है और चाहता है कि बिन्नी भी साथ आएँ। पर वह उसे बुलाने की जगह आशा करता है कि इस कमज़ोरी को बिन्नी स्वीकार करें। यहाँ बिन्नी द्वारा मध्यवर्गीय महिला की दृढ़ता नज़र आती है। साथ में बुढ़ापे में साथी का आग्रह भी। चाहे जवानी में लाख अहं पाल लो पर बुढ़ापा जीवन-साथी की ही तलाश करता है। सपनों को बनाने के लिए उसे पूरा करने के लिए देश-विदेश में चले गए तो भी ज़िन्दगी में बुढ़ापा मध्यवर्ग के लिए सवालिया निशान है। अमर द्वारा पीढ़ी का अंतर और बुढ़ापे की मानसिकता मृदुला जी दर्शाती हैं। मध्यवर्ग की बदलती इच्छाएँ एवं आकांक्षाओं का ज़िक्र इस कहानी में हुआ है।

मध्यवर्ग में बुढ़ापे का डर मौजूद है। *'मंज़ूर-नामंजूर'* बुढ़ापे के डर और उससे उपजती मानसिक शारीरिक समस्या का भय पेश करती है। दो बहनों की वैयक्तिक भिन्नता के साथ-साथ वक़्त का खालीपन, उसका अनंत ठहराव और बीते वक़्त का वापस न आने की विषमता कहनी में दर्ज है। मंज़ूर-नामंज़ूर दो बहने हैं। 2 अक्टूबर को जन्मे। बड़ी मंजूर छोटी नामंजूर। मंज़ूर का पति नौकरी बदलता है और

जगह भी। वहीं नामंज़ूर का पति स्थायी नौकरी करता और तरक्की तक सीमित रखता। मंजूर की मौत 2 अक्टूबर को गाड़ी के नीचे आने से हुई। अब डर नामंज़ूर को बुढ़ापे का है।

मध्यवर्ग में बच्चों की अकस्मात मौत से उनका अकेला पड़ जाना प्रस्तुत है। *'बंजर'* कहानी की माँ लेखिका है। उनके जवान बेटे की मौत किसी अन्य की लापरवाही से हुई। शिव-मंदिर जाते माता-पिता से लोग शांति रखने और मौत के ज़िम्मेदार को माफ करने की बात करते हैं। परंतु वे इस बात को कैसे भूलें? वह उनका इकलौता बेटा था। यहाँ एक बूढ़े मध्यवर्गीय माँ-बाप की बिडंबना नज़र आती है जो जवान बेटे की मौत पर दो आँसू तक नहीं बहा पाते। उन्हें जीना ही होता है। जवान बेटे की चिता को आग देना, एक बाप के लिए सबसे अधिक दुख का विषय है। "यह मुमकिन है कि किसी चीज़ का कारण जान लेने पर आप कुछ हद तक माफ कर सकें। पर जब कारण यह हो कि बीच अंधेरे में, आप बिना लालटेन तक लगाये ख़राब गाड़ी बीच सड़क पर सिर्फ़ इसलिए छोड़ गये, क्योंकि उसे धक्का देकर किनारे करने में तनिक मेहनत करनी पड़ती और फिर वहीं बैठे देखते रहे और अस्पताल तक ले जाने को आगे नहीं आये तो, धिक्कार के सिवा मन में और क्या भाव आ सकता है? और वे हैं कि उपदेश दे रहे हैं कि जानबूझ कर थोड़े ही किया, इसलिए क्षमा तो कर ही

देना चाहिए।"[1] यहाँ बूढ़े माँ बाप का आक्रोश समाज और बेपरवाही के खिलाफ नज़र आता है। ऐसा विद्रोह मध्यवर्गीय ही कर सकते हैं।

मृदुला गर्ग की *'उलटी धारा'* भी बूढों की मानसिकता को उजागर करता है। कहानी की पृष्ठभूमि भारत पर अक्टूबर 1962 को हुए चीन हमले तथा नवंबर को एकतरफा हुए 'सीज़ फयर' की घटना तथा पाकिस्तान के साथ हुए युद्ध की बखूबी चर्चा करता है उस वक़्त जो भी असर हुआ मध्यवर्ग पर हुआ। मध्यवर्ग वृद्ध जनों की मानसिक दशा का वर्णन खास तौर पर अंकित करता है। वे ऊलजुलूल हरकत करते हैं। उनका मन बच्चों सा हो जाता है। वे कहते-कहते कहीं खो जाते हैं। इस पर भी रोशनी डाली गयी है। कहानी में नब्बे साल के श्यामसिंह का उदाहरण है - "कुछ देर हम लोग इंतज़ार करते रहे कि वह आगे कुछ और कहेगा, पर जब वह नहीं बोला तब सोच लिया, बूढ़े का मन है, यूँ ही इधर-उधर भटक रहा है, ध्यान देने की ज़रूरत नहीं है।"[2]

आर्थिक विपन्नता भी बूढ़े माता-पिता को बच्चों से अलग कराती है। *'उर्फ सैम'* में सवान-प्रताप का अमरीका जाना और आर्थिक समस्या को दूर करना यही दर्शाता है। बुज़ुर्ग हमेशा अपने अंतिम दौर में

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - बंजर - पृ. 677
2. मृदुला गर्ग - हरी बिंदी - उल्टी धारा - पृ. 109, 110

अकेले पड़ जाते हैं। खासकर मध्यवर्गीय यथार्थ में यह आम बात है। बच्चों का घर और देश छोड़ कर जाना, माँ-बाप की मौत पर भी पहुँच न पाना साधारण घटना है। अक्सर वृद्ध जन अपनों से कटकर वृद्धाश्रम चले जाते हैं। कुछ बुज़ुर्ग खूसट होते हैं जो वसीयत बदलने की धमकी देखकर आराम से गुज़ारा करते हैं। कहानी में यह बात इस तरह कही गई है - "बुज़ुर्ग को हमेशा कहते सुना, अक्लमंद वह, जो बुरे से बुरे वक़्त के लिए खुद को तैयार रखें।"[1]

अंतिम समय में अपने पास कुछ न होना आज के मध्यवर्गीय लोगों का डर है जो सावन प्रताप सिंह के माध्यम से झलकता है - "बुढ़ापा आने पर, काम करने की ताक़त खो जाने पर, कितने दिन साथ देगा यह रुपया। कितने दिन महफूज़ रह सकेगा यह एपर्टमेंट?- - - - बाबा अठासी के हो कर मरे, ताऊ नब्बे तक जिये और पिताजी भी पचहत्तर छू रहे हैं। ताऊ की तरह सेहतमंद रहा तो भी चलेगा पर बाबा की तरह छः साल लकवे में रहना पड़ा तो? इलाज तक के लिए पैसा नहीं बचेगा।"[2] मृदुला जी ने मध्यवर्ग के वृद्धों का यथार्थ कई रूपों में सामने रखा है। यह यथार्थ भय के साथ-साथ सुरक्षा की माँग भी है जो वर्तमान काल में ज्यों का त्यों विद्यमान है।

---

1. मृदुला गर्ग - जूते का जोड़ गोभी का तोड़ - उर्फ सैम - पृ. 176
2. वही - पृ. 176

मृदुला जी ने अपने उपन्यास *'वंशज'* में जज शुक्ला साहब के ज़रिए एक उच्च मध्यवर्गीय पिता की अपने बेटे के प्रति चिंता दर्शायी है। तभी पिता मौत से पहले वसीयत उसके नाम कर देता है। उसी प्रकार उनके उपन्यास *'कठगुलाब'* में भी सभी पात्र वृद्धावस्था की ओर बढ़ रहे हैं परंतु उस अवस्था की आशंका से निजात पा लेते हैं।

नौकरीपेशा मध्यवर्ग

मध्यवर्ग अधिकांशतः नौकरीपेशा होते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों के नौकरी करने के बग़ैर घर चलाना जटिल कार्य है। यहाँ तक कि मध्यवर्गीय संतान भी चाहते हैं कि उनके माँ-बाप दोनों नौकरी करें। मृदुला गर्ग की कहानी *'चकरघिन्नी'* में विनीता जो घर-बार, पति-बच्चों पर पूरा ध्यान देने के लिए 'हाउस वाइफ़' की भाँति जीती है उसे उसके खुद के बच्चे और पति काम करने की सलाह देते हैं। उन्हें लगता है कि माँ पूरा दिन घर में बैठी रहती है इसीलिए उनका ज़रूरत से ज़्यादा ख्याल रखती है। मध्यवर्गीय बच्चे भी अधिक देखभाल से परेशान हो जाते हैं। जब विनीता, बेटी माया को खाने के टेबल पर कॉमिक पढ़ने से रोकती है तो माया कहती है कि "'तुम हर वक़्त घर पर क्यों बैठी, रहती हो? कोई जॉब क्यों नहीं करती? मेरी सब सहेलियों की मम्मी काम करती हैं।' और वापस कॉमिक पढ़ने में तल्लीन हो गई।"[1]

---

1. मृदुला गर्ग - स्त्री मन की कहानियाँ - चकरघिन्नी - पृ. 95

बेटा अजय भी अपने दोस्त की डॉक्टर माँ से विनीता की तुलना करता है। पति अमित उसे अपनी माँ की डिस्पेन्सरी में काम करने की सलाह देता है। वर्तमान काल में मध्यवर्ग के सदस्यों का रवैया ऐसा है तो पुराने ज़माने में पत्नी का काम करना बच्चों को खटकता भी था। क्योंकि तब माँ उनका पूरा ख्याल नहीं रख पाती थीं। यही वजह थी कि विनीता डॉक्टर नहीं बनना चाहती थी। विनीता अपनी माँ से कहती है "'जी हाँ। मैं सिर्फ इसलिए डॉक्टर नहीं बन सकती क्योंकि आप चाहती हैं। आपने कभी यह जानने की कोशिश की है, मैं क्या चाहती हूँ, क्या पढ़ती हूँ, क्या करती हूँ, ज़िंदगी में मेरी ख़्वाहिशें क्या हैं?'"[1]

इस कहानी में दो तरह के मध्यवर्गीय रवैये के दर्शन होते हैं। मध्यवर्गीय स्त्री कभी खुद को बेकार नहीं रहने देती। चाहे सेवानिवृत्त क्यों न हो जाएँ, फिर भी छोटा-मोटा काम ढूँढ़ ही लेती है। *'छत पर दस्तक'* कहानी की नलिनी रिटायर हो चुकी है। बेटे सुधीर की हर ख्वाइश पूरी करने तथा उसे अमरीका भेजने के लिए अपनी प्रोविडेंट फण्ड भी खर्च कर चुकी है। पति विवेक के छोड़कर चले जाने के बाद उसी ने हर कदम पर तटस्थ होकर ज़िंदगी का सामना किया है। जिस नलिनी के काम करने पर सास-ससुर को एतराज़ था उसी नलिनी की तारीफ़ विवेक के चले जाने पर

---

1. मृदुला गर्ग - स्त्री मन की कहानियाँ - चकरघिन्नी - पृ. 91

उन्होंने की थी। मध्यवर्ग में देखा जाए तो बड़े-बुज़ुर्ग लड़कियों को घरेलू बनाकर ही रखना चाहते हैं। उन्हें लगता है कि कामकाजी लड़कियाँ उनके बेटे के प्रति अपनी ज़िम्मेदारियों से भागेंगी। नखरा करेंगी। परंतु सोच बदल रही है। नलिनी के सास ससुर की सोच का बदलना यही दर्शाता है। मध्यवर्गी ज़्यादा से ज़्यादा पैसा इन्वेस्ट करना चाहते हैं ताकि उनका भविष्य सुरक्षित हो सकें। इसीलिए जी तोड़ मेहनत करते हैं। इस कहानी में नलिनी का बेटा सुरेश कहता है - "सोचता हूँ कुछ डॉलर हिंदुस्तान में इन्वेस्ट कर दूँ। इंपोर्ट एक्सपोर्ट में बहुत पैसा है। उधर का तुम संभाल सकती हो, इधर का मैं। अब यहाँ तो पैसा बचेगा नहीं.... ये अमेरिकन लड़कियाँ, मेरा मतलब खर्च होता ही है अच्छी तरह जीने में.... कभी मैं हिंदुस्तान आने लगूँ तो.... मेरा मतलब कुछ सुरक्षा हो तो...."[1]

नलिनी भी बेकार बैठना पसंद नहीं करती और हिंदुस्तान में काम देखने को राज़ी हो जाती है। वास्तव में मध्यवर्ग की एक बढ़ती समस्या है तलाक। छोटी-छोटी बातों पर होते तलाक़ से हर कोई वाकिफ़ है। ऐसा अधिकतर मध्यवर्ग में ही होता है। कारण है उनका 'अहं'। *'बीच का मौसम'* की माया भी तलाकशुदा है। ऐसी स्थिति में स्त्रियों का घरेलू बने रहना भी ठीक नहीं। ऐसी समस्या से पहले ही अवगत होने के कारण स्त्रियाँ नौकरी करना पसंद करती हैं। उन्हें अपने अनिश्चित भविष्य का भय है।

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - छत पर दस्तक - पृ. 610

भ्रष्टाचार नौकरीपेशा मध्यवर्ग में हमेशा से विद्यमान रही है। ऐसा, आर्थिक तंगी की वजह से होता है। परंतु ऐसी स्थिति आज बढ़ती जा रही है। इस बात की ओर मृदुला जी ने *'बीच का मौसम'* कहानी के ज़रिए समाज का ध्यान आकृष्ट करने की कोशिश की है। माया का पति जिससे वह तलाक़ ले चुकी है सरकारी अफसर है। परंतु उसे घूस लेने में कोई दिक्कत नहीं थी। माया कहती है - "मेरी तरह वह भी सरकारी अफ़सर था पर उसे ऊपरी कमाई से परहेज़ नहीं था। रसूख़ भी उसका काफ़ी था, ऊपर वाले अफ्सरों को ख़ुश रखना खूब जानता था।"[1]

यहाँ मध्यवर्ग के 'गुण' (यदि इसे गुण कहा जा सकता है तो) का पता चलता है कि वह ऊपरी कमाई के साथ-साथ चापलूसी भी खूब जानता है। मध्यवर्गी जहाँ भ्रष्ट होते हैं वहीं कुछ ईमानदार भी होते हैं। यह विरोधाभास ही है कि दोनों तरह के लोग मध्यवर्ग में मौजूद हैं और यही उसका यथार्थ है। माया के साथ घटित घटना ईमानदारों को आज के ज़माने में मिलने वाले ईनाम की ओर इशारा करता है। माया कहती है "दिल्ली मेरा तबादला अभी दो साल पहले हुआ था। बीसियों बरस, छोटे क़स्बों शहरों में भटकाये जाने के बाद। कमोबेश हर आई.ए.एस. अफ़सर की यही नियति है, बस उसे लिखता ईश्वर नहीं, ऊपर वाला अफ़सर है।"[2]

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - बीच का मौसम - पृ. 645
2. वही - पृ. 642

उच्च मध्यवर्गीय स्त्री की जीवन गाथा बताने वाली कहानी है *'किस्सा आज का'*। अक्सर देखा जाता है कि जहाँ मध्यवर्ग में स्त्रियाँ काम करती हैं वहीं उसे नौकरी छोड़ने पर भी मजबूर किया जाता है। इस कहानी में रानी जोकि सफल वकील है शादी के बाद नौकरी छोड़ देती है। उच्च मध्यवर्ग में कहीं कहीं औरतों का काम करना आज भी शान के खिलाफ समझा जाता है। वकीलन रानी काम छोड़कर घर की नौकरी करती है। परंतु वह भी मुश्किल है। यहाँ उच्च मध्यवर्ग पर मृदुला जी का व्यंग्य भी सामने आता है कि उच्चमध्यवर्गी स्त्रियाँ काम करने में नहीं करवाने में थक जाती हैं। "बड़ी मुश्किल है। बड़े घर की सफ़ाई सजावट की, लड़के के स्कूल सुबह जल्दी शुरु होने की मुर्ग़ मुसल्लम के लज़ीज़ न पकने की, पड़ोसन के उससे सस्ते दामों वाली साड़ी ख़रीद लाने की, मेहमानों की आमद की, दावती साड़ी के ठीक इस्तिरी न होने की, ऐसी बहुत सी तकलीफें हैं उन्हें।"[1]

अंगूरी जो वकीलन की मालिश किया करती है उसके माध्यम से मृदुला जी ने उच्च मध्यवर्ग के नौकर रखने की रीत पर एक नज़र दौड़ाई है। अंगूरी ज़रूरतमंद मालकिनों से ज़रूरतमंद नौकरों को मिलवाती थी। यह उसका शौक था। इस पर भी मृदुला गर्ग ने दलाल और संपर्क

---

1. मृदुला गर्ग - स्त्री मन की कहानियाँ - किस्सा आज का - पृ. 67

अधिकारी को साथ रखकर व्यंग्य किया है। "अंगूरी में हुनर पूरे रियाज़ के परवान चढ़ा है। वह आपसी मेल मिलाप भी शौक़ी तौर पर करती है। संपर्क अधिकारी का काम भी तो यही है। "वही जो पहले दलाल और आजकल संपर्क अधिकारी करते हैं।""[1]

नौकरीपेशा जीवन के भ्रम की ओर भागती नव-पीढ़ी एवं जवान लोग गाँव में बसना पसंद नहीं करते। चाहे कृषि एवं किसान की खेतीबाड़ी ज़्यादा से ज़्यादा क्यों न हो पर शहर में रहना, वहाँ कोई 'वाइट कॉलर जॉब' करना ही उनका लक्ष्य होता है। ऐसा मध्यवर्ग में ही देखने को मिलता है। एक के बाद एक पड़ाव पार कर ऊँचा पद पाना चाहते हैं। *'उनके जाने की खबर'* में मृदुला जी ने वर्मा साहब को पत्नी के घर खेतीबाड़ी न करके शहर की ओर भागते दिखाया है। इस कहानी में वर्मा डिप्टी मैनेजर है और सिन्हा जनरल मैनेजर। मध्यवर्ग में तरक्की पाने की चाहत बनी रहती है। इसी का ज़ायका कहानी में वर्मा और सिन्हा के आपसी झगड़े के साथ दिखाया गया है। सिन्हा का अपने बॉस को पटाना भी अपनी नौकरी को सुरक्षित करने और आगे बढ़ने की निशानी है। ऐसा सिन्हा ने बॉस को घर की पार्टी में बुलाकर किया। "मिसेज़ सिन्हा के साथ वे नाचे ही नहीं थे बल्कि तीन चार बार नाचे थे।"[2] यहाँ मैनेजिंग डाइरेक्टर

---

1. मृदुला गर्ग - स्त्री मन की कहानियाँ - किस्सा आज का - पृ. 67, 68
2. मृदुला गर्ग - जूते का जोड़ गोभी का तोड़ - उनके जाने की खबर - पृ. 16

को खुश किए बिना सिन्हा का प्रमोशन नामुमकिन था। यही वजह थी कि डाइरेक्टर का अपनी पत्नी के साथ नाचना उन्हें नापसंद नहीं हुआ नौकरीपेशा मध्यवर्ग की अपसंस्कृति का ज़िक्र मृदुला गर्ग ने यहाँ किया है।

नौकरी पेशा मध्यवर्ग में आजकल एक नई संस्कृति पैदा हुई है। बच्चों को आया के यहाँ छोड़ जाने की *'ख़ाली'* की निर्मला जहाँ काम करती है उसके ऊपर वाला हिस्सा किराए पर दिया गया है। वह हमेशा आबाद रहा था। पर अब वह खाली है। निर्मला साहब और मेमसाहब के नौकरी पर चले जाने और बच्चों के स्कूल चले जाने के बाद जल्दी जल्दी काम खतम कर ऊपर की खलबली सुनती है। पहले के किरायेदार उसकी तारीफ़ किया करते थे। अब की किरायेदार मधुर के पति के देर से आने की बात पर निर्मला ने बच्चों का मुद्दा उठाया। परंतु तब उसे पता चला कि दिनेश और उसने कभी बच्चा चाहा ही नहीं। क्योंकि वे अन्य दम्पतियों की तरह बच्चा आया के हाथ देकर जाना पसंद नहीं करते। वह कहती है "हम दोनों अपने काम में इतने मशगूल रहते हैं उसे पालेगा कौन?"[1] यहाँ मध्यवर्ग की दोहरी सोच सामने आती है। एक वक़्त की कमी के कारण बच्चा अभी नहीं चाहते। दूसरा बच्चों को कामवाली के हाथों कर चले जाते हैं।

---

1. मृदुला गर्ग - दस प्रतिनिधि कहानियाँ - खाली - पृ. 149, 150

यहाँ नौकरीपेशा मध्यवर्ग अपनी कमाई का उतना लाभ नहीं उठा पाता जितना कि उसके नौकर उठाते हैं। ऐश में मध्यवर्ग की बजाय नौकर जीता है।

मध्यवर्गीय व्यक्ति महत्वाकांक्षी होते हैं। उसके कई सपने होते हैं जिसे वह पूरा करना चाहता है। परंतु रोज़मर्रा की दौड़-धूप में ये सपने अधूरे रह जाते हैं। आर्थिक अभाव तथा ज़िम्मेदारियाँ उन सँजोये गए सपनों की धज्जियाँ उड़ा देता है। *'गुलाब के बगीचे तक'* का नायक मेरठ में तीन सौ गज़ ज़मीन ख़रीद कर एक खपरैल की छत वाली चार कमरों की कॉटेज बनाना चाहता है। अपना घर बनाना चाहता है जिसके चारों ओर अलग किस्म के अलग-अलग रंग के गुलाब के बगीचे लगे होंगे। "'हम अपना परिवार सीमित रखेंगे', "बेटी के बाद बेटे की पैदाइश पर उसने कहा था, 'मैं दोनों को ख़ूब पढ़ाऊँगा, जिससे दोनों अपने पैरों पर खड़े हो सकें। मुझे न लड़की के लिए दहेज जुटाना है, न लड़के के लिए जायदाद। जैसे ही वे अपनी नौकरी से लगेंगे, चाहे डॉक्टर इंजिनियर, मैं रिटायर हो जाऊँगा। पचपन की उम्र तक। फिर मेरठ में तीन सौ गज ज़मीन ख़रीद कर एक खपरेल की छत वाली, चार कमरों की कॉटेज बनवाऊँगा। उसके चारों तरफ़ ग़ुलाब का बग़ीचा लगवाऊँगा। हर क़िस्म हर रंग का गुलाब वहाँ खिलेगा। एकसाथ नहीं। धीरे, धीरे। बग़ीचा फूटेगा, पनपेगा, फले फूलेगा हमारी आँखों के सामने। धीमे धीमे। कितना सुखद होगा हमारा जीवन!

हमारा साथ, हमारा घर ! हमारा बग़ीचा !'"[1] लड़की के लिए दहेज जुटाने और लड़के के लिए जायदाद बनवाने के लिए वह कमाई नहीं करना चाहता। क्योंकि वह बच्चों को पढ़ा-लिखा कर इस काबिल ज़रूर बनाएगा कि वे नौकरी कर सकें। चाहे डॉक्टर बने चाहे इंजीनियर। परंतु बेटी प्रेम विवाह कर लेती है और उसे 1 लाख रुपये दहेज देना पड़ता है। लड़का भी इंजीनियरिंग पास नहीं करता। लड़की के घर वाले उसे परेशान करते रहते हैं और इसलिए उसे घर लेकर आना पड़ा। उसके सुनहले सपने एक एक करके टूटते गए। ज़िम्मेदारियों ने कमर तोड़ दी।

मध्यवर्ग में एक खास बात देखी गई है - चौबीस घंटे बैठकर काम करने की। इससे कमर का दर्द पैदा होना आम बात है जिसे *"गुलाब के बगीचे तक"* के नायक द्वारा दिखाया गया है। उसे दर्द इतना ज़्यादा है कि निजात मौत के साथ ही मिल सकती है। सपनों को पूरा करने के लिए वह जी तोड़ मेहनत करता है। एम.एस.सी. डंबर कंपनी में सुपरवाइसर के जॉब करते समय उसने गुलाब के बगीचे का छोटा सा कॉटेज और दो झाँकते चेहरों का सपना देखा था। मेरठ में कॉटेज तो बनावा लिया। अब मध्यवर्ग की विडंबना सामने आती है कि कभी आस एवं ज़िम्मेदारी तथा परेशानियाँ खत्म नहीं होतीं। ज़िम्मेदारी ने पिता के सपनों के शब्द दबा

---

1. मृदुला गर्ग - जूते का जोड़ गोभी का तोड़ - गुलाब के बगीचे तक - पृ. 50

दिए। परंतु अंत तक उसकी मध्यवर्गीय चेतना ने सपने की उम्मीद को टूटने नहीं दिया। गुलाब के बगीचे को अपने में समा लिया परंतु दर्द ने दगा दे दी। "उसकी मध्यवर्गीय चेतना अभी जीवित थी। वह कुर्सी से उठा और दरवाज़े की तरफ बढ़ गया। वहाँ पहुँचते-पहुँचते उसके क़दम डगमगा गये। दर्द के राक्षसी पंजे ने उसे ऐसे धर दबोचा कि वह लड़खड़ा कर गिरते गिरते बचा। दरवाज़े के साथ टिक कर उसने क्षीण होती अपनी तमाम ताक़त सहेजी और गुलाब के बग़ीचे को पास खींच लेना चाहा। पर सामने दूर तक धुँध चढ़ आयी और सब कुछ उसके पीछे डूबता चला गया - उसका सपना, उसका दर्द, उसकी ज़िंदगी और जीने की इच्छा।"[1] मध्यवर्ग कभी अपनी कमज़ोरी नहीं ज़ाहिर करता। उसका सपना पूरा होते-होते रह जाता है। ज़िम्मेदारी एक के बाद एक बढ़ती जाती है। यही नियति है। अंत में मौत ही छुटकारे का एकमात्र मार्ग एवं साधन रह जाता है।

'मिजाज़' कहानी भी मध्यवर्गीय स्त्री के नौकरी पेशा रूप को दिखलाती है। पिता के चल बसने के बाद श्वेता की माँ टीचर का जॉब करके उसे पालती है। उसकी शादी बड़े घराने में कराने के सपने सँजोती है। श्वेता की माँ की शादी भी सुंदर होने की वजह से उच्च मध्यवर्ग में हुई थी। परंतु पिता के मरने के साथ ही माँ को नौकरी करनी पड़ी। मध्यवर्ग

---

1. मृदुला गर्ग - जूते का जोड़ गोभी का तोड़ - गुलाब के बगीचे तक - पृ. 55

में लड़की के ऊँचे खानदान में शादी कराने की रीति देखी जा सकती है। श्वेता 'पंच सितारा होटल' में रिसेप्शनिस्ट का काम करती है। परंतु उसका पति मनोज उससे वह काम शादी के बाद छुड़वा देता है। मध्यवर्गीय ऊँचे परिवार में पत्नी की नौकरी छुड़वाने की परंपरा भी देखी जा सकती है। श्वेता की माँ श्वेता की शादी के बाद भी नौकरी नहीं छोड़ती। और श्वेता की नौकरी छोड़ देने पर कहती है - "पागल हो गई क्या - नौकरी छोड़कर पूरी तरह इन पर निर्भर हो जाएगी।"[1]

श्वेता की मध्यवर्गीय माँ को डर है कि यदि वह मानस पर पूरी तरह निर्भर हो जाएगी तो कल ज़रूरत पड़ने पर उसके पास कुछ न होगा। मध्यवर्गीय स्त्रियों को अनहोनी का भय हमेशा रहता है इसीलिए वे नौकरी छोड़ना नहीं चाहतीं। चाहे पति जितना भी कमाता क्यों न हो। आए दिन हो रहे तलाक़ एवं मृत्यु की वारदातें उदाहरण हैं। यह भय हर मध्यवर्गीय स्त्री के दिल में है। तभी श्वेता की माँ इस उम्र में भी काम करती है। परंतु ऐसी कई स्वाभिमानी मध्यवर्गीय युवतियाँ भी हैं जो शादी को महज़ ज़िन्दगी का पड़ाव मानती हैं। खुद बिकने की बजाय खरीदार बनने का इरादा पालती हैं। इसके लिए नौकरी करती हैं। ऐसी युवतियों से शादी करने को भी युवक तैयार बैठे रहते हैं। *'खरीदार'* की नीना भी असिस्टैंड कमीश्नर बन जाती

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - मिजाज़ - पृ. 554

है और सुनील से शादी कर लेती है। गृह मंत्रालय संयुक्त सचिव के पद पर नियुक्त नीना ने जब चाहा शादी की। ऐसी संकल्प शक्ति केवल मध्यवर्गीय स्त्रियों में ही देखी जा सकती है। "आज उसके पास सब कुछ है। गाड़ी है, बंगला है, नौकर - चाकर हैं। क्लब की सदस्यता है, सभा - समारोह के निमंत्रण हैं। सफलता का अपना एक रूप होता है, वह भी उसके पास है। उसकी चाल में आत्मनिर्भरता है, - - - -उसके पास सब कुछ है। और जो नहीं है, कभी भी ले सकती है। कल सुनील को बुलायेगी। पिछले हफ़्ते उसने सोचा नहीं। वक़्त नहीं मिला। अब अकेले अच्छा नहीं लग रहा। सुनील सचमुच अच्छा लड़का है - सुंदर और निष्कपट। फिर कल क्यों? आज ही सही। आख़िर वह अब एक खरीदार है।"[1]

यहाँ नीना जैसी मध्यवर्गीय स्त्री विवाह की अनिवार्यता को ठुकराती है। अतः इस तरह नौकरीपेशा मध्यवर्ग कई उतार-चढ़ाव एवं कई पड़ावों पर चुनौती और परीक्षा देता चलता है।

नौकरीपेशा मध्यवर्ग का रूप *'उसके हिस्से की धूप'* की मनीषा और *'मैं और मैं'* की माधवी तथा *'चित्तकोबरा'* की मनु एवं *'अनित्य'* की काजल बेनर्जी, शुभा आदि के माध्यम से देख सकते हैं। मनीषा कॉलेज में हिंदी की अध्यापिका है। *'मैं और मैं'* की 'माधवी' लेखिका है और

---

1. मृदुला गर्ग - दस प्रतिनिधि कहानियाँ - खरीदार - पृ. 125

'चित्तकोबरा' की 'मनु' भी काम करती है। *'अनित्य'* की 'काजल बेनर्जी' इतिहास की प्रोफेसर है। मनीषा कहती है - "आखिर वह कॉलेज पढ़ाने आती ही क्यों है? सिर्फ इसलिए कि सुपात्र के अभाव में विवाह जल्दी न हो पाने के कारण उसने हिन्दी में एम.ए. कर डाला था।"[1]

नौकरी पेशा मध्यवर्ग की कमी ही समझो एक है - खाने की चीज़ को 'वेस्ट' करना। *'अनित्य'* में भात छोड़ने पर अकाल वाली बात करते ही खोखी जो देश के भविष्य के प्रति आशंकित है, खाना खाने लगती है।

यहाँ मध्यवर्गी नौकरीपेशा लोगों में अपनी जल्दबाज़ी के कारण 'वेस्ट' की जानेवाली खाने की वस्तुओं से आने वाले भीषण अकाल की ओर इशारा किया गया है कि कई ऐसे लोग भी होते है जो दाने-दाने के मोहताज बन जाते हैं।

कृत्रिमता

मध्यवर्ग में आमतौर पर कृत्रिमता और प्रदर्शन प्रियता की प्रवृत्ति विद्यमान है। इस कृत्रिमता के पीछे अपनी वास्तविक आर्थिक स्थिति को छिपाना एक बहुत बड़ा कारण है। अपनी आय से अधिक खर्च करके व्यक्ति दूसरों की नज़र में प्रतिष्ठित होना चाहता है। *'विचल'* में शोभा के

---

1. मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 75

मुँह से तारीफ़ सुनकर भाभी का पुलकित हो जाना साबित करता है कि मध्यवर्गी दूसरों के मुँह से तारीफ सुनना पसंद करते हैं। "आकर्षक बना है भाभी", उसे देख कर मुस्कराकर कहा।"[1]

मध्यवर्गीय एवं उच्चवर्गीय में भेद सिर्फ इतना है कि उच्चवर्गीय सभी असली चीज़ों को स्वीकारते हैं और मध्यवर्गीय, उच्च तक पहुँचने की होड़ में नकली को असली बनाकर पेश करते हैं। एक घर के चार भाई - बहनों में यदि कोई एक-दो ऊँचे ओहदों और पैसों से युक्त हो तो बाकि भाई-बहनों को खुद पर हीनग्रंथि - महसूस होती है। वे खुद के खालीपन और ग़रीबी को छिपाने का प्रयास करते हैं। मुंबई से आए शोभा और सतीश, अलका से कम हैसियत के हैं और सरोज और निखिल अधिक हैसियत के। जिस कालीन की तारीफ़ करते अलका थकी नहीं उसके नकलीपन पर निखिल इशारा करता है। "यह कालीन क्या असली बुखारा है?" उसने पूछा और साथ ही झुक कर कालीन पर हाथ फेरने लगा। "नहीं तो, शोभा ने कहा पर लगा, कहने की आवश्यकता नहीं है, उसे हाथ फेरकर ही पता चल गया है।

"फिर भी, अच्छी नकल है," उसने भद्र मुस्कुराहट के साथ कहा।"[2]

---

1. मृदुला गर्ग - हरी बिंदी - विचल - पृ. 22
2. वही - पृ. 22

ऊँचे घराने के लोग जो असली चीज़ रखते हैं वहीं मध्यवर्गीय प्रदर्शन-प्रियता के लिए नकली चीज़ रखते हैं। सतीश को ऐसा लगा कि "रंगों का मिलान कर देने और फूल सजाने से क्या होता है? नक़ली चीज़ नक़ली रहती है। लगा इस कमरे में न जाने कितनी ख़ामियाँ हैं, जिन्हें दूर होना चाहिए।"[1]

अतः पता चलता है कि मध्यवर्ग, उच्चवर्ग तक पहुँचने की होड़ में कृत्रिमता के पीछे भागता है। ऐसे मध्यवर्ग आज के ज़माने में आस-पास ही मिल जाते हैं। मध्यवर्गीय स्त्रियों में दिखावे की प्रवृत्ति ज़्यादा होती है। *'उर्फ सैम'* में आशारानी किन्हीं पार्टियों के लिए ज़ेवर से सज-धज कर जाती हैं ताकि अमरीकनों से उन ज़ेवरों की कारीगरी पर तारीफ़ सुन सके।

मध्यवर्ग किन्हीं रस्मों में भी कृत्रिमता को अपनाए हुए है। मौत, शादी जैसी रस्मों में रोना और हँसना जैसी दो भावनाएँ जुड़ी हैं। किसी की मौत पर रोने के लिए पैसे देकर लोगों को बुलाने की परंपरा भी दिखाई देती है। *'रेशम'* में बाऊजी की मौत पर आए लोगों में हमदर्दी कम और ऊब अधिक नज़र आती है। पर औरतें उठावनी पर आती ज़रूर हैं। हेमवती द्वारा 'शोक खत्म करो' कहना कृत्रिमता को रोकने की माँग है। "'चलिए, उठ जाइए सब लोग!' सधे स्वर में उन्होंने कहा, 'शोक ख़तम करो। दरी का

---

1. मृदुला गर्ग - हरी बिंदी - विचल - पृ. 22

कोना मोड़ दो। और चाय बना लाओ, सबके लिए। एक बार उठ कर बैठ जाइए आप।'"[1] मध्यवर्ग की हर रस्म किस प्रकार कृत्रिम है, इस कहानी द्वारा व्यक्त होता है। यंत्रों की दुनिया में लोग भी यंत्र माफिक बन गए हैं। प्रस्तुत कहानी इस यांत्रिकता को दर्शाती है जिनमें भावना बटन दबाने पर शुरु और खत्म होती है।

मृदुला गर्ग की कहानी *'बाक़ी दावत'* उच्च मध्यवर्ग के दिखावेपन को दर्शाती है। बीवीबाई का साड़ी खरीदकर केवल एक बार पहनना और बात-बात पर पार्टी करना इसी कृत्रिमता को व्यक्त करता है। ड्राइवर मणिराम के बच्चों का इसकी नकल करना उच्चवर्ग की देखा-देखी में की जाने वाली दिखावे की प्रवृत्ति है। मध्यवर्गीय परिवार में पत्नी के पर-पुरुष संबंधों की संभावना कम होती है परंतु उच्च मध्यवर्ग में यह देखा जा सकता है। बीवीबाई का अन्य साहबों के साथ रात रंगीन करना इसी को दर्शाता है। साहब जिसे अपना सबसे अच्छा दोस्त कहता है उसी के साथ बीवीबाई रात रंगीन करती है। मणिराम सोचता है - "अपना साहब गावदी था या गीदड़, वह तय नहीं कर पाता था। पर इतना जानता था कि बीवीबाई जिस रंगे सियार के साथ राते रंगीन करती है, उसी के पीछे, ठेके पास करवाता, अपना साहब दुम हिलाता घूमता है।"[2]

---

1. मृदुला गर्ग - स्त्री मन की कहानियाँ - रेशम - पृ. 181
2. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - बाकी दावत - पृ. 621

मध्यवर्गों की एक आदत है पूछे बगैर उपदेश देना। लोगों पर हर वक़्त 'फिलोसफी' तो झाड़ते हैं पर खुद पर जब बात आती है तो पीछे हट जाते हैं। मृदुला जी ने *'बंजर'* कहानी में मध्यवर्ग के इसी उत्सव एवं उपदेश पर व्यंग्य किया है। हर चीज़ का दिवस मनाने की मध्यवर्ग की रीति पर भी व्यंग्य है। लेखिका क्षमावाणी दिवस पर अधिक व्यंग्य करती हैं। क्योंकि वे जानती हैं कि कोई किसी को दिल से उस दिन क्षमा नहीं करता। उनके बेटे की मौत पर सभी उन लापरवाहों को माफ करने की हिदायत देते हैं। मध्यवर्ग के नौजवान सड़कों पर लापरवाह होकर गाड़ी चलाते हैं। ऐसे ही किसी लापरवाह की वजह से उनके जवान बेटे की मौत हुई। सभी उन्हें माफ करने की हिदायत देते हैं, कृत्रिम हमदर्दी दिखाते हैं। उत्सवों की कृत्रिमता पर भी व्यंग्य किया गया है। उत्सव देश भर में बड़ी धूमधाम से मनाये जाते हैं। जो मात्र पैसा लुटाने एवं बिन भाव के शब्दों को कह डालने का उपकरण है। मृदुला जी व्यंग्य करते हुए कहती है - "उपदेश और उत्सव। एक के बाद एक चलते चले आते हैं। कभी दिवाली है, कभी दशहरा, कभी होली, कभी गणेश चतुर्थी (और भी बहुत कुछ) मुबारक हो! क्या? किसी उपलब्धि पर बधाई नहीं दी जा रही थी। यूँ ही किसी अमूर्त, सार्वजनिक उत्सव, की अवधारणा पर। कहते हैं अमेरिका में कुछ कंपनियाँ नये नये उत्सव, नयी तारीखें ईजाद करती हैं जिससे कार्डों की बिक्री बढ़

सकें।"[1] मध्यवर्ग उपभोक्ता संस्कृति के दिखावेपन से भी त्रस्त है। इस बात का सबूत है उपर्युक्त व्यंग्य।

गाँव एवं शहर के बीच का भेद बताते हुए मध्यवर्गीय दिखावेपन एवं अंदरुनी मुखौटेदार सामाजिक ठेकेदारों का 'मास्क' नोच निकालने का प्रयास मृदुला गर्ग द्वारा *'दुनिया का कायदा'* में हुआ है। प्रस्तुत कहानी द्वारा लेखिका ने पति-पत्नी के आधुनिक खोखले संबंधों को भी व्यक्त किया है। मध्यवर्ग में ऐसे कई रिश्ते मिलते हैं जिनमें संबंध पवित्रता की बजाय अर्थ केन्द्रित हो गए हैं। मध्यवर्ग का पति कहता है कि पत्नी सुन्दर होनी चाहिए। परंतु यह सुंदरता पुराने ज़माने के समान मात्र अपने लिए नहीं बल्कि उसे दूसरों के सामने प्रदर्शित करने के लिए होती है। मि. मेहता के साथ रक्षा को नाचने पर मजबूर होना पड़ता है। सुनील नहीं चाहता कि उसकी पत्नी के साथ कोई कामोत्तेजक हरकतें करें। पर नौकरी और तरक्की के लिए ऐसा करना पड़ता है। सुनील कहता है - "'मुझे तुम पर गर्व है, मैं खुद नहीं चाहता, मेरी चीज़ को कोई आँख उठा कर देखे।'"[2] यहाँ शहरी कृत्रिम संस्कृति प्रस्तुत है, जिसमें मध्यवर्ग, उच्चवर्ग तक पहुँचने की होड़ में फँसा है। वहीं इस कहानी में गाँव की स्त्रियों का दिखावा भी प्रदर्शित है। जिसमें रक्षा की भाभी की मौत पर उनके पति की दूसरी शादी की बात की जाती

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - बंजर - पृ. 666
2. मृदुला गर्ग - हरी बिंदी - दुनिया का कायदा - पृ. 63

है। लोगों का मौत पर रोना कृत्रिमता व्यक्त करता है। यहाँ दिखावे के बाज़ार की ओर इशारा किया गया है। साथ में वैवाहिक बाज़ारीकरण का ज़िक्र भी है जो न जगह देखता है न माहौल। इस बाज़ारीकरण में आज का मध्यवर्ग भी कहीं न कहीं घिरा है।

मध्यवर्ग का दिखावापन भाषा को लेकर सबसे ज़्यादा है। अमरीकनों की तरह उनकी शैली में बात करना, अंग्रेज़ी बोलना, मातृभाषा का त्याग आदि मध्यवर्ग में खासमखास तौर पर बढ़ती जा रहा है। मृदुला गर्ग ने *'एक और विवाह'* में कहा है कि हम अधिकतर विदेशों की नकल करते जा रहे हैं। आज़ादी से पहले जो कूटनीति थी वह आज धोखा, फूट, रिश्वतखोरी के ज़रिए हम अपनाए चले जा रहे हैं। मध्यवर्गीय औरतों का उनकी देखा-देखी पर चलना भी मध्यवर्ग की कृत्रिमता को साबित करता है। कहानी में मदन कोमल से कहता है - "'शायद इसलिए कि अंग्रेज़ी हमारी अपनी भाषा नहीं है हम उसे दूसरों की तरह बोलने की कोशिश करते हैं, जो भी नक़ल करने को मिल जाये, अंग्रेज़ या अमेरिकन।'"[1]

आज मध्यवर्गी अपने बच्चों को भी अंग्रेज़ी बोलने पर मज़बूर करते हैं। आज के ज़माने में जो अंग्रेज़ी बोलना नहीं जानता उन्हें, मध्यवर्ग के बीच कमतर समझा जाता है। मध्यवर्गों का केवल कृत्रिमता के लिए

---

1. मृदुला गर्ग - हरी बिंदी - एक और विवाह - पृ. 26

घरेलू नौकर रखने की परंपरा दिखाई देती है। मध्यवर्ग की अभावपूर्ण आर्थिक स्थिति के साथ घर में नौकर होना आश्चर्यजनक लग सकता है, लेकिन व्यक्ति आवश्यकतावश और कृत्रिमता के लिए ऐसा कर सकता है। *'अनाड़ी'* में सुवर्णा का मध्यवर्गीय परिवार में नौकरी करना यही दर्शाता है। यद्यपि उन्हें छोटी लड़की के काम करने से सहानुभूति है फिर भी उसे घर पर नौकरी के लिए रखना चाहते हैं।

मध्यवर्ग दिखावे के लिए लड़कियों को बड़े घर में ब्याहते हैं। नन्दिनी मध्यवर्ग की है पर सुंदर होने के कारण उच्च मध्यवर्ग में ब्याही जाती है। ससुर राजेश्वर नंदिनी के बारे में कहता है – "अजीब लड़की है.... इकलौते बेटे के लिए मामूली घर की लड़की ली थी तो यह सोच कर कि सुंदर है और पाँच भाई-बहनों में एक। घर सुंदर पोते-पोतियों से भर जायेगा। नौकरी छोड़ने को भी झट राज़ी हो गयी थी।"[1]

यहाँ मध्यवर्ग में लड़की ब्याहने की इच्छा लड़की के माँ-बाप ही नहीं खुद लड़की भी रखती है। बड़े-बड़े घराने की औरतें महँगी साड़ियाँ पहनकर एक दूसरे के घर जाती है। नौकरों को ऊँची आवाज़ में बोलने तक की मनाही है। पर ज़रा सा दाग महँगी साड़ी पर क्या लगा वे चीख पड़ती हैं। *'उसका विद्रोह'* में भी मालकिन नौकर पर लोगों के सामने बरस पड़ी

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - बाहरी जन - पृ. 515

थी। क्योंकि जिस कृत्रिमता को दिखाने के लिए उसने साड़ी पहनी थी उस पर नौकर की गलती की वजह से दाग लग गया है। यहाँ उच्च मध्यवर्ग की औरतों का साज श्रृंगार एवं कृत्रिमता पर इशारा किया गया है। चाय की ट्रे का मालकिन पर गिरने पर वह औरत चीखी - "प्याला लुढ़क कर सामने हाथ फैलाये बैठी औरत की गोद में जा गिरा। फिर क्या था, कोहराम मच गया। वह औरत पूरा दम लगा कर चीखी। उतने ज़ोर का शोर वह ख़ुद इस घर में करने का साहस कभी नहीं कर सकता था। फिर उस औरत को घेर कर बाक़ी औरतें ऐसे दुःख जतलाने लगीं जैसे उसका कोई नज़दीकी रिश्तेदार अचानक मर गया हो।"[1]

अनुशासन का दिखावा लगभग सभी मध्यवर्ग के लोग करते हैं। अपने बच्चों को भी वही सीख देते हैं। *'बांसफल'* में भी पोते अजय और दादी के रिश्ते द्वारा यही दिखाया गया है। बहू बेटे को अनुशासन में पालना चाहती है पर दादी की तरफ़दारी की वजह से ऐसा हो नहीं पाता। अजय को साधारण सी 'टेबल मैनेर्स' भी नहीं है। अजय टेबल पर मेहमान के सामने दाल की कटोरी दादी की थाल में टिका देता है।

मृदुला गर्ग की कहानी *'मौत में मदद'* बताती है कि ज़िन्दगी में मदद करने में देरी किस तरह मौत के मदद का कारण बन जाती है। साथ

---

1. मृदुला गर्ग - जूते का जोड़ गोभी का तोड़ - उसका विद्रोह - पृ. 61

ही मध्यवर्गीय विडंबना, ठंडापन एवं संवेदनशून्यता और संवेदनात्मक भाव कहानी में व्यक्त है। बुद्धन के दवा के लिए पैसे माँगने पर उसकी ठीक मदद न कर पाने पर बुद्धन के बेटे की मौत के कफन के लिए उन्हें पैसे देने पड़ते हैं। इस कहानी में मध्यवर्ग के जनरल मैनेजर के घर नामी-गिरामी लोग आ रहे थे। उसके लिए अठारह तारीख को चालीस - पचास लोगों के लिए बगीचे की अच्छी सफाई करनी थी। बुद्धन उस कार्य में जुट चुका था। अनिल ने बुद्धन के बेटे की बीमारी पर कहा था - "सचमुच बीमार है तो सरकारी अस्पताल किसलिए है?"[1]

मध्यवर्ग की विडंबना है कि वे चाह कर भी पैसे नहीं दे पाते क्योंकि उनका महीने का पूरा बजट पहले से तय होता है और ज़रा भी गड़बड़ाने से उधार लेने की ज़रूरत पड़ जाती है। मध्यवर्ग की सच्चाई इन वाक्यों में व्यक्त है। "उसने पास बीसेक रुपये पड़े होंगे पर वे सब्ज़ी - भाजी के लिए चाहिए। क्या करें अनिल से माँगे? असंभव। इस बार बजट बनाते वक़्त दोनों में काफी खटपट हो गयी थी। उसके पूरे ज़ोर के साथ कह दिया था कि इस बार महीने के बीच रुपयों की हर्गिज़ ज़रूरत नहीं पड़ेगी। फिर अनिल जिस तिस को उधार देने की उसकी आदत से ख़ुश भी तो नहीं है।"[2]

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - मौत में मदद - पृ. 143
2. वही - पृ. 141

मध्यवर्ग कई बुराइयों का विरोध ज़रूर का रहा है। परंतु कृत्रिमता भी पनपती जा रही है। अधिकांश मध्यवर्गीय व्यक्ति दिखावे की भावना से ग्रस्त रहते हैं। आज भी कृत्रिमता के कई पहलू हमारे सामने मौजूद हैं जिन्हें अपने कथा-साहित्य के माध्यम से मृदुला गर्ग ने व्यक्त किया है।

दांपत्य जीवन की विह्वलताएँ

मध्यवर्गीय परिवारों में पति-पत्नी दोनों ही दांपत्य-जीवन में टूटन तथा बिखराव के उत्तरदायी हैं। दोनों के बीच खुला व्यवहार न होने के कारण अनेक गलतफ़हमियाँ पनपती रहती हैं, जो बढ़कर भयंकर रूप धारण कर लेती हैं। मध्यवर्गीय पति-पत्नी के एक दूसरे के सम्बन्धों के प्रति शंकालु होने की स्थिति में भी दाम्पत्य जीवन में टूटन आ जाता है। ऐसे बहुत कम मध्यवर्गीय परिवार होते हैं, जिनमें पति-पत्नी के बीच किसी प्रकार का तनाव न रहता हो। पति अपने अहम् के कारण पत्नी को तुच्छ समझता है और हीनता से ग्रस्त पत्नी मानसिक ग्रन्थि का शिकार हो जाती है। *'वितृष्णा'* की शालिनी इसी हीन ग्रंथि से त्रस्त है। मध्यवर्गीय शालिनी अपनी तक़लीफों को कहने के लिए दिनेश से वक़्त माँगती है तो दिनेश यह कह कर झाड़ देता है कि बेकार बर्बाद करने के लिए उसके पास वक़्त नहीं है। दिनेश कहता है "बात करने की फ़ुरसत उन्हें होती है जिनके पास काम नहीं होता।"[1]

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - वितृष्णा - पृ. 400

अब शालिनी अपने तौर-तरीकों में जीना सीख गई है। दिनेश के रिटायर्मेंट के बाद दिनेश शालिनी से वक़्त माँगता है जो अब उसके पास नहीं। अब दिनेश उससे बहुत कुछ कहना सुनना चाहता है पर शालिनी की इच्छाएँ मर चुकी हैं। दिनेश कहता है - "'शालिनी',..... 'बीस साल पहले तुम्हें इतना कुछ कहना था, उसका क्या हुआ? कहाँ खो गये वे शब्द? बिना कहे तुम्हारा मन कैसे भर गया? तब मैं कितना व्यस्त था।'"[1] यही व्यस्तता दांपत्य-संबंध के बिखराव का कारण भी बन जाती है। *'उसके हिस्से की धूप'* की मनीषा, अपने पति जितेन की हर वक़्त की व्यस्तता से परेशान है। यही कारण था कि वह मधुकर से अपना रिश्ता आगे बढ़ाती है। कार की बंद खिड़कियों की बजाय खुले स्कूटर में सैर करना चाहती है। मनीषा अंत में जितेन से तलाक लेने का फैसला कर लेती है। परंतु जितेन के पास शायद यह सुनने तक की फुर्सत नहीं थी। मनीषा सोचती है "जिस आदमी को उससे दो बात करने तक की फुर्सत नहीं है उससे कैसा लगाव? जो रिश्ता रात के अँधेरे में जन्म लेता है और चंद घण्टे कायम रहकर दिन के उजाले के साथ-साथ खत्म हो जाता है, उसे तोड़ने में कैसा संकोच।"[2]

मध्यवर्गीय पति-पत्नी कभी-कभी एक दूसरे के दोस्तों को भी नापसंद करते हैं। परंतु उन्हें साथ रहना पड़ता है क्योंकि वे पति-पत्नी हैं।

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - वितृष्णा - पृ. 400
2. मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 123

मधुकर और मनीषा को भी हमेशा एक-साथ रहना पड़ता है चाहे वे उस वक़्त एकांत ही क्यों न चाहते हों।

मध्यवर्गी दंपति इतने व्यस्त रहते हैं कि कभी-कभी उनका मिलना भी मुश्किल हो जाता है। *'विचल'* इसी धारणा को प्रस्तुत करता है। शोभा और सतीश को अपनी दिनचर्या में बिल्कुल फ़ुर्सत नहीं है। मध्यवर्ग ऐसा वर्ग है जो खाली बैठना ही नहीं जानता। "रोज़ दफ़्तर से लौटने में आठ बज जाते हैं, अंधेरा हुआ रहता है। खाना खा कर कहीं निकल गये तो ठीक, वरना सीधा बिस्तर।

रविवार छुट्टी का मिलता है तो शाम सिनेमाघर या क्लब में बीतती है। अपने घर के आगे अपने बगीचे में अपनी बीवी को लेकर बैठे रहना, उनके समाज का क़ायदा नहीं है।"[1]

मध्यवर्गीय घर में अंतिम निर्णय हमेशा पुरुष लेता है। इसका कारण भी यही बताया जाता है कि वे बाहरी कामों में व्यस्त रहा करते हैं। *'मैं और मैं'* उपन्यास मध्यवर्गीय पति राकेश के व्यस्त जीवन की ओर इंगित करता है। माधवी का देर से उठना और राकेश का सुबह पाँच बजे उठकर दवाई के कारखाने की तरफ फरीदाबाद चले जाना तथा शाम 'सात'

---

1. मृदुला गर्ग - हरी बिंदी - विचल - पृ. 16

बजे वापस आकर पुनः फोन की घंटियों के बीच उलझना इसी बात को ज़ाहिर करता है। वैवाहिक बंधन इन व्यस्त जीवन शैली में कहीं खो जाती है। मध्यवर्ग एवं उच्च मध्यवर्ग ज़िन्दगी को एक दूसरे के साथ खुलकर जी नहीं पाते हैं। माधवी घंटी की आवाज़ बार-बार सुनकर कहती है यदि यह संगीत का सुर होता तो अच्छा होता। "...राकेश को क्या कभी भीतर झाँकने की ज़रूरत महसूस नहीं होती? फ़ुर्सत ही कहाँ है? सुबह 'छह' बजे फोन लेकर जो बैठता है तो 'नौ' बजे चोंगा छोड़कर सीधा फरीदाबाद जाता है, दवाइयों के अपने छोटे से कारखाने पर और सात बजे लौटने पर फिर वही फोन की टन-टन।"[1]

मध्यवर्ग कभी अपनी ज़िम्मेदारियों से मुँह मोड़कर दूसरी शादी नहीं करता। किंतु कहीं-कहीं देखभाल और ऊब से परेशान होकर ऐसा ख्याल मन में लाते पाया गया है। *'उसकी कराह'* में सुमीत साइकिल की फैक्टरी का काम देखता है। पत्नी सुधा बीमारी से त्रस्त है। उसकी कराह उसे बार-बार उद्वेलित करती है। उसका वह पूरा ख्याल रखना चाहता है परंतु बीमारी ही गलत वक़्त पर आई थी। सुमीत की माँ बुआ जी की ननद के साथ बेटे की शादी के बारे में सोचती है। सुमीत के मन में भी स्वस्थ पत्नी के विचार आते हैं।

---

1. मृदुला गर्ग - मैं और मैं - पृ. 9

मध्यवर्गीय - दाम्पत्य की स्थिरता के लिए पति को अपने अहं को झुकाकर पत्नी को समानता देनी होगी, नहीं तो घर टूट जाएगा। वैवाहिक जीवन में परस्पर प्रेम की कमी की वजह से दाम्पत्य संबंधों का विघटन *'तुक'* कहानी में दिखाया गया है। अक्सर देखा जाता है कि मध्यवर्गीय स्त्री पति की हर इच्छा और जीने का सलीका बिना झिझक अपना लेती है। पति के मक्सद को पूरा करने के लिए उसके पीछे भागती गुड़िया सी नज़र आती है। ऐसी ही एक स्त्री 'मीरा' *'तुक'* कहानी में नज़र आती है। वैवाहिक जीवन में समर्पण दोनों तरफ से होना चाहिए। यदि केवल स्त्री ही अपना धर्म निभाएँ और समर्पण की भावना रखें तो वहाँ संबंधों के टूटन के साथ-साथ आपसी विश्वासों का भी टूटन नज़र आता है। इसी मोहभंग में 'मीरा' नामक नायिका फँसी है। ब्रिज का खेल पति के लिए खेलती है। उसकी हार पर दुःखी होती है। परंतु उसे लगने लगता है - "मैं उन बेवकूफ़ औरतों में से एक हूँ जो अपने पति को प्यार करती हैं या यह कहना चाहिए कि मैं ही एक बेवकूफ़ औरत हूँ जो...."[1] मध्यवर्गीय स्त्री की सोच मृदुला जी ने यहाँ व्यक्त की है। यदि वह अपने पति की पसंद-नापसंद का इतना ख्याल रख सकती है तो पति ऐसा क्यों नहीं करता? ऐसे कई सवाल भी दाम्पत्य संबंधों के गिरावट का कारण बन जाते हैं।

---

1. मृदुला गर्ग - हरी बिंदी - तुक - पृ. 108

'गुलाब के बगीचे तक' में पति-पत्नी का संबंध ज़िम्मेदारियों के बोझ तले दबा है। जहाँ पति के अपने सपने कहीं दब जाते हैं। उन्होंने प्रेम विवाह किया था। परंतु कहानी में बेटी के दहेज को लेकर विवाह का टूटना भी नज़र आता है। यद्यपि मध्यवर्ग में दहेज लेने-देने की परंपरा कुछ हद तक कम हुई है फिर भी पूरी तरह से मिटी नहीं। इस कहानी की बेटी के लिए दहेज जुटाने वाले मध्यवर्गीय पिता की विडंबना नज़र आती है। "उसने अपने माथे की शिक़न पोंछ दी थी और पचास हज़ार का दहेज जुटाने में लग गया था। मामूली बात थी। हिंदुस्तान में हर मध्यवर्गीय बाप यह करता है। सिर्फ मेरठ वाली ज़मीन की ख़रीददारी कुछ दिनों के लिए स्थगित हो गयी थी।"[1]

यहाँ बेटी का दांपत्य दहेज के कारण टूटता है। किसी भी वर्ग में विधवा होना एक बड़ी समस्या है। मध्यवर्ग में इसका भय दोनों को है। पति अपनी मृत्यु से डरता है क्योंकि उसे अपनी विधवा होती पत्नी की चिंता है। *'जिजीविषा'* में आदित्य भंडारी की जिजीविषा इसी बात को व्यक्त करती है। "मैं जीना चाहूँ या नहीं, मुझे जीना होगा। जितने दिन वह, मेरी विधवा, मुझे जिलाये रखेगी जीना होगा।"[2]

---

1. मृदुला गर्ग - जूते का जोड़ गोभी का तोड़ - गुलाब के बगीचे तक - पृ. 52
2. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - जिजीविषा - पृ. 465

कहानी में प्रेम एवं आपसी सहभाग से दाम्पत्य जीवन सफल माना गया है। पत्नी अपने पति को वापस पाने लिए अपने गुर्दे तक देने को तैयार है। आदित्य भंडारी भी आम पति की तरह अपनी पत्नी को ग़ैर मर्द के साथ नहीं देख पाता। चाहे वह बिट्टी जीजी का पति ही क्यों न हो। मध्यवर्ग के इन दम्पत्तियों का प्रेम मनोवैज्ञानिक ढंग से कहानी में दर्ज है। *'बीच का मौसम'* में चार दोस्तों के माध्यम से मध्यवर्ग के भिन्न दांपत्य रूपों को दिखाया गया है। मध्यवर्गीय पत्नी कभी पति के अन्य स्त्रियों से संबंध बर्दाश्त नहीं कर सकती। ऐसी स्थिति में कुण्ठाएँ पैदा होतीं हैं और संबंध टूटता है। इस कहानी में माया के पति का उसी की सहेली से नाजायज़ तालुक़ात है जिससे दांपत्य संबंध टूटता है। "थोड़ा बहुत! हफ़्ते में तीन दिन दौरे का बहाना करके घर से बाहर रहता है।"[1] लिली ऑफ दि वैली में निशि का अपने प्रेमी तथा शराबी पति की हर बात को छिपाने की आदत आज की चुनिंदा मध्यवर्गीय पत्नी की विडंबना है जो पति की स्थिति को किसी के समक्ष ज़ाहिर नहीं करना चाहती है। निशी अपनी दोस्त की शादी पर आकर कहती है - "वायदा है तभी आयी हूँ। राकेश आने नहीं दे रहे थे, शादी के पहले मुझे छोड़ कर चले जाने का वायदा कर रखना क्या ठीक था? सच, बड़ी मुश्किल से मनाया। शादी के बाद हम कभी अलग नहीं

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - बीच का मौसम - पृ. 646

हुए, "निशी ने हंस कर कहा"[1] परंतु 'मैं' को लगता है कि निशी कोई अपना बहुत बड़ा दर्द छिपए हुए है - "'मुझे लगता है, निशि कोई बादल अपने चारों तरफ लपेटे है, जैसे कोई बहुत बड़ा अभाव है उसे।'"[2]

'अगर यों होता' में 'मधुर' और 'जिम' का शादी के कई वर्षों बाद वापस मिलने की ओर इशारा किया गया है। परंतु मध्यवर्गीय होने के नाते अपने-अपने पारिवारिक दायित्वों की तरफ मुड़ जाते हैं। मध्यवर्ग अपनी पुरानी ज़िंदगी को शादी के बाद कभी घुलने नहीं देता। *'अवकाश'* विवाहेत्तर संबंधों की कहानी है। यह त्रिकोणात्मक आकर्षण की कथा है। मध्यवर्ग में किसी तीसरे का हस्तक्षेप दांपत्य संबंधों के टूटने का कारण बन जाता है। कहानी की नायिका 'मनु' अपने दोनों बच्चों मिनी-कणु और पति महेश को भूलकर प्रेमी समीर की ओर आकर्षित होती है। "पर..... यह कुछ और है। मेरे जीवन में ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। मैं जानती ही नहीं थी प्यार किसे कहते हैं।"[3]

'रुकावट' भी मध्यवर्ग के दाम्पत्येतर संबंधों को व्यक्त करता है। 'मदन' एक ऐसा प्रेमी है जो तीन लड़कियों से रासलीला रच चुका है। वह अपनी पत्नी को यह बात बिना किसी झिझक के बताता है यद्यपि

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - लिली ऑफ दि वैली - पृ. 165
2. वही - पृ. 166
3. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - अवकाश - पृ. 111

मध्यवर्ग यौन पवित्रता को मानते हैं तो भी दूषित भी पाए जाते हैं। दाम्पत्य जीवन में वफ़ादारी बहुत कम नज़र आती है। रीता ने जब मदन के तीन प्रेमिकाओं की बात सुनी तो उसे लगा कि वह प्रेयसी से वेश्या बनती जा रही है। वास्तव में रीता अपने पति को छोड़ प्रेमी मदन के पास आयी है। वह अचानक पति को याद करती है - "उसका स्नेही, सज्जन, संवेदनशील पति। न सही प्रणय की उत्कट लालसा..... जीवन अबाध गति से चलता था। कोई संशय नहीं, अविश्वास नहीं, अशांति नहीं। क्या रखा था इस प्रेम संबंध में!"[1] यहाँ मध्यवर्ग की दोहरी दांपत्य जीवन का प्रस्तुतीकरण है।

मध्यवर्गीय स्त्री का स्वतंत्र चिंतन, दांपत्य-संबंधों में स्वतंत्रता की कमी *'हरी बिंदी'* की अनाम नायिका द्वारा व्यक्त है। नायिका पति राजन के एक दिन दिल्ली चले जाने पर अपनी ज़िन्दगी खुल कर जीती है। लाल की जगह हरी बिंदी लगाती है। मनमाने ढंग से आचरण करती है क्यंकि उसे मालूम है कल से उसे अपनी पुरानी ज़िन्दगी में लौट आना है। मध्यवर्ग की स्त्रियाँ शादी के बाद भी अपनी आज़ादी चाहती हैं। अपने हिसाब से सजना - सँवरना और आना-जाना चाहती हैं। पति की अपने फायदे के लिए टोक उसे पसंद नहीं क्योंकि उसे लगता है कि पति-पत्नी का रिश्ता बराबर का होता है, होना चाहिए।

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - रुकावट - पृ. 147

मध्यवर्गीय स्त्रियों को अधिकांश पति विवाह के पश्चात् खुद पर निर्भर रखना पसंद करते हैं। *'मेरा'* कहानी में मीता से महेन्द्र का एबोर्शन कराने की बात यही ज़ाहिर करता है। परंतु 'मीता' में मध्यवर्गीय स्त्री की आत्मनिर्भरता और ठोस इरादा है। ज़बरदस्ती हमेशा पारिवारिक बिखराव का कारण बन जाता है। माँ बनना उसका निजी फैसला है। और वह ठोस इरादे से डॉक्टर के यहाँ से आती है और खुद नौकरी कर बच्चे को पालने का इरादा रखती है। वह महेन्द्र से कहती है।

मध्यवर्ग अपनी तमाम ज़िन्दगी अभावों में जीकर गुज़ार देता है। पति-पत्नी में पति के नकारा होने से पत्नी बीड़ा उठाती है। अंत में उससे अपना ही चेहरा पहचाना नहीं जाता। *'यह मैं हूँ'* की सरल कॉलरा की तरह पूछ बैठते हैं कि क्या यह मैं हूँ? अपनी परेशानियों को अंदर ही अंदर छिपाना मध्यवर्ग की आदत है जो कभी-कभी आइने के सामने बाहर आ जाती है। परंतु दूसरों के सामने खुश नज़र आते हैं। कहानी में मिसेज़ कालरा का झुर्रियों से भरा असली चित्र, चित्रकार सामने रख देता है तो अपनी दोस्त प्रीती से सरल पूछती है - "यह मैं हूँ? या त्रासदी की प्रतिमूर्ति?"[1]

सरल कॉलरा भी अपने दोस्तों के सामने मैकेप के पीछे सबसे सुंदर और सबसे खुश नज़र आती है जो ज़िन्दगी की सच्चाई के सामने

---

1. मृदुला गर्ग - स्त्री मन की कहानियाँ - यह मैं हूँ - पृ. 135

बिल्कुल कृत्रिम है। सरल कॉलरा की यह हालत शराबी, नाकारा पति के कारण होती है। मृदुला जी ने अपने उपन्यास *'वंशज'* में सविता और सुधीर के माध्यम से टूटते-दांपत्य को दिखाया है वहीं रेवा और उसके पति का सुखदायी संसार भी दिखाया है। *'कठगुलाब'* में असीमा की माँ दर्जिन बीबी का यौन संबंधों के खुलेपन के कारण अपने पति से संबंध टूटा है तो स्मिता का जिम द्वारा हुए बलात्कार से। वहीं नमिता अपने पति के दुष्ट स्वभाव के कारण असीमा के भाई से रिश्ता जोड़ती है। उपर्युक्त उपन्यास के सभी टूटते जुड़ते संबंध मध्यवर्ग में कहीं न कहीं मिलते ज़रूर हैं।

मध्यवर्ग की यही नियति है पति-पत्नी एक सूत्र में बँधने पर उन्हें वह सारी चीज़े करनी पड़ती है जो उन्हें पसंद नहीं। एक-दूसरे का दोस्त उनका अपना दोस्त बन जाता है। चाहे वह उन्हें फूटी आँख न भाए। पर मित्रता कायम रखनी होती है। दांपत्य जीवन की इस सच्चाई को *'उसके हिस्से की धूप'* की मनीषा के माध्यम से बताया गया है। 'मनीषा' मधुकर के साथ बाहर ना जाना चाहते हुए भी जाने को बाध्य होती है, वह भी खुशी-खुशी। लेखिका कहती है - "वह थका है दिमाग से, और कसरत करना चाहता है, वह थकी है जज़बात से और अकेली रहना चाहती है, पर चूँकि वे विवाहित हैं, इसलिए ज़रूरी है कि जो भी वे करें, दोनों करें, चाहे उससे एक को कितनी ही कोफ़्त क्यों न हो। अगर वे दोस्त होते तो एक अपना

ठौर छोड़ सड़क पर घूमने निकल जाता, दूसरा सोने अपने ठौर चला जाता।"[1]

मध्यवर्ग हमेशा हर बड़ी घटना को कमतर बतलाकर टालने वालों में से है। यह वैवाहिक संबंधों मे भी मौजूद है। 'मनीषा' का जितेन को छोड़कर जाना जितेन मामूली सी घटना समझता है। भीतर से दुःखी होने पर भी अपना दर्द नहीं खोलता। मनीषा भी जितेन से नफ़रत नहीं करती। जितेन का अपराध इतना बड़ा भी नहीं था कि वह घृणा करें। जितेन सारी भौतिक सुख-सुविधाएँ उसे देता है पर पाँच-दस मिनट साथ बैठकर बात करने की फ़ुर्सत उसे नहीं। मध्यवर्ग प्रेम को खोजता फिरता है। यही मनीषा ने भी किया। पर उसे बाद में अहसास हुआ कि वह जिस चाहत को पाना चाहती थी वह मधुकर से भी शुरुआती दौर में ही प्राप्त हुआ।

'उसके हिस्से की धूप' का जितेन शायद भविष्य में मध्यवर्ग में उपस्थित होने वाला चरित्र प्रतीत होता है। क्योंकि आज की तारीख में कोई मध्यवर्गीय पति, पत्नी के किसी दूसरे के साथ संबंध को जानकर चुप नहीं बैठेगा और ना ही उसे माफ करेगा। जितेन, मनीषा को माफ करने के साथ कहता है - "तुम जानती हो मैं उतने तंग खयालों का आदमी नहीं हूँ।

---

1. मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 18

मधुकर और तुम्हारे बीच कुछ हो भी गुज़रा हो तो उसे भुलाया जा सकता है। इसमें तलाक़ की ज़रूरत नहीं।"[1]

मध्यवर्गीय स्त्री घर-परिवार के बीच उलझी रहती है। अपना पति, अपने बच्चे; उनकी देखभाल, घर का काम-काज, बजट की चिंता इत्यादि। उसी सब के बीच लेखन आम बात नहीं। क्योंकि उसके लिए एकांत चाहिए। *'मैं और मैं'* की मनीषा ने लेखन को कभी घर-परिवार के आड़े आने नहीं दिया। वह अपने पति और बच्चों की अच्छे से देखभाल करती है। मध्यवर्ग के बजट की समस्या भी उसे घेरी हुई है। यदि उसके घर-खर्च का बजट ज़रा भी इधर से उधर हो जाएँ मध्यवर्ग का पूरा महीना गड़बड़ा जाता है। मनीषा का महीना भी उसी प्रकार गड़बड़ाया हुआ है जब तीसरे व्यक्ति कौशल कुमार का प्रवेश होता है। उसको दिया कोई उधार उसे वापस नहीं मिलता। मध्यवर्ग की एक और विडंबना यह है कि वे उधार दी हुई चीज़ वापस माँगने में हिचकते हैं। अपने बजट का अभाव दूसरों पर ज़ाहिर करने से कतराते हैं। मनीषा भी कौशल से पैसे वापस माँगने से कतराती है। कौशल भी पैसे वापस नहीं देता। माधवी और राकेश के बीच का दांपत्य, सफल है। माधवी हर मध्यवर्गीय स्त्री के समान लेखन से पहले अपने पति और बच्चों का ध्यान रखती है।

---

1. मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 124

'वंशज' की सविता उच्च मध्यवर्गीय है। जैसा कि मध्यवर्ग में स्त्रियों को पढ़ाया जाता है - 'उसका जीवन पति की हर इच्छा को पूरा करना है', वैसे है सविता भी पूरी घरेलू जानकारी के साथ सुधीर की ज़िन्दगी में प्रवेश करती है। परंतु वह व्यावहारिता, दुनियादारी, दूरदर्शिता, निर्भीकता, स्वार्थपरता में निपुण है। उसका भाई अतुलदेव कहता है "लड़कियों को दिलचस्पी पति और घरबार में होती है! होनी भी चाहिए। हमारी बहनें यह अच्छी तरह जानती हैं।"[1]

उच्च मध्यवर्ग में अक्सर देखा गया कि लड़कियाँ शादी बहुत सोच समझकर करती हैं। लड़के से अधिक खानदान और आर्थिक संपन्नता देखती है। ऐसा उसकी सुरक्षा की भावना के कारण ही होता है। वह प्रेम में खुद को भूलकर अपनी ज़िन्दगी भट्ठी में नहीं झोंकती। सोच-समझ कर विवाह के फैसले लेती है। सविता ने भी ऐसा ही किया था। सुधीर सोचता है - "पाक कला में निपुण, दुनियादारी में माहिर, रुपये पैसे में चौकस, ये तो नहीं चाहता था वह?"[2]

जहाँ तक सुधीर और सविता के दाम्पत्य का सवाल है वह असफल एवं अनमेल है वहीं रेवा का दांपत्य सफल है। वह पूरी दुनियादार

---

1. मृदुला गर्ग - वंशज - पृ. 65
2. वही - पृ. 73

औरत बन जाती है। जज शुक्ला साहब सोचते हैं कि रेवा को पता नहीं क्या हो गया। ज़रा सा बच्चे की रोने की आवाज़ सुनकर वह दिनचर्या ही उलट-पुलटकर उसके पीछे भागती है।

'चित्तकोबरा' में मनु, महेश के होते हुए रिचर्ड से प्रेम करती है। इसका, पति को पता भी नहीं। यहाँ दांपत्य का असफल रूप सामने आता है। मध्यवर्ग में शादी के बाद भी किसी अन्य से प्यार करने वाले स्त्री-पुरुष मौजूद हैं। इच्छा के दबने पर भी फिर उठने की संभावना भी मौजूद है। 'मनु' को रिचर्ड के साथ अपना संबंध पाप ज़रूर लगाता है। उसमें अपराध भावना पनपती है।

हर मध्यवर्गी का डर यही है। समाज। समाज क्या सोचेगा। मध्यवर्ग हमेशा अपने में उलझा रहता है। उसका दांपत्य भी वैसे ही उलझा होता है। अविजित का ही अंश अनित्य उसे उसकी मंज़िल नहीं दिखा पाता। वह संगीता, रंजना, काजल बेनर्जी के बीच फँसा है। श्यामा उसकी पत्नी है जो बीमार रहती है। इनका दांपत्य जीवन भी सफल प्रतीत नहीं होता। निम्न मध्यवर्ग का साथ देते हुए मृदुला जी ने कहा है कि समाज में संपूर्ण समाजवाद की प्रतिष्ठा के लिए, देश की आम जनता को सत्ता और संपत्ति की भागीदारी देना आवश्यक है।

'कठगुलाब' में दांपत्य पूरी तरह असफल है। स्मिता और जिम का नमिता और उसके पति का, दर्जिन बीबी और पति का दांपत्य बिखराव में है। सभी किसी न किसी तरह पति से अलग हैं। कुछ अहं की वजह से तो कुछ अत्याचार के कारण। वे अपना परिवार खुद बनातीं हैं। *'मिलजुलमन'* में मोगरा के माँ-पिताजी का दांपत्य सफल है। इसमें मृदुला जी ने अपने माँ-बाप की बात कहीं है।

दांपत्य जीवन का ठंडापन और प्रेम दोनों मध्यवर्ग में नज़र आता है। मध्यवर्गीय परिवारों में दूसरों को दिखाने के लिए एकता बनाये रखने की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। दांपत्य जीवन की यांत्रिक पुनरावृत्ति भी द्रष्टव्य है।

पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव

अंग्रेज़ों के आगमन तथा ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद भारतीय अंग्रेज़ों के संपर्क में आए। इस संपर्क द्वारा भारतीय पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता के साथ आधुनिक विचारों को भी ग्रहण करने लगे। पाश्चात्य प्रभाव इतना व्यापक रहा कि अब वह भारतीय जीवन-पद्धति का एक अंग बन चुका है और उसे पाश्चात्य कह कर अलग रखना भी मुश्किल है। मध्यवर्ग के रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज, भाषा, कला और साहित्य इत्यादि पर यह प्रभाव देखा जा सकता है।

मध्यवर्गीय युवकों में पाश्चात्य सभ्यता के प्रति ही नहीं वहाँ के रहन-सहन तथा कार्य प्रणाली के प्रति सम्मान तथा अपने देश और यहाँ के लोगों के प्रति घृणा पनपने लगती है। मृदुला गर्ग के नाटक *'एक और अजनबी'* का इन्दर अमेरिकी जीवन-शैली की तरफ आकर्षित है। वह वहाँ से शिक्षा प्राप्त कर लौटने के बाद अपने देशवासियों के बारे में कहता है कि - "इनीशिएटिव तो हम लोगों में है ही नहीं। वे लोग जो हाथ में लेते हैं करके दिखाते हैं। यहाँ तो हर काम कराया जाता है। करना कोई नहीं चाहता। दफ्तर चलाना ऐसा है जैसे धोबी के गधे को हाँकना।"[1]

ऐसे ही तारीफ़ के पुल मृदुला जी की कहानी *'लौटना और लौटना'* का हरीश बाँधता है। हरीश पाँच साल अमरीका रह कर लौटा है। विदेशी बेटे और भारतीय माँ-बाप में देश का अंतर आ जाता है। जिस पोखाने में वह वर्षों से जाता रहा था आज उसे खीज महसूस होती है। उसे 'बेड टी' चाहिए। हम भारतीयों को यह गलतफरमी है कि 'मैनेर्स' विदेशों की सौग़ात है। तहसीब की जाग़ीर उन्होंने अपने नाम कर रखी है। मध्यवर्गी विदेशों से आए पात्रों को सिर पर बिठाते हैं। यहाँ तक कि उनके अपने माता-पिता भी यही महसूस करते और बोलते हैं। हरीश के पिता विदेशी एवं उनके तहसीब का साथ देने वालों में से हैं। उनका मानना है कि अच्छी

---

1. मृदुला गर्ग - एक और अजनबी - पृ. 26

ज़िन्दगी अमरीका के कुत्ते भी बसर कर रहे हैं। ब्रिज का खेल वास्तव में अंग्रेज़ों के आगमन से प्राप्त हुआ था। उस ज़माने में कुछ बड़े घराने के लोग ही यह खेला करते थे। आज उच्च मध्यवर्ग में यह शौक है। *'तुक'* कहानी का नरेश ब्रिज खेलता है। उसका शौक इतना बड़ा है कि उसका असर घर पर भी पड़ता है। वह अपनी पत्नी को भी इस खेल में शामिल कर लेता है। व्यावसायिक बनते जा रहे रिश्ते की ओर भी मृदुला जी ने इस कहानी में इशारा किया है। मीरा कहती हैं। "मैं जान गयी, मुझसे कुछ नहीं होगा। सोचने-समझने के बावजूद मैं चीज़ों को जिस तरह महसूस करती जाती हूँ, उसमें कोई तुक नहीं होती। मैं इस युग में मिसफिट हूँ। मैं जानती हूँ, मैं उसे ऐसे ही प्यार करती रहूँगी। उसके होने को कभी व्यवसाय की तरह नहीं ले सकूँगी।"[1]

मध्यवर्ग पाश्चात्य सभ्यता के प्रति इतना लालायित हैं कि उसी के तौर तरीके अपनाए हुए हैं। डॉ. नरेन्द्र देव के बच्चे अलग-अलग कमरों में अपनी दुनिया बसाये हुए हैं। छोटी आशा और बड़ी उषा अथवा एक डॉक्टर बेटा सुरेन्द्र। डॉ. नरेन्द्र देव अपने बच्चों के ऐसे रहन-सहन से खुश नहीं है। वे फ़ालिज (Fix) के रोगी हैं। "अलग-अलग कमरों में पनपी अपने बच्चों की खुदगर्ज़ बढ़ोत्तरी से दुखी डॉ. नरेन्द्र देव को एक बात का

---

1. मृदुला गर्ग - स्त्री मन की कहानियाँ - तुक - पृ. 129

संतोष ज़रूर था और वह यह कि उनका लड़का सुरेन्द्र भी उनकी तरह एम.बी.बी.एस. हो गया था।"[1]

मध्यवर्ग अपने बच्चों को डाक्टर या इंजीनियर ही बनाना चाहते हैं जैसा कि नरेन्द्र देव ने किया। आज का मध्यवर्ग अपना अलग-अलग दायरा बनाए हुए है। उसके अंदर किसी का भी प्रवेश निषिद्ध है। देश की प्रगति के लिए सोचने वाला भी मध्यवर्ग ही है। बाहरी जन का नितिन देश की प्रगति और विकास-योजना को अंजाम देने लघु-उद्योग स्थापित करने के लिए विदेश गया हुआ है। पहले अपने से छोटों से खुलकर बोलने की प्रथा नहीं थी। पर मध्यवर्ग में ससुर द्वारा भी बहू से बच्चे की बात करते हुए पाया गया है। *'बाहरी जन'* का ससुर बहू नंदिनी से डॉक्टर को दिखाने की बात करता है।

पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण ही मध्यवर्ग की स्त्रियाँ अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती हैं। पम्मी 'कुतिया मीशा' को सबकुछ मानती है। माया आँगनवाड़ी चलाती है। मध्यवर्ग बच्चों के बड़े हो जाने पर उन्हें अकेला छोड़ देते हैं। ऐसा इसलिए कि उन्हें लगता है कि बच्चे प्राइवेसी चाहते हैं। यह सच भी है। माया राजश्री को समझाती है - "राजश्री

---

1. मृदुला गर्ग - हिरी बिंदी - अलग-अलग कमरे - पृ. 140

तुम्हारे बच्चे अब जवान हो गये हैं। उन्हें आज़ाद छोड़ दो। हमारे देश में ऐसे बहुत बच्चे हैं, जिन्हें घर की ज़रूरत है।"[1]

मध्यवर्गी खुद को कितना भी आधुनिक क्यों न मान ले पर पुराने रस्मो रिवाज़ों को भूल नहीं पाते। *'एक और विवाह'* में रोके की रस्म इसका सबूत है। मध्यवर्गी स्त्री पाश्चात्य प्रभाव से प्रेरित होकर शादी के बाद पूरी तरह खुलती है जैसा कोमल करना चाह रही है। पाश्चात्य स्त्री और भारतीय स्त्री में काफी भेद है। मध्यवर्गीय स्त्री पाश्चात्य का दिखावा ज़रूर करती हैं परंतु पाश्चात्य हो नहीं पाती। मदन भारतीय होकर भी विदेश से लौटने के कारण अपने देश की स्त्रियों की अवहेलना करता है।

भारतीय मध्यवर्ग पाश्चात्य संस्कृति की ओर भागने के साथ उसके गुलाम होते जा रहे हैं। न वक़्त है न बड़ों का लिहाज़। फितरत है तो सिर्फ पैसा कमाने की। बच्चों को खुश प्यार की जगह खरीदी हुई चीज़ों से कराया जाता है। *'बर्फ बनी बारिश'* के सुरेश और रमेश स्कॉलरशिप पाकर अमरीका चले गए हैं। आज का मध्यवर्ग भी वहीं जाकर बसना चाहता है। बिन्नी अपने मूर्त विचारों के लिए अपना देश नहीं छोड़ती। जहाँ बाप-बेटे अमरीका की ओर आकृष्ट हैं, बिन्नी ठोस बनी रहती है।

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - बीच का मौसम - पृ. 652

मध्यवर्ग में बढ़ती प्राइवेसी की माँग पाश्चात्य संस्कृति की निशानी है। यह माँग नौजवानों में अधिकतर दिखाई गई है। *'छत पर दस्तक'* में पाश्चात्य एवं भारतीय तौर तरीकों का भेद प्रस्तुत है। नलिनी का बेटा सुधीर अमरीका से लौटा है और प्राइवेसी चाहता है।

पाश्चात्यवासी जिस तरह दूसरों की खुशियों एवं तक़लीफों में अपना सिर नहीं खपाते वैसे ही आज का मध्यवर्ग भी होता जा रहा है। उसे भी आस-पड़ोस में घटनेवाली घटनाओं से कुछ लेना देना नहीं है। पाश्चात्य संस्कृति की देखा-देखी खान-पान में भी मौजूद है। मध्यवर्ग में पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृति की मिली-जुली संक्रमणशील संस्कृति पनपी है। जिसमें न तो पुराने रीति-रिवाज़ समाये हुए हैं और ना ही पूरी तरह भारतीय हैं। बीबीबाई की पार्टी में देशी और विदेशी खाने का मिश्रण है। पाश्चात्य तरीके से भारतीय नाच-गा रहे हैं। कुछ स्त्रियाँ साड़ी पहने भी आई हैं।

'बाक़ी दावत' आज के उच्च मध्यवर्ग के बदलते रीति-रिवाज़ और खान-पान की ओर ध्यान आकृष्ट करता है।

मध्यवर्ग की एक रीति है। चाहे मानो या न मानो। मध्यवर्गीय हमेशा गोरों (रंग) को अहमियत देते हैं। स्कूल, कॉलेजों में भी कुछ मध्यवर्गी गोरों के साथ रहने में अपना रुत्बा मानते हैं। यहाँ तक कि काले रिश्तेदारों को कम ही अपनाते हैं। यह भेद गोरे (अंग्रेज़) लेकर आए हैं।

इसका फर्क़ उच्च गोरे मध्यवर्ग ने विदेश जाकर पाया। अपने देश की अच्छी-खासी गोरी और गोरेपन पर इतराने वाली अमरीका चलकर खासी काली नज़र आती है। *'बड़ा सेब काला सेब'* की नायिका अच्छी खासी काली है। यहाँ मध्यवर्गीय नायिका ने भी बचपन से अपने काले रंग पर बहुत कुछ सुना है।

मध्यवर्ग का अंग्रेज़ी भाषा से लगाव स्वाभाविक है। मृदुला गर्ग के अधिकांश कथा-साहित्य में अंग्रेज़ी भाषा का प्रभाव देखा जा सकता है। अंग्रेज़ी भाषा के प्रभाव के साथ मध्यवर्ग में अंग्रेज़ी शिक्षा रीति का भी प्रभाव है। वे अपने बच्चों को अंग्रेज़ी माध्यमिक विद्यालयों में ही भेजना चाहते हैं। पाश्चात्य तौर तरीके सिखाते हैं ताकि आगे की ज़िन्दगी में वे सक्षम हो सकें। लड़की हो तो शादी के अनुकूल बन सकें। लड़का अच्छी नौकरी कर सकें। *'कितनी क़ैदें'* की मीना का पालन भी इसी तरीके से होता है। मध्यवर्गीय माँ को बेटी के ब्याह की चिंता लगी रहती है।

अंग्रेज़ों की अनुशासन प्रियता से आज का मध्यवर्ग घिरा हुआ है। टेबल मैनेर्स, दूसरों से बात करने का लहज़ा, चलना फिरना एक अलग ही शैली में आदि पाश्चात्य संस्कृति से प्राप्त हैं। *'वंशज'* में शुक्ला साहब भी अनुशासन के कायल हैं। इसीलिए सुधीर की हरकतों पर उसे हमेशा डाँटते रहते थे।

ऐसा डर खासकर उच्च मध्यवर्ग में रहता है। यही अनुशासनप्रियता मध्यवर्ग के घर-घर में आज देखी जा सकती है।

यहाँ यह बात साबित होती है कि शासक वर्ग की भाषा होने के कारण शिक्षित मध्यवर्ग का अंग्रेज़ी से लगाव स्वाभाविक था, जो आज भी बराबर है। उपर्युक्त वाक्य वेशभूषा और रहन-सहन की ओर भी इशारा करता है।

मृत्युबोध

मनुष्य अपने सपनों को पूरा करने के लिए क्या कुछ नहीं करता। परंतु इसकी परिणति अंततः मृत्यु ही है। मृत्युबोध मनुष्य को भविष्य के प्रति निराशा से भर देता है। मनुष्य में व्यर्थ होने का अहसास पैदा करता है। उसे लगता है कि कभी भी मृत्यु उसे धर-दबोच सकती है। मध्यवर्ग में यह बोध अधिक पाया गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के साहित्य में (भारत में) मृत्युबोध को अभिव्यक्ति मिली। हिन्दी साहित्य का मध्यवर्ग स्वतंत्रता से पूर्व तथा बाद के मोहभंग से परिचित है। वह ऐसी स्थिति का भोक्ता रहा है। मृत्युबोध उस समय के साहित्य का भाव एवं मर्म था। परिस्थितियों ने मृत्युबोध को और अधिक गूढ़ बना दिया था। मध्यवर्ग का वह डर आज भी कई रूपों में विद्यमान है। निर्मल वर्मा के शब्दों में "जब हम जवान होते हैं, हम समय के खिलाफ भागते हैं, लेकिन ज्यों-ज्यों

बूढ़े होते जाते हैं, हम ठहर जाते हैं, समय भी ठहर जाता है, सिर्फ मृत्यु भागती है, हमारी तरफ।"[1]

मध्यवर्ग के इसी मृत्युबोध को मृदुला गर्ग ने भी अपने कथा-साहित्य में उकेरा है। उनकी कहानियों में *'अगली सुबह'*, *'कितनी कैदें'*, *'डैफोडिल जल रहे हैं'*, *'स्थगित कल'*, *'उसकी कराह'*, *'ग्लेशियर से'* और उपन्यासों में *'वंशज'* एवं *'अनित्य'* मृत्युबोध का मर्म पेश करते हैं। *'कितनी कैदें'* में मीना घुटन और संत्रास का अनुभव करती है जिसका ज़िम्मेदार समाज है। उसका उसके ही दोस्तों द्वारा बलात्कार और अभिभावकों द्वारा दी गई यातनाएँ नए जीवन में मनोज के साथ खुश नहीं रहने देती। मनोज के प्रति अपने सभी राज़ लिफ़्ट में बंद मीना तब खोलती है जब उसे अहसास होता है कि आगे मौत उनका इंतज़ार कर रही है। इस मृत्युबोध ने उसे मनोज के साथ पूर्ण समर्पण करने के लिए प्रेरित किया। परंतु मृत्यु से लौट आने पर मनोज असमंजस में पड़ जाता है।

युद्ध दरअसल मृत्युबोध को और गहराता है। यदि वह दंगे हों तो और भी अधिक ग्रसित करता है। *'अगली सुबह'* में सभी पात्रों ने मृत्यु का आतंक झेला है। संतों आण्टी, अशोक, सबरजीत आदि ने दंगे को झेला है। संत्तोआण्टी ने भारत-विभाजन का युद्ध भी झेला था। संतो आण्टी

---

1. निर्मल वर्मा - दूसरी दुनिया - पृ. 267

में उस विभाजन का जो आतंक है उसी वजह से इंदिरागाँधी की मौत पर उमड़ पड़े दंगाइयों से अपने बेटे जैसे सबरजीत को बचाने के लिए लड़ पड़ती है।

एक अलग ही मृत्युबोध मध्यवर्गियों में जीवन के प्रति फैला है। जीते जी मरना इसी का नाम है। ज़िन्दगी जी कर भी मृत्यु का आभास कई मध्यवर्गियों के दिलों में होता है। मृत्युशय्या पर पड़े आदित्य भंडारी को यही अहसास होता है। *'जिजीविषा'* में आदित्य भंडारी मौत के नज़दीक है परंतु वह जीना चाहता है। अपनी पत्नी के लिए। कहानी बतलाती है कि मृत्यु से पहले मरने का भय हो जाने पर आदमी का विज़न काफी स्मृति बिम्बों से आच्छादित हो जाता है। *'मौत में मदद'* भी पास आती मृत्यु का ही बोध कराती है। बुद्धन अपने बेटे की मौत से दुःखी है। यह मृत्युबोध ग़रीबी के कारण है। आर्थिक तंगी और समय पर मदद न मिलने के कारण है। *'उसकी कराह'* में सुमीत की पत्नी सुधा का कैन्सर से पीड़ित होना तथा उसका कराहना उसका मृत्युबोध ही दर्शाता है।

मृत्युबोध जीवन और मृत्यु के बीच की स्थिति या भाव है। मृत्यु के समय यद्यपि जीवन की सारी आकांक्षाएँ व्यथाएँ समाप्त हो जाती हैं परंतु ज़िन्दगी का आकर्षण और उसे बनाए रखने की उत्कंठा उतनी ही गहरी होती है। डॉ. साधना शाह कहती हैं कि "मृत्यु का निरन्तर एहसास

ज़िन्दगी को अधिक चैतन्यमय बनाता है। इस एहसास के कारण ही व्यक्ति में अपने को बनाए रखने की छटपटाहट बनी रहती है। मृत्यु का एहसास जितना गहरा होगा ज़िन्दगी का आकर्षण और उसे बनाए रखने की उत्कंठा उतनी ही गहरी होगी।"[1]

मृदुला गर्ग ने मृत्युबोध का चित्रण *'डैफोडिल जल रहे हैं'* में भी सजीव रूप से किया है। यह हनीमून मनाने गुलमर्ग आए नव-दम्पत्ति की कथा है जहाँ उन्हें आइरिस, नर्गिस और डैफोडिल के फूल मिलते हैं। वहाँ पहुँच वीना का शरीर तेज़ बुखार से त्रस्त हो जाता है। उसकी तीमारदारी डॉ. फिरोज़ और जिना करते हैं। वीना बुखार के कारण अपने आप को मौत के करीब पाती है। डैफोडिल को भी जलता हुआ अनुभव करती है। जिना के प्रभावित व्यक्तित्व को देखकर जिना को लगता है कि कहीं यह सचमुच देवदूत तो नहीं। खिल्लनमर्ग में खुशमिज़ाज वीना और जिना बर्फ के नरम फैलाव पर खड़े हँसते हैं। बाई तरफ की बर्फ की खड़ी खाई की तरफ जानबूझ कर जिना हँसते-हँसते गिर पड़ती है। वह जानबूझकर खिल्लनमर्ग के गहरे खड्ड में आत्महत्या करती है। जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण ही उसे ऐसा करने पर मजबूर करता है। जिना की मौत के बाद वीना को उसका खत मिलता है। उसमें लिखा था कि

---

1. डॉ. साधना शाह - नई कहानी में आधुनिकता बोध - पृ. 71

"दरअसल खूबसूरत सिर्फ ज़िन्दगी होती है पर मौत उसका हिस्सा ज़रूर बन सकती है। जानती हो जब कोई आदमी ज़िन्दगी से बहुत बहुत प्यार करता है तो उसके लिए मरना बहुत बहुत आसान हो जाता है।"[1]

मध्यवर्ग के जीवन और मृत्यु की दार्शनिक चर्चा, मृत्यु की सच्चाई, उसकी भयावहता, जीवन जीने की कामना आदि बातों को *'स्थगित कल'* में मृदुला जी ने प्रस्तुत किया है। प्रवीण अपने असाध्य रोग की झूठी अफवाह और संभावित मृत्यु की आशंका फैलाकर अपने मित्र और पत्नी का व्यवहार परीक्षण करता है कि उन पर उसकी आगत मृत्यु की बात सुनकर क्या परिणाम होता है। मृत्युचेतना के आधार पर दोस्त की दोस्ती और पत्नी के प्यार का जायज़ा लिया गया है। जीवन तो सभी जी लेते हैं परंतु मृत्यु की भयावहता को महसूस करते हुए संबंधों को जाँचना इस कहानी का मूलस्वर है। प्रवीण के ज़रिए लेखिका ने अपने मृत्यु संबंधी विचार प्रकट किए हैं - "दूर खड़ी मौत को देखकर लहकते रहना एक बात है और उसे सीने से लगा पाना बिलकुल दूसरी।"[2]

आर्थिक दृष्टि से विपन्न विपिन साइकिल पर क्लिनिक जाते वक़्त समय पर दवाई के अभाव के कारण चक्कर खाकर गिर जाता है

---

1. मृदुला गर्ग - स्थगित कल - डैफ़ोडिल जल रहे हैं - पृ. 88, 89
2. मृदुला गर्ग - डैफ़ोडिल जल रहे हैं - स्थगित कल - पृ. 93

और वह सोचता है कि यदि वह ज़िन्दा रहा तो प्रवीण को रुपये वापस कर देगा, अपनी दोस्ती को कल तक स्थगित नहीं रखेगा। मरते हुए विपिन चीखता है कि कौन उसके बीवी बच्चों की देखभाल करेगा प्रत्युत्तर में प्रवीण उनकी ज़िम्मेदारी लेता है। अतः कहानी मृत्युबोध से भरी पड़ी है। उसी तरह *'ग्लेशियर से'* में मिसेस दत्ता को सोनमर्ग के ग्लेशियर देखने सपनों में ले गया पठान मौत का फरिश्ता लगता है।

मृत्युबोध की छवि *'अनित्य'* एवं *'वंशज'* उपन्यास में द्रष्टव्य है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का मोहभंग एवं स्वतंत्रता से पहले की स्थिति के खिलाफ निडर होकर निकल पड़ी शोभा, सरण जैर चड्ढा जैसे लोग मृत्यु को पास पाकर भी डरते नहीं है। उन्हें मालूम है कि उनकी नियति मृत्यु है। फिर भी वे लड़ते रहते हैं। उसी प्रकार *'वंशज'* भी आज़ादी के दौर का चित्रण करता है। गाँधीजी की मृत्यु की ओर इंगित करता है। अतः ये दोनों उपन्यास मृत्युबोध से युक्त हैं।

मोहभंग आज़ादी के बाद और पहले लोगों में फैली हुई थी। लोग मृत्युबोध से ग्रसित थे। *'अनित्य'* उपन्यास में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की स्थिति से ऊबे अनित्य, प्रभा जैसे पात्र पुनः क्रान्ति पर उतर आते हैं। लोगों में फिर एक मृत्युबोध पनपता है। क्लब में हथियार लेकर आना आदि। आज का मध्यवर्ग इस मृत्युबोध से ग्रसित है। मृदुला जी कहती हैं

कि 1942 की अगस्त क्रान्ति, 1943 का बंगाल का अकाल 1947 में स्वाधीनता का मिलना, उसके तुरन्त बाद के दंगे तथा बाद के वर्षों की मोहभंग और मूल्यहीनता की स्थिति, सब पर इस तरह से संघ में बहस होती थी जैसे सब हमारे घर में घटित हो रही घटनाएँ हों। लोगों में यह भावना दंगों और काट-छाँट की प्रतिक्रिया के कारण बढ़ती जा रही है। केरल में कण्णूर प्रांत इस ख़ून-खराबे का अखाड़ा है। जहाँ मध्यवर्गी ही सुधार चाहते हैं। अपने हिसाब का अखाड़ा।

'वंशज' में गाँधीजी की हत्या पर पूरा माहौल दुःख और मोहभंग में ग्रसित था। 1942 की राजनीतिक गतिविधियाँ आज़ादी के बाद भी अंग्रेज़ों के हितैषी लाठियों, कानूनों और बंदूकों का प्रयोग करने वाले नई हुक़ूमत के पहरेदार बन गए। यहाँ फिर से मोहभंग की स्थिति पैदा होती है।

प्रवास का आग्रह

अधिकांश मध्यवर्गी देश छोड़ विदेश जाकर बसते नज़र आते हैं। ऐसा वे आर्थिक अभाव के कारण ही करते हैं। आर्थिक तंगी की वजह से उन्हें काफी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आर्थिक संघर्ष बढ़ जाने तथा महँगाई बढ़ने से अधिक पैसों की माँग मध्यवर्गीय परिवार चाहता है ताकि वे उसी रुत्बे के साथ जी सकें जैसे पहले जिया करते थे। मृदुला गर्ग की कहानी *'उर्फ सैम'* मध्यवर्गीय सावन प्रताप सिंह के प्रवास जाने की

कथा कहता है। जब तक वह अपने देश में था उसे कोई पूछता तक नहीं था परंतु अमरीका जाते ही उसकी बड़ी इज़्ज़त होती है। उसका विवाह भी आशारानी से होता है। अधिकांश मध्यवर्गी अपने देश वापस लौटकर आना चाहते हैं यही कारण है कि वे विवाह भी यहीं पर करते हैं। सवान प्रताप अपने पिता से कहता है - "“मुझे अपनी जड़ों से मत काटिए। हिंदुस्तान लौट पाने के तमाम दरवाज़े बंद मत कीजिए। यह मकान होगा तो मुझे लगेगा, हाँ मेरे देश में मेरा नाम सुरक्षित है। अपनी तरफ़ खींचेगा यह हर पल मुझे। वरना समझ लीजिए, एक तरह से मैं मर गया।”"[1]

यहाँ प्रवासी मध्यवर्ग की विडंबना दिखाई देती है। विदेश में अपनी मज़बूरी की वजह से रहते हैं। यदि उन्हें हिंदुस्तान में वह सुरक्षा मिलती तो वे हरगिज़ विदेश न जाते। प्रवासी मध्यवर्ग में अंग्रेज़ी भाषा को लेकर लगाव होता है। वे भारत आकर भी उसी भाषा में बात करते हैं। परंतु दिल के किसी कोने में मातृभाषा से लगाव रहता ज़रूर है।

मध्यवर्ग भारत छोड़ विदेश जाने का आग्रह भारत में बढ़ते भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी के कारण भी करते हैं।

‘एक और विवाह’ की मध्यवर्गीय महिला कोमल, प्रवासी मदन से व्यवस्थित विवाह करती है। विवाह के मामलों में मध्यवर्गी लड़कियों का

---

1. मृदुला गर्ग - दस प्रतिनिधि कहानियाँ - उर्फ सैम - पृ. 87

विदेशी भारतीयों से शादी करने की ललक देखी जा सकती है। ऐसा आर्थिक सुरक्षा के कारण ही होता है। विदेशी-भारतीय केवल भारत की बुराई और अमरीका की अच्छाई मात्र नहीं करते बल्कि विदेशी सामान का भ्रम भी दिखाते हैं। परंतु व्यंग्य की बात है कि देशी माल ही दुगुनि कीमत पर विदेश से खरीदते हैं। कोमल द्वारा सहेली का किस्सा कहना यह बात व्यक्त करता है।

यही किस्सा *'उर्फ सैम'* में सावनप्रताप सिंह के साथ भी होता है। भारतीय विदेशी माल से इतने प्रभावित होते हैं कि वहाँ की फुटपाथ का माल भी लार टपकाती नज़रों से देखते हैं। विदेशी भारतीय कभी अपने उस देश के बारे में गलत-सलत नहीं कहते। क्योंकि उनका रुत्बा उसी देश से होता है। परंतु मन ही मन जानते हैं कि भारत का सामान ही पुनः खरीदा जा रहा है।

विदेशी भारतीय जब भी भारत में लौटते हैं तो अपना धौंस साथ लेकर आते हैं। वे वहाँ की तारीफ़ और अपने देश की हर बात पर इल्ज़ाम लगाते हैं। भारत अमरीका जैसा विकसित देश नहीं। भारत से गया और भारत में लौटा विदेशी भारतीय लौटने के पश्चात उन्हीं के तौर तरीकों को अपनाता है। भारतीय मध्यवर्गीय पुत्र पिता के सामने ऊँची ज़ुबान में बात नहीं करता परंतु अमरीका से आए पुत्र खुद को उनसे अधिक सभ्य

समझते हैं। *'लौटना और लौटना'* का हरीश अमरीका से लौटकर भारत आया है। पर अपने घर की सुविधा से खुश नहीं है। वह अपने पिता से भी अपनी शादी की बात खुलकर करता है। वह कहता है कि लड़की सेक्सी होनी चाहिए और डॉक्टर भी। ऐसी बातें कहने में विदेश से लौटे भारतीय नहीं झिझकते।

कुछ मध्यवर्गी नौजवान जहाँ तहज़ीब भूल जाते हैं वही कुछ ऐसे भी हैं जो अपना देश याद करते रहते हैं। परंतु कोई भी मध्यवर्ग पूरी ज़िन्दगी वहाँ रहना नहीं चाहता। हरीश भी वापस आना चाहता है।

मध्यवर्गीय विदेशी लगाव 'करियर' के लिए भी होता है। *'मेरा'* कहानी में मनोज अपना करियर वहाँ जाकर 'ब्राइट' समझता है। परंतु वहीं *'बर्फ बनी बारिश'* की बिन्नी अपने पति के साथ वहाँ नहीं जाना चाहती। परंतु अमर अपने बेटों के साथ वहाँ चला जाता है। उसे भी वहीं अपना जीवन सुरक्षित लगता है। बिन्नी अमेरिका के लालच में देश छोड़ भागने वालों के खिलाफ है।

आँकड़ों पर ध्यान दें तो भारत की आधी जनसंख्या विदेशों में बसती है। विदेशों में व्यक्ति कल पुर्ज़ों से रॉबटों की भांति बटन दबाकर काम किए और कराए जा रहे हैं।

'छत पर दस्तक' का सुधीर विदेश में अपना करियर बनाने गया है। विदेशी लड़की से शादी कर वहाँ का सिटिज़न बन जाता है। वहाँ के तौर तरीकों में जीकर विदेशियों की तरह सुस्त हो गया है। विदेशी भारतीय भी प्राइवेसी के पीछे भागते हैं।

विदेशी भारतीय कभी वहाँ पूरी इज्ज़त से नहीं जी पाते। वहाँ उन्हें दोयम दर्जे का ही स्थान मिलता है। *'बड़ा सेब काला सेब'* की लेखिका के साथ दुर्व्यवहार आज के 'रेसिज़म' से मेल खाता है। ऑस्ट्रेलिया आदि जगहों पर भारतीयों पर हो रहे रेसिज़म। अतः प्रवासी भारतीय अंतिम समय लौटना तो यहीं चाहते हैं पर आर्थिक महत्वाकांक्षा, अर्थ-लोलुपता और आर्थिक शोषण के कारण विदेश जाते हैं। मृदुला जी की कथाओं से पता चलता है कि 'अर्थ' ही सबके पीछे की कड़ी है। यही कारण है कि विदेशी भारतीय पैसा कमाने के लिए प्रस्थान करते हैं।

अकेलापन / अजनबीपन

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में महानगर के प्रति अपरिचय या अकेलापन दिखाई देता है। इसका कारण सिर्फ महानगरीय यांत्रिकता, संवेदनहीनता, तटस्थता या कृत्रिमता ही नहीं है, इसका बहुत बड़ा कारण संयुक्त परिवार का टूटना भी है। पिछली पीढ़ी के प्रति घृणा, अविश्वास और पारस्परिक अपरिचय-अनिश्चय कथा-साहित्य के मुख्य विषय हैं। सभी

संबंधों से टूटा व्यक्ति अजनबी और अकेला होता चला गया। हमारे देश की मानसिकता अतिपरिचय से ऊबी हुई है। उसी के कारण अतिशय का परिणाम अपरिचय की ऐच्छिक मनोदशा है। इसलिए हमारा अपरिचय या अजनबीपन इस अति-परिचय के कारण ही है। अजनबीपन का एक कारण व्यवहार में कृत्रिमता भी है। नापसंद लोगों से भी व्यक्ति आवश्यकता पड़ने पर मेलजोल बढ़ाता है। ऐसी कृत्रिमता मध्यवर्ग में खूब देखी जा सकती है। अपनी कुंठित मानसिकता के कारण माध्यवर्ग अपने में सीमित तथा अकेला है। मृदुला गर्ग के कई मध्यवर्गीय पात्र अपने चारों ओर अलग दायरा बनाकर रखते हैं, जिसके बाहर निकलना वे नहीं चाहते। *'अलग अलग कमरे'* का हर पात्र प्राइवेसी और अकेलेपन में जीना चाहता है। डॉ. नरेन्द्र देव, उषा, आशा आदि सभी उस अकेलेपन के दायरे से बाहर निकलना नहीं चाहते। डॉ. नरेन्द्र के सभी बच्चे अपनी माँगों के पूरा होते ही दूसरी माँग शुरु कर देते हैं। इन्हीं माँगों का जब-तब पूरा होने के कारण उन्होंने अपना अलग-अलग दायरा बना लिया।

मध्यवर्ग का यह अकेलापन थोपा हुआ नहीं है। यह उनके अंतरंग में घुला हुआ है। *'यह मैं हूँ'* की रेडियो स्टेशन में काम करनेवाली सरल कॉलरा यद्यपि सबसे हँसी मज़ाक करती है पर अंदर ही अंदर अकेलेपन में जी रही थी। वह खुद अपने लिए इतनी अजनबी थी या

अजनबी होने का नाटक कर रही थी कि अपना ही असली चेहरा चित्र में पहचान नहीं पाती। वह प्रीती से पूछती है - "यह मैं हूँ?"[1]

आज भी मध्यवर्ग में यह अजनबीपन विद्यमान है। उसकी व्यस्तता उसे खुद को देखने का भी वक़्त नहीं दे रही। वे कृत्रिमता की आड़ में जिए जा रहे हैं। *'विलोम'* कहानी की नायिका सोलह साल बाद बंबई लौटी है। इतने वर्षों बाद बंबई सैंट्रल पर उतरकर वह अपने आप को अजनबी महसूस करती है। 'गेट वे ऑफ इंडिया' में अपने प्रेमी के साथ उसने कई शामें गुज़ारी थीं। प्रेमी के अपने देश चले जाने पर नायिका ने अपना बचाव किया और महसूस किया कि हम सब अभिमन्यु के विलोम हैं। खुद के ह्रास से डरते हैं। विरासत में ऐसी उदासीनता हमें मिली है कि जीवन के हर मोड़ पर हमें चक्रव्यूह में घुसने से रोके रखती है। कहानी की नायिका अब निपट अकेली है। मध्यवर्ग पास आते अकेलेपन से डरता है। यही वजह है कि लगे दिन कुछ न कुछ जुटा लेता है। मृदुला जी के *'बीच का मौसम'* में गुज़रते दिनों और नज़दीकी बुढ़ापे के अकेलेपन की त्रासदी का विषय रूप प्रस्तुत है। इसी अकेलेपन का स्वरूप कहानी की उन्मुक्त स्त्रियों के समक्ष भी आता है। क्षिप्रा, पम्मी, राजश्री और माया सभी किसी न किसी रूप में अकेलेपन के शिकार हैं।

---

1. मृदुला गर्ग - स्त्री मन की कहानियाँ - यह मैं हूँ - पृ. 135

मध्यवर्ग के अकेलेपन को नए आयाम और उपमानों में बाँधकर लेखिका ने *‘इक्कीसवीं सदी का पेड़’* के माध्यम से व्यक्त किया है। कहानी में पेड़ अपने प्रिय पेड़ों से बिछुड़ते चले गए। कई दूरी पर भी एक पेड़ नज़र नहीं आता। “जैसे जैसे सड़कों को चौड़ा और इमारतों को ऊँचा करता वक़्त गुज़र रहा था, एक नयी शै हवा में घुलने लगी थी। अनचीन्ही सी बू। अकेलेपन की सदी के शुरु में कोई अकेलेपन का नाम लेता तो पेड़ फ़ौरन कहता पेड़ भी कहीं अकेले होते हैं।”[1]

मध्यवर्ग भी इन पेड़ों की भाँति अकेला होता जा रहा है। जब संयुक्त परिवार हुआ करता था तब किसी ने नहीं सोचा था कि इंसान एक दिन अकेले जीना पसंद करेगा या पसंद करना पड़ेगा। लोग अपने प्रिय बंधुओं से बिछुड़ कर अकेले बसना चाहते हैं। आधुनिक सभ्यता और संस्कृति ने उसे अकेले रहने पर मजबूर कर दिया है। व्यस्तता में दौड़ते व्यक्ति दौड़ कर भी मंज़िल तक पहुँच नहीं पाते। इस दौड़ में कई शामिल हैं पर कोई किसी की मदद नहीं करता। सबको अपना रास्ता खुद तय करना पड़ता है। पेड़ देखता है कि “दौड़ने का चलन नया है। पहले लोग कितने भी फ़ुर्तीले क्यों न हों, चाल को दौड़ में नहीं ढ़ालते थे। अब भी काम पर जाने वाले लोग नहीं दौड़ते। दौड़ते वहीं है जो महज़ दौड़ने को

---

1. मृदुला गर्ग - दस प्रतिनिधि कहानियाँ - इक्कीसवीं सदी का पेड़ - पृ. 102

निकलते हैं। बस पकड़ने वालों को छोड़ कर। मृदुला गर्ग ने मध्यवर्ग द्वारा ही ज़बरदस्ती अपनाए हुए मध्यवर्गीय अकेलेपन पर व्यंग्य किया है।

मध्यवर्ग की स्त्रियाँ जो घरेलू हैं एक नए ही अकेलेपन में जी रही हैं। आई.टी. कंपनियों में काम करने वाले रात को आठ-नौ बजे तक वापस आते हैं। इस स्थिति से हम सब परिचित हैं। आज का माहौल ही कुछ ऐसा है। लोग अपने काम में इतने मसरूफ रहते हैं कि किसी दूसरे से बात करने का अवसर ही नहीं निकाल पाते। ऐसी स्थिति में घर की चहारदीवारी में स्त्रियाँ अकेलापन ही भोग रही हैं। आज इस अकेलेपन को पाटने के लिए टेलीविज़न इंटरनेट आदि हाज़िर हैं किंतु भावना तो अपनों से जुड़ी होती है। इसी खालीपन को *'खाली'* की निर्मला बयान करती है।

मध्यवर्ग में खुद की कमी को छिपाने की आदत होती है। अंदर का संत्रास एवं अकेलेपन की विडंबना कभी बाहर नहीं आती। असल में पुराने दोस्त एक दूसरे से अपरिचित हैं। उनका यह अजनबीपन आधुनिक ज़माने की सच्चाई है। महानगरीय आग्रह मध्यवर्ग में पहले से मौजूद था और आज की तारीख में इसका असर बढ़ता ही जा रहा है। इस महानगर की ओर प्रस्थान अजनबीपन और अकेलेपन का कारण भी बनता जा रहा है। *'लिली ऑफ दि वैली'* की निशी अपनी कुंठा, अपने जिगरी दोस्तों से छिपाती है। शराबी पति और दांपत्य का अधूरापन अपनी साड़ी से और

होठों की मुस्कुराहट से ढाँक लेती है। वास्तव में वह अंदर ही अंदर घुट रही है, अकेली है।

मध्यवर्ग का अधिकांश सदस्य एक दूसरे से अजनबी है। वहीं वह अकेला भी है। *'झूलती कुर्सी'* की शेफाली अपने इसी अकेलेपन को बयान करती है। वह किसी का इंतेज़ार कर रही है। यह एक फैंटसी के माध्यम से प्रस्तुत है जिसमें उसे लगता है कि कोई अजनबी उसे रैबल मिलने के लिए बुला रहा है। वहाँ पहुँचकर उसे केवल पुराने दोस्त मिलते हैं। घर वापस आकर पुनः झूलती कुर्सी में बैठकर फोन का चोंगा साथ रख बालकनी से आते-जाते चेहरों में उस अजनबी का चेहरा ढूँढती रही है कि शायद फोन फिर से बज उठे या फिर वह आ ही जाय।

'छत पर दस्तक' में नलिनी का बेटा अमरीका में अपने आने वाले अकेलेपन से डर रहा है। इसीलिए माँ से वह हिंदुस्तान में अपना कुछ इन्वेस्ट करने की बात करता है। लगभग सभी मध्यवर्गी जो विदेश में हैं इस डर से पीड़ित हैं। उनकी अनेक कहानियों में अमरीका का ज़िक्र है।

मध्यवर्गीय स्त्रियों के अकेलेपन का कारण कुछ हद तक समाज भी रहा है। मध्यवर्गी मीना (कितनी कैदें) घुटन में जी रही है। कारण है मध्यवर्ग द्वारा पाश्चात्य रीतियों के पीछे अंधाधुंध दौड़। मीना के बलात्कार से वह खुद को भी पहचान नहीं पाती। मृदुला जी ने मध्यवर्गीय

अकेलेपन को अपने उपन्यासों में भी खूब सजाया है। उनके उपन्यास उनकी पूँजी हैं। इसी से उन्हें नाम मिला है।

'उसके हिस्से की धूप' में जितेन की व्यस्तता मनीषा और जितेन के बीच अजनबीपन की भावना पैदा कर देती है। ऐसा अक्सर होता है कि जब पति अपने काम में इतना मसरूफ़ रहता है तो पत्नी में अजनबीपन पैदा होता है। मनीषा खुद को अकेला महसूस करती है और अपनी दोस्त सुधा के माध्यम से मधुकर से परिचित होती है। अक्सर मध्यवर्गी स्त्रियों में कुछ अपने अकेलेपन को भूलने के लिए ही नौकरी करती हैं। और इसी अकेलेपन के कारण बच्चे की चाहत भी रखती हैं। यहाँ मनीषा भी अपने अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए व्यस्त रहना चाहती है। इसलिए नौकरी करती है। वह बच्चे के बारे में सोचती है।

'वंशज' में भी सुधीर का अकेलापन उसके उसूलों के कारण पनपता है। उसे लगता है कि घर में उससे कोई प्यार नहीं करता। जो रेवा उससे प्यार करती थी शादी के बाद अपने पति और बच्चों की हो गई है। सुधीर का अकेलापन वास्तव में बच्चों को बचपन में अधिक लाड-प्यार न मिलने ही वजह से ही था। *'कठगुलाब'* में सभी स्त्री-पात्र अकेलेपन में जी रहे हैं। नीरजा, स्मिता, असीमा, दर्जिन बीबी आदि। परंतु अंततः वे अपना अकेलापन बाँट लेती है। खुद खुशहाल हो जाती हैं। वास्तव में मध्यवर्गी

स्त्रियों में माँ बनने की अमिट लालसा रहती है जिससे उनका अजनबीपन और अकेलापन खत्म हो जाएँ। इस उपन्यास में सभी स्त्री पात्र यह आग्रह रखते हैं। यहाँ तक कि पुरुष पात्र 'विपिन' भी यही चाहता है। परंतु सभी अकेलेपन में ही जीते हैं। दर्जिन बीबी असीमा से कहती है - "मैंने तेरे पिता से बहुत-बहुत प्यार किया था। इसलिए खंडित मूर्ति को स्वीकार नहीं कर पाई। जब वे नहीं रहे तो मन में बसे सम्पूर्ण से ही प्यार करती गई। पर..... साथ मिल पाता तो.....।"[1] *'मिलजुल मन'* में मोगरा और उसकी माँ हमेशा अकेले रहना पसंद करती है।

'अनित्य' का पात्र अनित्य परिचित होने पर भी अजनबी है। अंत में पता चलता है कि वह अविजित का ही प्रतिरूप है। अविजित उपन्यास का नायक है और अकेलेपन में घिरा है। पत्नी श्यामा बीमार है। उसका अंतरंग व्यक्तित्व उसे अपराध बोध से घेर लेता है। वह काजल बेनर्जी के साथ किए बर्ताव पर शर्मिदा है। उसे इस बात का संतोष है कि वह घटना घटी नहीं। अनित्य अविजित से कहता है - "बात यह है भाई साहब मैं जानता था आप सिर्फ ऐसी औरत से प्यार कर सकते हैं, जिन पर ऊँचाई से कृपा दृष्टि डाल सके। काजल का व्यक्तित्व आपसे बड़ा है।"[2]

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 182
2. मृदुला गर्ग - अनित्य - पृ. 58

जीवन मूल्यों का अवमूल्यन

पीढ़ियों का अंतर मध्यवर्ग में पुराने मूल्यों को स्वीकारने से रोकता है। पुरानी पीढ़ी चंद आचार को अहमियत देती है। जिनमें बड़ों के सामने बच्चों का मुंह बंद रखना, अपनी शादी की बात आप न करना, बड़ों का आदर, हर काम करने से पहले पिता से पूछना, साथ रहना इत्यादि शामिल हैं। परंतु इन मूल्यों का अवमूल्यन आज की पीढ़ी करती है। ऐसा महानगर की तरफ उनके बढ़ते कदम और पाश्चात्य संस्कृति के असर के कारण होता है। पिता-पुत्र में दोस्ताना व्यवहार है। बच्चे अपनी होनेवाली पत्नी के सेक्सी होने की बात तक पिता से करते हैं। उनका तौर तरीका बच्चों को पसंद नहीं आता। *'लौटना और लौटना'* का हरीश अपने पिता से डॉक्टर वधु की माँग करता है और साथ में ज़ोर देकर कहता है कि लड़की काली गोरी कुछ भी चलेगी पर सेक्सी होनी चाहिए। उसी प्रकार इस महानगर की सभ्यता का असर मृदुला जी की *'दुनिया का कायदा'* में भी खूब विद्यमान है। रक्षा के बर्थडे पर उसे तोहफा देने के लिए मिस्टर मेहता के साथ उसी को डान्स कराने पर पति मजबूर करता है। पहले तो पत्नियों को सहेजकर रखा जाता था। उसकी ओर कोई आँख उठाकर देखे तो पति भड़क जाया करता था। परंतु आज का उच्च मध्यवर्ग पत्नी को दाँव पर रखकर उसी के लिए तोहफा खरीदता है। रक्षा से उसका पति कहता है कि

उसने आज बड़ा काम किया है वह भी नहीं चाहता था कि उसकी चीज़ को कोई हाथ लगाए। पर क्या करें मि. मेहता के पास उसका काम अटका पड़ा था। उसी तरह *'अलग-अलग कमरे'* में डॉ. सुरेन्द्र देव का अपने पिता को फालिज़ (Fix) पड़ने पर उनकी जगह लेना और उनके मरीज़ों को पैसों के बल पर तौलना तथा पिता को चुप कराना द्रष्टव्य है। पिता पर हुकूमत करने वाले नौजवान मध्यवर्ग में दिखाई पड़ते हैं। उसी तरह उनके उपन्यास *'वंशज'* में पीढ़ियों का अंतर सुधीर और जज शुक्ला साहब के माध्यम से दिखाया गया है। जहाँ बेटा अपने पिता से विद्रोह करता है। उनके अंग्रेज़ी अनुशासन से बाहर निकलना चाहता है। वहीं सविता द्वारा जायदाद में हिस्से के लिए प्यार का झूठा स्वांग ससुर और बेटे से रचना आज के अर्थलोभी मध्यवर्ग की ओर इशारा करता है। उनके उपन्यास *'अनित्य'* में भी भ्रष्टाचार जैसे अवमूल्यन दिखाए गए हैं। चड्ढा आज़ादी के दौर से अपने उसूलों पर कायम है। परंतु सरण पूरी तरह बदल चुका है। गाँधीवाद का 'स्टिकर' टोपी पहने आज वह कमा रहा है। टेंडर पास करा रहा है। अविजित का बेटी की उम्र की अपनी आश्रिता संगीता पर बुरी नज़र डालना जीवन मूल्यों का अवमूल्यन ही दर्शाता है। *'चित्तकोबरा'* में पति के रहते किसी दूसरे के पति से शारीरिक संबंध, बदलती मानसिकता एवं मूल्यों को जताता है। 'मनु' रिचर्ड से प्रेम करती है और उसके साथ शारीरिक संबंध भी स्थापित करती है।

अहं बोध से मूल्यों में गिरावट आती है तो अपराध बोध भी साथ ही जन्म लेता है। अधिकांश मध्यवर्गी अपराध बोध से घिरे होते हैं। वे चारों ओर होती लापरवाही, अत्याचार, अन्याय, शोषण से आगाह हैं। इन सब के प्रति द्वेष होते हुए भी इनकी ख़िलाफत नहीं कर पाते। मूल्य पालते हुए भी मूल्यों का अवमूल्यन करते हैं। विद्रोह का आग्रह तो है पर कर नहीं पाते। अपने आप को ख़तरे और झंझटों से सुरक्षित रखना चाहते हैं। यदि कोई ऐसे मसलों में सिर खपाता है तो उसे पागल करार दिया जाता है। कुछ ऐसा ही पागल है *'मैं और मैं'* उपन्यास का निम्न मध्यवर्गीय कौशल कुमार। समाज की बुराइयों के प्रति उसमें आक्रोश है और इसी आक्रोश को मनीषा के प्रति प्रकट करता है। मध्यवर्गी मनीषा में भी विरोध करने का आग्रह है। पास में हुई चोरी के लिए नौकर को दोषी ठहराना और उसे जेल में डाल देना तथा उसकी मौत आदि पर मनीषा में अपराध भावना है कि वह कुछ कर नहीं पाई। अपने जिन मूल्यों को लेखिका के तौर पर साहित्य में रचती है, ज़िन्दगी के सामने उन्हीं मूल्यों से मुँह मोड़ती चली गई। *'नकार'* कहानी इसी उपन्यास का कहानी रूप है। *'कठगुलाब'* में एक बहन द्वारा बहन के बलात्कार में भागीदारी अच्छे-सच्चे मूल्यों की गिरावट को दर्शाता है। स्मिता का उसके जीजा के द्वारा बलात्कार उसकी बहन की साझीदारी से होता है। उसी प्रकार नाबालिक नमिता का उसकी बहन के रहते बहन के ही पति से शादी काफी भयानक है। असीमा के भाई के साथ

स्मिता की बहन नमिता का अवैध संबंध मूल्यों का ह्रास चित्रित करता है। विपिन का स्मिता, असीमा, और नमिता की बेटी के साथ अपने पिता बनने का आग्रह जताना भी पुराने मूल्यों को तोड़ता है। अतः मूल्यों का अवमूल्यन उनके कथा-साहित्य में द्रष्टव्य है।

'अनित्य' में जिन मूल्यों को लेखिका बयान करना चाहती थी वह काजल बेनर्जी के माध्यम से बाहर आता है। यहाँ पति-पत्नी के जीवन मूल्यों का अवमूल्यन अविजित के माध्यम से प्रस्तुत है। आज़ादी के बाद के जिन मूल्यों की प्रतिष्ठा का सपना देखा था उन मूल्यों को टूटते हुए ये पात्र देखते हैं। इन मूल्यों को बचाने की ओर प्रस्थान करने वाले हैं - अनित्य, शुभा, काजल बेनर्जी आदि लोग। चड्ढा जैसे लोग तो अपने मूल्यों को पकड़कर अब भी जी रहे हैं। परंतु सरण, अविजित इन्हीं मूल्यों के ह्रास के कारण हैं।

'वंशज' में सुधीर पुराने मूल्यों और परंपराओं को तोड़कर रेवा को भी जायदाद में हिस्सा देना चाहता है जो पत्नी सविता और उसका भाई अतुलदेव होने नहीं देता। सुधीर कोयला बांध के कारखाने में मज़दूरों की मदद करना चाहता है पर वहाँ के ठेकेदार उसके मूल्यों को कुचल देते हैं और उसे पागल करार देते हैं। आज भी मध्यवर्ग में मूल्यों के लिए लड़ने वाला पागल ही कहलाया जाता है। *'मैं और मैं'* में कौशल कुमार जिन

मूल्यों की बात करता है वह अपने जीवनानुभवों से प्रेरित होकर करता है। परंतु खुद ही उन मूल्यों को तोड़ता है। किसी और की ज़िन्दगी में खलबली मचाकर। वह कहता है "सिर्फ बड़ी मछलियाँ ही छोटी मछलियों को नहीं खातीं। कभी-कभी कमज़ोर मासूम दीखनेवाली छोटी मछलियाँ भी मिलकर बड़ी मछली को खा जाती हैं। घात लगाकर नहीं। बस अपने होने के वजूद से।"[1]

कौशल कुमार को सर्वहारा वर्ग पर हो रहे अन्याय के खिलाफ आक्रोश है। क्योंकि वह उसका भोक्ता है पर वह माधवी के साथ भी मानसिक तौर पर अत्याचार ही कर रहा है।

जीवनमूल्यों का अवमूल्यन *'कठगुलाब'* में नमिता और उसके जाति द्वारा दिखाई देता है। मध्यवर्गीय साली के प्रति आधी घरवाली की दृष्टि रखने वाले जीजा काफी मिलते हैं। तभी अधिकांश मध्यवर्गी घराने में लड़कियों की जल्दी शादी करा दी जाती है। यहाँ माँ-बाप की मौत के बाद स्मिता अपनी दीदी और जीजा के साथ अपने ही घर में रह रही है। वहाँ जीजा उस पर बुरी नज़र डालता है। यहाँ मूल्यों का ह्रास द्रष्टव्य है। वह जवान लड़को से पेग पीते हुए कहता है - "यह मेरी साली है स्मिता.... (फुसफुसाकर) साली आधी घरवाली... हा-हा-हा... पर अपनी बीबी,

---

1. मृदुला गर्ग - मैं और मैं - पृ. 41

कयामत की नज़र रखती है। मजाल है जो हमारी इधर-उधर फिसल जाए, क्यों स्मिता?"[1]

दर्जिन बीबी और असीमा भी मध्यवर्गीय युवतियों में से ही है। असीमा के पिता ने दूसरी शादी कर ली। ऐसा ही होता है, शादी के बाद स्त्री अपने घर में पराई हो जाती है। और पति का घर किसी भी वक़्त उससे छिन्न सकता है। ऐसी नियति केवल स्त्री की होती है। असीमा कहती है - "पर मेरी माँ ने पति का नाम छोड़ा कब? पति को ही कब छोड़ा? वह अपने फायदे के लिए कब लड़ी? वह तो एक अमूर्त सिद्धांत के लिए.... नहीं, वही उसका संपूर्ण अस्तित्व था, उसका स्वाभिमान। उसके लिए लड़ी तो ठीक किया पर फायदा.... अरे, मारो गोली। यह तर्क विज्ञान माँ के साथ नहीं चलता।"[2] मध्यवर्गीय स्त्रियाँ दृढ़ ज़रूर होती हैं। परंतु अंदर ही अंदर पति या परिवार से अलग होना नहीं चाहतीं।

'चित्तकोबरा' में मनु का अपने पति महेश को छोड़ रिचर्ड से प्रेम जीवन-मूल्यों का ह्रास ही द्योतित करता है। उसी तरह *'उसके हिस्से की धूप'* की मनीषा का जितेन को छोड़ना भी यही ज़ाहिर करता है। ज़रा से तनाव में यदि पति बदला जाने लगा तो मूल्यों का क्या होगा? आगे

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 14
2. वही - पृ. 162

आनेवाली पीढ़ी इन्हीं बदलती, घिन्न मूल्यों को अपना लेगी। किसी में कोई आदर नहीं रह जाएगा। अतः मृदुला गर्ग ने मध्यवर्ग में पनपती जीवन-मूल्यों की अवमानना को प्रस्तुत किया है और इन्हें रोकने की माँग नौजवानों से की है।

निष्कर्ष : मृदुला गर्ग ने मध्यवर्ग के यथार्थ का विश्लेषण सधे हुए शब्दों में बेहतर ढंग से किया है। उन्होंने व्यक्त किया है कि मध्यवर्ग दुनिया के किसी भी कोने से अछूता नहीं है। उसमें डर भी है, विश्वास भी। हौसला भी है, स्वार्थीपन भी। आस्था भी है, अनास्था भी। कोशिश भी है, ऊब भी। वह सबके साथ होते हुए भी अकेला है। घर में रहनेवाले अपने साथी से भी अजनबी है। असुरक्षा की भावना के कारण विदेशी लगाव है तो अपनी मातृभूमि से कटने का डर भी। उनके नस-नस में कृत्रिमता समाई हुई है तो मन करुणा से भी भर उठता है। मध्यवर्ग मोटे तौर पर व्यस्त है। वह ख़ुद को श्रेष्ठ मानता है। आनेवाले बुढ़ापे और मृत्यु का आभास उसे सालता रहता है। उसके सपने कभी पूरे नहीं होते। सपने देखने की आदत सदा चलती रहती है। मध्यवर्ग के इन सभी पक्षों का मूल्यांकन लेखिका ने अपने कथा साहित्य में करने का प्रयास किया है।

❖❖❖

अध्याय - चार

मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में सामाजिक सरोकार के विभिन्न आयाम

मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में सामाजिक सरोकार के विभिन्न आयाम

मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में सामाजिक सरोकार

समकालीन महिला कथाकार मृदुला गर्ग, विविध जीवन-संदर्भों को अपनी कलम का विषय बनाती हैं। वे नएपन और अनूठेपन की ताज़गी से पाठकों को आकृष्ट करती हैं। मृदुला जी ने कथा-साहित्य का आगाज़ स्त्री-पुरुष संबंधों से जुड़े विषयों से किया। स्त्री अस्मिता के संबन्ध में सामाजिकता को लेकर दूसरे अध्याय में विश्लेषण किया जा चुका है। अनुभव जनित रचनाधर्मिता से उनका साहित्य दैदीप्यमान है। वैविध्यपूर्ण उत्कृष्ट रचनाओं से कथा-जगत को निखारने में मृदुला गर्ग सफल रही हैं।

मृदुला जी लेखक की विशिष्टता, तसल्ली और लेख़न की हक़ीकत का बोरा खोलते हुए कहती हैं – "1975 में 37 वर्ष की आयु में मैंने जो छापना शुरु किया तो धकापेल छपती चली गई और बरसों मेरे मन में जमी पड़ी अनुभूतियाँ पिघलकर ऐसे लावा बन गई कि पलभर भी चैन से बैठने न दिया। दस साल के भीतर मेरे पाँच उपन्यास, पाँच कहानी संग्रह और एक नाटक छप चुके थे।"[1]

1. मृदुला गर्ग - चुकते नहीं सवाल - पृ. 152

अतः समस्याओं की पृष्ठभूमि जीवन के माहौल और निजी जीवन की अनुभूति का घटक है। अपना रचना-धर्म निभाते-निभाते पाठक को उन्होंने छुए-अनछुए पहलू और समस्याओं के गहरे ताप का अनजाना एहसास कराया है जो पाठकों को सोचने पर ज़रूर मजबूर करता है। सांप्रदायिकता, नव-उपनिवेशवाद, पारिस्थितिक सजगता, राजनीतिक-संदर्भ, आर्थिक संदर्भ, बलात्कार, परिवार एवं वृद्ध जीवन आदि उनके कथा साहित्य के विषय बनते हैं।

राजनीतिक समस्या

कई छोटे-बड़े टुकड़ों में राजनीति और कूटनीति के तमाम कोणों को उकेरने का भरसक प्रयास मृदुला जी द्वारा हुआ है। हमारा भारत खुद अपना एक इतिहास रखता है। जिसमें, चीन-पाक-विभाजन, हत्याकांड जैसी सनसनीखेज़ ख़बरें भरी पड़ी हैं। इन्हीं इतिहास के पन्नों में आज का रंग चढ़ाकर मृदुला जी कुछ संदेश देती हैं। सांप्रदायिकता की जिस आग ने आपसी रिश्तों, जस्बातों और एक-दूसरे के लिए दिल में उठती परवाह को खत्म कर दिया वहीं 'फीनिक्स' पक्षी की भाँति मृदुला जी उसी राख में से पुनः स्नेह की कायनात कायम करना चाहती हैं।

हिन्दी साहित्य जगत् में भ्रष्टता की हद पार करती, हिंसात्मक रवैये को अपनाती, जुलूस और हड़ताल की नाकाबंदी में पीसती, तोड़फोड़,

वोट एवं कुर्सी के इर्द-गिर्द लाशों की ढ़ेर जमाती; राजनीति की थाह संदर्भों के बुने जाल में साहित्यकारों ने अंकित किए हैं। इसी की अनुगूँज को मृदुला जी अपने कथा-साहित्य का भी अंग मानती हैं। उनके कथा-साहित्य के राजनीतिक मसलों को नीचे प्रस्तुत किया गया है।

आपात्काल की घोषणा से पूरे भारत को साँप सूँघ गया था। 26 जून 1975 के बाद कोई भी आम आदमी शासन के खिलाफ चूँ तक करने से घबराता था। डॉ. पुष्पपाल सिंह कहते हैं – "आपातकाल के दौरान राजनीति में अनेक प्रकार की भ्रष्टता, निरंकुशता, नौकरशाही का वर्चस्व, पुलिस की डंडे की राजनीति, चापलूसी, प्रजातांत्रिक संस्थाओं एवं मूलाधिकारों की समाप्ति, जनता प्रेस और कलम की आवाज़ को कुंद और समाप्त करने के अनेक कारणों से समस्त देश में व्यापक असंतोष और आक्रोश की परिव्याप्ति ने पुनः भारतीय मानस को गहराई से झिंझोड दिया।"[1]

सारी कायनात जहाँ विक्षुब्ध थी वहाँ लेखक और बुद्धिजीवी भी अछूते न थे। किंतु फिर भी मृदुला गर्ग ने 'शहर के नाम' कहानी लिखी। इंदिरागाँधी द्वारा 1975-1976 में दी गई आपात्काल घोषणा के संदर्भ में लिखी गई यह कहानी एक लड़की की विद्रोहीवृत्ति प्रकट करती है जिसे

---

1. डॉ. पुष्पपाल सिंह - समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ - पृ. 22

मृदुला जी व्यक्तिगत रूप से जानती थीं। लेखिका कहती हैं – "1975-1976 का दौर इमरजेन्सी का था। संयोगवश मैंने एक कम उम्र की लड़की को जाना, जो नुक्कड़-नाटक आदि करती थी। इमरजेन्सी के दौरान उस पर सरकार विरोधी (नक्सलवादी) होने का आरोप लगा। घरवाले घबरा गए। समझा-बुझाकर या डरा-धमकाकर उसे विदेश पढ़ने भेज दिया गया वहाँ रहते हुए उसका मन काफ उद्वेलित रहा, अपने जीवन को लेकर और उसके कुछ ही दिनों बाद उसने खुदकुशी कर ली। कारण मैं नहीं जानती पर उसके कुछ पत्र मैंने पढ़े थे और मुझे लगा था जैसे वे मैंने ही लिखे हों।"[1]

प्रस्तुत कहानी मृदुला जी ने दिल्ली में स्थित अपने दमघोटू स्थिति से निकलकर पति के संग जयपुर गईं तो बारिश की आरामदेह बूँढ़ों को महसूसते हुए एक दिन की बैठक में लिखी थी। इस कहानी की नायिका भ्रष्ट राजनीति के दलदल में फँस कर मज़दूरों की झुग्गी-झोंपड़ी तथा बस्तियों और गली-गली में नुक्कड़ नाटक किया करती थी। वह राजनैतिक शोषण, अत्याचार, भ्रष्टता, दूषित वातावरण आदि का नाटकों के ज़रिए मुँहतोड़ जवाब देने के साथ-साथ लोगों को जागरूक भी करना चाहती थी। परंतु आपात्काल की स्थिति तथा राजनीति से जुड़ने पर उसके पिता जो बहुत बड़े सरकारी अफ़्सर थे उसे अपने पद-प्रतिष्ठा के लिए एम.एस. की

1. मृदुला गर्ग - शहर के नाम - हर साँस के साथ - पृ. 12, 13

पढ़ाई करने अमरीका भेज देते हैं। परंतु वह पढ़ाई न करके सामाजिक जीवन से जुड़ती है। वहाँ वह 'हेरी' नामक युवक से भी जुड़ती है। वह वापस आकर होटल में रहती है। इस होटल की जगह पहले एक युवराज का महल था। उसने अब आत्महत्या कर ली और जो घोड़ा स्वच्छंद दौड़ता था आज उसके पैरों पर नाल पड़ी हुई है। 1975 में राजधानी से आई पुलिस ने इस युवराज को गिरफ़्तार कर लिया था क्योंकि तब वह विपक्षी था। महल में उसे क़ैदी बना दिया गया और युवराज ने खुदखुशी कर ली। युवराज के रेस के घोड़े अब क़ैद हैं। लड़की युवराज से जो बात कहती है वे आधुनिक दौर में क्रांति लाने लायक शब्द हैं - "तुम ग़लत थे बीते हुए कल के युवराज। खुदकुशी करके तुमने अपने अहम् को बचाया घोड़ों को नहीं।" - - - -"नहीं उसने मुझसे कहा, तुम्हारे पैरों में नाल नहीं ठुकी तुम अब भी आज़ाद हो रेस में मत दौड़ो, भाग जाओ"[1]

अतः लड़की आजीवन दुर्बल तथा लाचार लोगों की सहायता में खुद को अर्पित कर देती है। अपने इस निर्णय का पत्र, जिसमें उसके विचारों की आज़ादी मौजूद थी, जहाँ वह दमघोंटू समाज से खुले आसमान में विचरण कर रही थी अपने माता-पिता को शहर के नाम लिख देती है। कहानी तो यहीं समाप्त हो जाती है परंतु कहानी का उत्तरार्द्ध आपातकालीन

---

1. मृदुला गर्ग - दस प्रतिनिधि कहानियाँ - शहर के नाम - पृ. 54,55

वातावरण का खुलासा करने के साथ-साथ विद्रोही वृत्ति का ब्यौरा भी रखती है। आपातकाल के उस माहौल की भयावहता कहानी में यत्र-तत्र व्याप्त है। यह पत्र शहर के नाम लिखा राजनीति के महाखेल का एक पन्ना है। मृदुला जी ने इमरजेन्सी से वैचारिक रूप में खुद को उद्वेलित कर प्रस्तुत कथा का निर्माण किया है।

सांप्रदायिकता (इंदिरा गाँधी की हत्या और भारत विभाजन)

'सांप्रदायिकता' असल में धर्म के गलत प्रयोग एवं विश्वास से पनपता है। यक़ीनन इसका संबंध धर्म से है और आज के इस बदलते परिवेश में स्वार्थी तत्वों के द्वारा धर्म को, अपनी सोच और हितों के अनुरूप परिभाषित करने तथा विकृत करने का कुत्सित प्रयास किया जा रहा है। धर्म के कई अर्थ होते हैं - ज़िम्मेदारी, विश्वास, कर्त्तव्य, मज़हब आदि। हमने तो सुना ही है - 'मज़हब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना।'

मज़हब ने कभी एक-दूसरे की हत्या करना या वैर करना नहीं सिखाया। उसने हमेशा एकता की बात की है। इंसान ने अपने लाभार्थ धर्म की विकृत व्याख्या की है। प्रयोग का परिणाम सांप्रदायिकता निकला। सांप्रदायिकता की जड़ लोगों की मानसिकता है जो खुद को, अपनी क़ौम को बड़ा समझती है।

सांप्रदायिकता की पहली उफ़न भारत-पाक् विभाजन के फलस्वरूप हुई, जिसकी फूट अंग्रेज़ों ने डाली। उस वक़्त जो हादसे हुए थे उससे किसी के घर चूल्हा नहीं जला था। फिर 'अगली सुबह' थी जो खून से सनी थी। मृदुला गर्ग की *'अगली सुबह'* इसी सांप्रदायिकता की आग बयान करती है। सत्तो आंटी को 1948 की घटना याद आती है - "कैसी भीड़ है यह! ये जवान छोकरे जिहाद पर निकले हैं या जशन पर! किसी के चेहरे पर दुःख का ताप नहीं, रंजिश नहीं, मस्त हाथियों से वहशीपन के सिवा कुछ नहीं। एक हत्या तब भी हुई थी, सन् 1948 में। तब भी भीड़ जुटी थी, मातम मना था। लोगों के घरों में चूल्हे तक नहीं जले थे, उस रात और अगली सुबह। और एक अब है कि घर जल रहे हैं। यह मातम है या त्योहार?"[1]

उस रात की सुबह हर सुबह की तरह नहीं, रात से ज़्यादा स्याह थी। पहली नवंबर की सुबह ऐसी ही हैबतनाक सुबह थी। ऐसी ही घटना इंदिरागाँधी हत्याकांड में भी हुई। 'सत्तो आंटी' जैसे लोग तब भी मौजूद थे और आज भी मौजूद हैं जो धर्म-भेद भूलकर लोगों की मदद करना चाहते हैं। यहाँ सबरजीत जिसे सत्तो आंटी ने अपने बेटे अशोक की तरह माना था उसे दंगाइयों से बचाती हैं।

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - अगली सुबह - पृ. 414-415

भीड़ एवं दंगे भड़काने वाले मुट्‌ठी भर लोग होते हैं जो भड़काकर अपना काम निकाल चले जाते हैं। झुलसते तो आम लोग हैं नेताओं के घर तो बसे रहते हैं। सबरजीत का प्यार, रुंधे कंठ और आँसुओं से लेती विदाई में दर्ज था। मृदुला जी का कथन बिल्कुल सटीक है – "भड़काने वाले थोड़े हों तो भी बहुत हैं। दियासलाई की एक तीली फूस के ढेर में आग लगा देती है। एक बार भीड़ जमा हो जाये तो कुछ हो कर रहता है, जश्न या जिहाद! भीड़ का आदमी आदमी नहीं रहता...."[1]

पुलिस की ग़ैरज़िम्मेदाराना हरकत लोगों में आग और भड़काती है। अजय द्वारा ली गई पुलिस-मदद से ही दंगाई घर तक पहुँचते हैं। सत्तो आंटी अपनी जान लगा देती है सबरजीत को बचाने के लिए। सबरजीत को सरहद पार करा लेती है। वह दंगाइयों से कहती है– "शरम करो, राक्षसों शरम करो - यही धरम है तुम्हारा। इसी बूते पर हिन्दू कहते हो अपने को? उसकी जगह तुम्हारा बेटा हो तो।"[2]

यहाँ संतो आण्टी की मानवीयता नज़र आती है। जिन सिक्खों ने इंदिरा गाँधी की रक्षा की कसम ली थी उन्हीं ने हत्या कर दी। आम आदमी इन दंगों के 'विक्टिम' हैं। इस बात का सबूत सबरजीत खुद सामने

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - अगली सुबह - पृ. 406
2. मृदुला गर्ग - उर्फ सैम - अगली सुबह - पृ. 46

रखता है। वह कहता है कि जिस औरत की हिफाज़त का उनके घर चूल्हा जलता है उसी को धोखा दे दिया। उसी औरत की जान ले ली? सिक्ख होने के नाते उसने सिक्खों की वकालत नहीं की थी।

संतो आंटी ने बंसल बाबू (सबरजीत का हिंदू दोस्त) के लाख पूछने पर भी नहीं बताया कि सबरजीत घर में छिपा है। पुलिस द्वारा दंगाइयों के घर पर हमला करने पर संतो आंटी ने भीड़ को गुमराह कर स्टोर रूम का रास्ता दिखाया। लोगों से कहा कि बेकार में निहत्थों को मारने से अच्छा है उन सरदार भाइयों की मदद की जाए। तभी उस पर बेटे समान मनकू का वार पड़ा। एक गाड़ी से वह आदमी निकला जिसे पिछली बार उसने और कई सिक्खों ने वोट दिया था। दूसरे वार पर वह बेहोश हो ही रही थी कि, उसने दूर खड़े अपने अशोक को महसूस किया जो भीड़ की सरहद पर खड़ा था। यह कहानी राजनेता और उनकी खुदगर्ज़ी के तले भुनते आम आदमी की खौफ़नाक और हैरतअंगेज़ दास्तान बयान करती हैं। विभाजन के खौफ़नाक परिणाम से आज की पीढ़ी उभरी नहीं है। वह ऐसा नर-संहार था जो देश को निगल गया। मुसलमानों ने अलग राष्ट्र की मांग की। हिन्दुओं ने मना किया। फूट डालने वाले तो चले गए पर फूट का बीज यहीं छोड़ गए जो बढ़ा और बड़ा पेड़ बन गया। अंग्रेज़ों ने फूट डाली। वरना भारत तो बरगद का घना पेड़ था जिसकी छाया में सभी जाति-धर्म

के भाई खुशहाल थे। कहते हैं बरगद के पेड़ के नीचे कुछ नहीं पनपता। शायद यही हुआ। बरगदनुमा भारत के नीचे खून ही पनपा। बाकि सब खत्म हो गया। असल में समस्या तब भी राजनीतिज्ञों ने राजनीति के लिए पैदा की थी, जिसकी भट्ठी में झुलसकर पूरा देश जला। मृदुला जी कहती हैं - “सैंतीस साल पहले जो हुआ, उसकी वजह दूसरी थी, तब देश का बंटवारा हुआ था। वह तो अंग्रेज़ कर गए हमारा बँटवारा, नहीं तो हिंदुस्तान घने पेड़ जैसा था, चाहे जो बसेरा कर ले। घना पेड़ तो बरगद का भी होता है, जिसके नीचे कुछ उगता नहीं।”[1]

डॉ. विपिन बिहारी ठाकुर संतो आंटी की मानवीयता अज्ञेय की शरणदाता की जेबुन्निसा से करते हैं। “उसी तरह ‘अगली सुबह’ (मृदुला गर्ग) में भी मूल्यों के लिए जोखिम उठाने वाले चरित्र मौजूद हैं। भीड़ साम्प्रदायिक उन्माद में सब कुछ नष्ट कर देना चाहती है लेकिन कुछ भाईचारे और परस्पर सौहार्द की रक्षा हेतु कृत संकल्प हैं। ‘अगली सुबह’ श्रीमती गाँधी की हत्या के बाद दिल्ली में हुए साम्प्रदायिक दंगे का मार्मिक और सही चित्र प्रस्तुत कर सकी है।”[2]

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - अगली सुबह - पृ. 409
2. आजकल - अप्रैल 1998 - ‘पंजाब समस्या और हिन्दी कहानी’ - डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ का लेख - पृ. 5

राजनीति एक अंधा कुँआ है जिसमें अंधेरा होता ज़रूर है पर सही नीयत रोशनी भी ला सकती है।

अक्टूबर 1962 का भारत-चीन हमला

मृदुला गर्ग ने राजनीति की किताब का और एक पन्ना खोलते हुए भारत पर चीनियों के हमले को कहानी का केन्द्र बनाया। *'उल्टी धारा'* उनकी इसी घटना से संबंधित कहानी है। अक्टूबर 1962 में भारत पर चीनियों ने हमला किया था। नवम्बर में एकतरफा सीज़फयर की घटना घटी। कहानी में व्यंग्य शैली का इस्तेमाल करते हुए आधुनिकता बोध का भी परिचय दिया है। श्यामसिंह ने भारत-चीन आक्रमण के वक़्त प्रेम की दवा अपनी गाँधीवादी प्रेमिका को पिला दी। उसने अगले दिन से ही खद्दर उतार क़ीमती रेशम की साड़ी पहन ली। इस तरह गाँधीवादी सिद्धांतों का अंधानुकरण करने वालों पर व्यंग्य किया गया है।

चीनी जनरल च्यांग लाओत्से को भी इसी प्रेम की दवा से नरम दिल बना दिया गया। वे पहले काफी क्रूर और वहशी थे। विक्रमसिंह ने उन्हें अपनी सूझबूझ से मानवतावादी बना दिया। विक्रमसिंह ने एक नागा अंगम को चीनी फौज में मिलवाकर नागा द्वारा च्यांग के खाने में दवाई मिलवा दी। इससे च्यांग लाओत्से में बदलाव आया और वह बर्बर चीनी जनरल इन्सान और भगवान का नाम लेने लगा। उसने सर्वनाश की जगह

अमन का रुख अपनाया और तुरंत युद्ध रोकने को हुक़्म वजह फरमाते हुए सीज़ फयर का ऐलान किया। राजनेताओं पर मृदुला जी द्वारा किया गया व्यंग्य काबिले तारीफ है - "ऐसी दवा हिन्दुस्तान में ही ईजाद हो सकती है। यहाँ की हवा की करामत है साहब। तभी न हमारे प्यारे नेता, इस मुस्तैदी से आए दिन अपने नारे और दल बदल लेते हैं। हो न हो यह करामती दवा इन्हीं नेताओं की राख से तैयार की जाती होगी। तब मायूस होने की कोई बात नहीं है। दोबारा ज़रूरत पड़ने तक, दवा के लिए काफी कच्चा माल जमा हो पाएगा।"[1]

विक्रमसिंह, श्यामसिंह का दत्त पुत्र था और भारत-पाक् 1965 के संघर्ष में शहीद हो गया। खानदान में केवल उसी को इस दवा का पता था क्योंकि किसी एक को बताना नियम था। मक्खासिंह और जसवंत दल बदलू नेताओं पर व्यंग्य करते पाए जाते हैं। दल बदलना और दूसरी पार्टी की खिलाफत करना तो किसी हिन्दुस्तानी नेताओं से सीखें।

गाँधी चिंतन का पतन

गाँधीवादी विचारधारा आधुनिकता के जामे में कैसी नज़र आती है यह मृदुला गर्ग की *'टोपी'* बयान करती है। प्रस्तुत कहानी गाँधीजी के

---

1. मृदुला गर्ग - ग्लेशियर से - उल्टी धारा - पृ. 76, 77

उसूलों पर आधारित है। गाँधीजी ने जिन उसूलों को देश की रक्षा के लिए, देश की सुरक्षा एवं एकता के लिए लागू किया था; वह मात्र 'टोपी' के रूप में विद्यमान है। हर धूर्त नेता उसे पहनता है। अहिंसावादी का ढोंग करता है। गाँधीजी के सिद्धांतों की दुहाई देता है। मात्र वोट पाने हेतु।

देश की आज़ादी के लिए जिस 'टोपी' को पहनने पर लोगों के दिलो में 'टोपी' के प्रति आराधना थी आज दिखावा बन कर रह गया है। आज़ादी प्राप्ति हेतु जिन्होंने टोपी को हाथ तक नहीं लगाया था वे स्वतंत्र भारत में टोपी बग़ैर रह ही नहीं सकते। प्रस्तुत कहानी में टोपी प्रतीक है गाँधीजी का, उनके सिद्धांतों का, उनकी अहिंसा का। 'अनित्य' नामक उनका उपन्यास प्रस्तुत कहानी का बड़ा रूप है।

आज़ादी के पश्चात् आधुनिक विकृति और भ्रष्टाचार का आकलन करते हुए मृदुला जी बताती हैं कि, किस कदर आज़ादी के सेनानी तथा जेल जाकर यातनाओं को आत्मसात् करनेवाले स्वतंत्रता सेनानी एवं कांग्रेसी तथा गाँधीवादी अपने त्याग को दाँव पर लगाकर स्वार्थपूर्ति कर रहे हैं। किन्हीं चार पात्रों के माध्यम से ही लेखिका ने पूँजीवादी सभ्यता, गाँधीवादी नेताओं तथा स्वातंत्र्योत्तर दफ्तरी परिवेश, भ्रष्टाचार अदि समस्याओं को उजागर करते हुए व्यंग्य किया है। अविजित 1942 के आंदोलन में अहिंसात्मक रवैये से आज़ादी के लिए लड़ता था। सरण भी गाँधीवादी था।

चड्ढा क्रांतिकारी होने के नाते छिपता फिरता था। परंतु आधुनिकता का रूप 'अविजित', स्वतंत्र भारत में व्यस्त एवं व्यावसायिक है। सरण मतलबी गाँधीवादी है। चड्ढा गुर्दे खराब होने तथा सही इलाज न मिलने के कारण अब इस दुनिया में नहीं रहा।

अविजित, बांकुश में फर्टिलाइज़र फैक्टरी लगाने हेतु लाइसेंस प्राप्त करने के लिए सिंघानिया द्वारा मुकर्जी बाबू नामक मंत्री से साँठगाँठ करता है ताकि उसका काम निकल जाए। अविजित में अपराध-बोध पैदा ज़रूर होता है परंतु क्षण-भर के लिए। सरण, अविजित का इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का सहपाठी गाँधीवादी वेशभूषा में उसे मिलने आता है। वह समझता है कि ज़रूरत पड़ने पर 'गाँधी टोपी' पहनकर अपना काम आसानी से करवाने में कोई ख़तरा नहीं। खुद को गाँधीवादी सिद्धांतों का हिमायती बताने वाला सरण एक भ्रष्ट एवं स्वार्थी व्यक्ति था। सरण की वेशभूषा के साथ अविजित और सरण का वार्तालाप -

"खादी का कुर्ता - पाजामा, सिर पर गाँधी टोपी, चेहरे पर अपार संतोष! आज उसे देख कर अविजित खीझ से भर उठा।

"यार, तू ढंग के कपड़े क्यों नहीं पहनता?" उसके मुँह से निकला।

"क्या मतलब?" सरण बोला।

"अंग्रेज़ गये, स्वराज्य आ चुका, फिर गाँधी टोपी लगाने की क्या तुक हुई भला?"

"क्यों? सभी तो लगाते हैं।"

"सभी नेता लगाते हैं। पर तू तो नेता नहीं है।"

x x x x x

....."हम तो भैया, गाँधी जी को मानते हैं। गाँधी जी ने कहा था, स्वदेशी के बिना स्वतंत्रता किसी काम की नहीं है। खादी बुनना छोड़ दोगे, तो स्वराज्य भी नहीं मिलेगा।"[1]

सरण गाँधी टोपी का खूब फायदा उठाता है। वह ऐसा सेनानी है जो स्वतंत्रता संग्राम की भागीदारी को चुन-चुन कर वसूल करता है। अपने छोटे भाई को सीमेंट एजेंसी, लड़के को पेट्रोल पम्प का लाइसेंस, पत्नी के नाम स्टील की फैक्टरी देकर वह स्वयं गाँधी-संस्थान चलाने लगता है। अविजित, सरण की स्वार्थता एवं वसूली को सुनकर चौंक जाता है। अविजित का लाइसेंस भी सरण द्वारा पास हो जाता है सिंघानिया बधाई देता है। सरण के ज़रिए ही उसने यह काम कराया था। इसी कारण फायदे का मुनाफेदार रक़म आधी सरण की और आधी मंत्री जी की। इस धूर्त स्थिति एवं स्वभाव को जानकर अविजित सरण से कभी न मिलने के बारे में

1. मृदुला गर्ग - ग्लेशियर से - टोपी - पृ. 40, 41

सोचता है। पर परिस्थिति से समझौता करना वह भी सीख लेता है। वह कहता है– "टोपी लगानी नहीं तो उतारनी ज़रूर पड़ेगी।"[1]

सरण द्वारा अपना फायदा निकालते शब्द, अविजित को रह-रहकर याद आता है। आधुनिक गाँधीवादी, गाँधीजी के उसूलों का मुखौटा ओढ़कर अपनी भागीदारी वसूलते सरण का कथन आधुनिकता और दिखावेबाज़ी का ऐलान करता है।

वर्तमान समाज भी पूँजीवादी सभ्यता की गिरफ़्त में आकर खुद को बेच चुका है। आज़ादी, आत्मा और ज़मीर कौड़ियों के दाम बिक रही है। इंसान सीख चुका है कि परिस्थिति के साथ उसे भी बदलना होगा। व्यवस्था के साथ जो नहीं बदलेगा मारा जाएगा या दोषी करार दिया जाएगा। जिस तरह चड्ढा मरा है, यहाँ स्वार्थियों का राज चलता है। चड्ढा ने पार्टी के पैसे अविजित को सौंपे थे। उसे कभी अपने फायदे के लिए इस्तेमाल नहीं किया। परंतु वह अभिमानी और सच्चा देश-सेवक होने के नाते अभावों में ही रहा और अंतिम समय बड़ी मुश्किलों से बीता। पार्टी के 20,000 रुपये उसने अपने इलाज पर भी खर्च करना न चाहा।

यहाँ मृदुला जी ने तीन किस्म के लोगों को दर्शाया किया है। बदलाव को दिखाया है। सच्चा देश सेवक – "चड्ढा"। देश भक्ति से पूर्ण

---

1. मृदुला गर्ग - ग्लैशियर से - टोपी - पृ. 49

परंतु अपराधबोध से ग्रसित फिर भी बदलाव के साथ बदलता व्यक्ति - 'अविजित'। अविजित में करुणा भी है और पाने की ललक भी और एक धूर्त, स्वार्थी व्यक्ति - सरण।

भ्रष्टाचार के फैलाव को *'टोपी'* कहानी में मृदुला गर्ग ने बख़ूबी दर्ज किया है। हमारे सारे आदर्श पूँजीवादी व्यवस्था रूपी चट्टान से टकराकर मिट गए। आज के नौजवान को भौतिक सुख एवं लालच ने घेर लिया और अपने मतलब के लिए कुछ भी कर डालने को मजबूर किया। परंतु इन परिस्थितियों में भी रीढ़ की हड्डी सँभाले कुछ देश भक्त हैं जिनकी वजह से आज भी देश की नींव कायम है। वरना आज़ादी, देश, सिद्धांत, उसूल, व्यवस्था कब की ढह चुकी होती।

मृदुला जी का कहना है कि हम आज़ाद हैं अंग्रेज़ों के शोषण और भारतीयों पर किए अत्याचार के खिलाफ लड़कर अपना देश वापस पा चुके हैं। पर सिंहासन पर बैठने वाले तख़्तोताज पहनने वाले हमारे सरपरस्त भले ही चेहरों में अलग हों या बदल गए हों पर हमारी नियति (आम जनता की) ज्यों की त्यों विद्यमान है। अतः एक नई जंग का ऐलान करते हुए एक नई आज़ादी की माँग लेखिका करती है। आम जनता के ज़रिए; आम जनता के लिए। क्योंकि शोषण अब भी जारी है। हर तरह से।

राजनीति का ह्रासोन्मुख रूप

राजनीति आज राजा की नीति से *'व्यापार-नीति'* बन चुकी है। हर चीज़ पैसे के दम पर तौले खरीदे जाते हैं। इंसान की तो खैर क्या बिसात। राजनेता, जनता का नेता होता है। वास्तव में सेवक है। जनता उसे वोट देकर चुनती है। पर वोट मिलते ही वे जनता को किए गए अपने सारे वादे भूल जाते हैं। राजनीति खून-खराबे और लेन-देन का अड्डा बन चुकी है। इन्हें इस बात का डर है कि कहीं कुर्सी इनसे छिन न जाएँ। पुलिस बदलते रुख के अनुसार नेताओं की जेब में होते हैं।

राजनीति के छिपे छिद्रों से आदमखोर सरपरस्तों को बेनकाब करती कहानी है - 'बेनकाब'। माधो चाहे जिस कारण से बागी बना हो पर वह गरीबों की मदद ही किया करता था। उसने बेतवा इंस्पेक्टर का खून ज़रूर किया है। उसने खून इसलिए किया कि अपनी माँ के साथ हुए अपमान का बदला चुका सके। क्योंकि जब नियम बनाने वाले नियम तोड़ें तो क्रांति की मशाल जलती ही है। माधो ने अपने कानून में मज़लूमों की मदद ही की थी। परंतु कानून की नज़रों में गुनाहगार बन गया। बेतवा को मारकर उसने कई माताओं की इज्ज़त बचाई थी। राजनीति में विनोबा के कहने पर मौक़ा देखकर उसने आत्मसमर्पण किया था ताकि उसके शहीद साथियों की जब्त ज़मीन उनके परिवार को वापस मिल जाएँ। परंतु

राजनीति फिर व्यापार कर गई। वादा करके मुक़रना तो उनकी पुरानी आदत है। सरपरस्त लोगों के कहने पर राजनीति में बहादुर से बहादुर व्यक्ति की हार हो सकती है तो माधो कहता है– "नहीं! यह राजनीति नहीं व्यापार नीति है। आप लोग बागी क्या, डाकू बनने के काबिल भी नहीं हैं। व्यापारी है फ़क़त व्यापारी। बेईमान व्यापारी। चोरी करते हैं माल की, माप की, बाँट की, हुनर और लियाकन की। थू! आप अपराध करते हैं पर अपराधी कहलाने का हौसला नहीं रखते। ख़ून तक ख़ुद नहीं करते करवाते हैं। आँखों के आगे अत्याचार होता देख कर आप आँखें मूंद लेते हैं, तिजारत के नये तरीक़े सोचते हैं, नफ़े की मापतौल करते हैं।"[1]

अपने नेता को जनता बड़ी उम्मीदों और चाव से चुनती है पर नेता बनते ही वे वादा खिलाफी करने लगते हैं। वादा होता है बिजली लगवाने का सड़कें बनवाने का, मक़ान देने का, ज़मीन दिलवाने का, नहरें लगवाने का पर वादे कुर्सी तक आकर शांत हो जाते हैं। उनकी योजनाओं की धज्जियाँ उड़ जाती हैं। वे तो आगे निकल जाते हैं पर जनता वहीं की वहीं रह जाती है।

राजनीति की इस सच्चाई से हम सब वाकिफ हैं पर कुछ आज भी आँख मूँदे बैठे हैं। वोट तक डालने नहीं जाते। क्योंकि डालकर फायदा

---

1. मृदुला गर्ग - जूते का जोड़ गोभी का तोड़ - बेनक़ाब - पृ. 202

नहीं। मृदुला जी इन समस्याओं से वाक़िफ कराकर बताती हैं कि हमीं को स्थिति सुधारनी है। हमें सही आदमी को खड़ा करने और चुनने की ज़रूरत है। *'बेनक़ाब'* का राजनेता ज़मीन दिलवाने का वादा तब तक ही करता है जब तक कि इलेक्शन जीत न गया हो – "न खेत हैं, न चंबल में कारखाने हैं, जिनमें वे कमा खा सकें। क्यों नहीं लगाये जाते वहाँ कारखाने? क्यों नहीं हमसे मदद लेती सरकार वहाँ का नक्शा बनाने में? ...इलेक्शन आते हैं तो हमारी ज़रूर पड़ती है.... कहते हैं; जीत जायेंगे तो ज़मीनें छुड़वा देंगे तुम्हारे साथियों की। जीत जाते हैं तो....."[1]

मृदुला जी की कहानी *'अंधकूप में चिराग'* भी राजनीति के दाँवपेंच सामने रखती है। देश किसी नेता की सोच, नियमों एवं पार्टी की रीतियों के अनुसार चलता जाता है। कतार में पीछे चलते अनुयायियों की कमी नहीं होती। कोई साथ या लीक से हटकर नहीं चलता। यदि कोई ऐसा करता है और उसकी आवाज़ अलग से सुनाई दी जाती है तो उसकी ज़ुबान खींच ली जाती है। उसे नकारा छोड़ दिया जाता है। अर्थात् ईमानदार और व्यवस्था विरोधी को खत्म कर दिया जाता है। और उसकी आवाज़ या शब्द के अर्थ को समझने वाला भी व्यवस्था के हिमायतियों के डर से कतार में सबसे पीछे शामिल होकर चलने लगता है। मृदुला जी कहती हैं– "समाज

---

1. मृदुला गर्ग - जूते का जोड़ गोभी का तोड़ - बेनक़ाब - पृ. 201

को ऐसे आदमियों की हरदम ज़रूरत है जिनकी आवाज़ साफ और तेज़ हो, आसानी से कानों में पड़े और अर्थों के झमेले से दूर रहे। ऊँची और स्पष्ट आवाज़ शब्द तक की मोहताज नहीं होती, अर्थ की तो बात ही क्या है। समाज के लिए अर्थ का मतलब दूसरा होता है। शब्दों के अर्थ ढूँढ़ने के लिए लोगों के पास वक़्त नहीं है। अर्थ प्राप्ति शब्दों से नहीं होती।”[1]

मृदुला जी जनता की अंधी सोच और चुपचाप कतार में नेताओं की बातों को ग्रहण करने की रीति पर चोट करती है। वे ज़ुबान रहते भी भाव व्यक्त नहीं कर पाते। गूँगे से चलते जाते हैं। मृदुला जी का व्यंग्य काफी ज़ोरदार है– “मैं तुम्हारा नेता हूँ, मेरे पीछे आओ, ऊँची तेज़ आवाज़ में यह सुनने पर समाज क्यों नहीं पूछता। चुपचाप पीछे चल देता है नहीं, चुपचाप नहीं, हर आदमी अपने पीछे चलने वाले को आदेश देता चलता है। वही हुक़्म, मेरे पीछे आओ, जिसके जवाब में वे क्यों पूछते।”[2] परंतु इस अंधेरे कुएँ में रोशनी तलाशती हैं मृदुला जी। वे खुद को गूँगा महसूस नहीं करती। लेखिका ने यहाँ ज़ुबान होते हुए भी अन्याय के प्रति चुप्पी साधने वालों पर व्यंग्य किया है।

‘प्रतिध्वनि’ भी राजनीति के दबाव के प्रति नई प्रतिध्वनि पैदा करती है। ‘प्रतिध्वनि’ उस अंतर्ध्वनि की काव्यात्मक कहानी है जो अंग्रेज़ी

---

1. मृदुला गर्ग - ग्लेशियर से - अंधकूप में चिराग - पृ. 140
2. वही - पृ. 140

सभ्यता, आँगुली पर नाचते नेता और जनता, नशा, आधुनिक भड़कीले समाज, धर्म और राजनीति की गतिविधियों पर करारी चोट करती है।

जनता ने सिर्फ मतदान देकर ज़िम्मेदारी पूरी कर ली और देश की सुरक्षा और खुद की ज़िम्मेदारी नेताओं पर डाल दी। स्त्री का अन्याय हो तो सरकार दोषी, दंगा हो तो सरकार दोषी, कुछ भी गलत हो तो सरकार दोषी। जैसे कि जनता की देश के प्रति कोई ज़िम्मेदारी ही नहीं। मृदुला जी 'प्रतिध्वनि' कहानी द्वारा जनता को अपनी ज़िम्मेदारी के प्रति जागृत कराती हैं। क्योंकि जनता से ही सरकार बनती है। पेड़ लगाएँ तो पर्यावरण सुरक्षित होगा। मेल जोल बढ़ाकर मौक़ापरस्तों को खदेड़ें तो दंगे रुक जाएँगे। महिला एकजुट होंगी खुद पर अन्याय नहीं करेंगी तो अन्याय क्या खाक़ होगा?

दुनिया के तंग दायरे से बाहर निकलने की माँग मृदुला जी करती हैं। एक सजग नेतृत्व की देश को ज़रूरत है परंतु उसी कंधों पर अपनी सारी ज़िम्मेदारी डालना बिल्कुल सही नहीं। अपनी ज़िम्मेदारी खुद समझ उस पर अमल करने पर ही देश एवं समाज का कल्याण होगा।

"ज़िम्मेदारी उसकी है, मेरी नहीं।
वे भी यही सोचते हैं।
सोचते नहीं, महसूस करते हैं।
सोच के दायरे से बाहर आ कर भी

दायरों में बंद रहते हैं।
मैं भी रहता हूँ।
कोई कहने वाला न हो तो वे
इस तरह कूद सकते हैं, झूम सकते हैं,
चीख़ सकते हैं?"[1]

राजनीति तो नेताओं के खेल हैं। यहाँ तो खिलवाड़ होते हैं। नारेबाज़ी, दायें, बायें हाथ हिलाकर झंडा फहराकर कई पताकाओं का हुजूम, जुलूस निकाल चलता रहता है। वह भी भीड़ में। अकेले तो हिम्मत नहीं होती। ज़िंदाबाद शब्द का अर्थ जाने बग़ैर वे अनुसरण करते जाते हैं क्योंकि वे भीड़ में हैं। अगुआ कहता है पीछे आवाज़ें चलती जाती हैं। कोई अपराधबोध नहीं। उनके इशारे पर दंगे होते हैं, एक-दूसरे को काट गिराते हैं। सरहद पर गोलियाँ चलती हैं। खुद की रज़ामंदी के बग़ैर दूसरों के इशारे पर। एक आवाज़ हमेशा बनी रहती है जो कहता है कि, तुम्हारी डोर मेरे हाथ में है। मैं जो कहता हूँ करो। यदि मैं नहीं रहूँगा तो तुम रास्ता कैसे जानोगे? और समूह से बँट व्यक्ति बन जाओगे। कोई समूह से बाहर नहीं होना चाहता क्योंकि ज़माना ऐसे लोगों को जीने नहीं देती।

अवसरवादी राजनीतिज्ञों का ज़िक्र *'उसके हिस्से की धूप'* उपन्यास में मधुकर और जितेन के संवाद द्वारा व्यक्त है। बुद्धिजीवियों को

---

1. मृदुला गर्ग - ग्लेशियर से - प्रतिध्वनि - पृ. 92

लेकर हुई बहस में यह कहा गया कि बुद्धिजीवी सुझाव जल्दी दे देते हैं परंतु संचालन नहीं करते; दोनों के बीच मत भेद है। मधुकर के अनुसार हमारे देश में विचारकों को कार्य करने वालों से ऊँचा दर्जा दिया जाता है। यही हमारे देश की त्रासदी है। संचालन करनेवाला अवसरवादी राजनीतिज्ञ ही है। उसी को हर कर्मठ इंसान में प्रतिद्वन्द्वी की बू आती है। अमीरों और बुर्जुआ लोगों के ग़रीबों और श्रमिकों को अपने नीचे दबाकर रखने की प्रवृत्ति पर मधुकर कहता है - "श्रमिकों का संचालन हम क्या करेंगे? वे तो आपकी मुट्ठी में है। और अवसरवादी राजनीतिज्ञ, वे भी आपके ही चट्टे-बट्टे हैं।"[1]

'अनित्य' में राजनीतिक जीवन की अवहेलना के साथ-साथ समर्पण भाव भी प्रस्तुत किया गया है। स्वतंत्रता आंदोलन में जहाँ केवल गाँधीवाद को प्रमुखता दी गई थी; तब वहाँ क्रान्तिकारी आंदोलन भी चल रहा था। इस क्रांति का अधिक ज़िक्र नहीं था। इस आन्दोलन को भी प्रस्तुत करना मृदुला गर्ग का उद्देश्य है। लेखिका प्रश्न उठाती हैं कि क्रान्तिकारियों ने जब देश की आज़ादी में इतना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था तो उन्हें आज़ादी के पश्चात् आतंकवादी और हिंसावादी क्यों ठहराया गया? क्योंकि समय पड़ने पर हिंसा का भी बहुत बड़ा योगदान होता है। यह

---

1. मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 100

उपन्यास गांधीवाद के साथ नेहरुवाद की भी पोल खोलता है। नेहरु जी की 'मेरी कहानी' के दो उद्धरण लेखिका ने दिए हैं - "हिंसा का कभी प्रयोग न करने की कसम खा लेने का अर्थ होता है सर्वथा नकारात्मक रुख इख्तियार कर लेना जिसका स्वयं जीवन से कतई कोई सम्पर्क नहीं होता.....।"[1]

उपन्यास की काजल बेनर्जी के ज़रिए गाँधीवाद की आलोचना करते हुए कहा है - "जो स्वतन्त्रता लड़कर भी जाए उसका मूल्य और होता है।" ....तब अविजित कहता है - "अहिंसात्मक लड़ाई भी तो लड़ाई है।" अविजित की इस बात का खंडन करते हुए काजल बेनर्जी कहती है - "पर उसका अन्त समझौते में होता है। शासकों से समझौता करने का अर्थ ही है स्वाभिमान का ह्रास और नपुंसकता का उदय। ऐसे लोग हमेशा परिवर्तन से डरते हैं।"[2]

भगतसिंह के विचारों को उपन्यास में अधिक अहमियत दी गई है। गाँधी इर्विन समझौते की भी कड़ी आलोचना की है। काजल का लक्ष्य है कि वह भगतसिंह के अधूरे काम को पूरा करे। 'प्रोपोगेण्डा बाई डेथ' में वह विश्वास रखती है। लेखिका ने भगतसिंह के द्वारा 1931 में काल कोठरी में लिखे कौम के नाम संदेश से व्यक्त किया है कि कुछ भारतीय भी

---

1. मृदुला गर्ग - अनित्य - नेहरुजी का उद्धरण 'दुविधा' भाग से पहले
2. मृदुला गर्ग - अनित्य - पृ. 89

उन्हें आतंकवादी मानते थे। स्वतंत्रता के बाद गाँधीवादी अविजित, भगतसिंह की आवश्यकता का अहसास करता है।

मृदुला जी मानती हैं कि गाँधीजी के साथी तभी तक उनका साथ देते रहे जब तक कि वे उन्हें भगवान मानते रहे। बाद में सत्ता हाथ आते ही वे सबसे बड़े शोषक बन गए। ऐसे राजनेता एवं व्यक्ति आज बढ़ते ही जा रहे हैं। इसके प्रति पाठकों को आगाह कराना मृदुला जी का उद्देश्य रहा है।

'वंशज' में भी लेखिका ने राजनीतिक मसलों को उठाया है। प्रस्तुत उपन्यास 1942 की राजनीतिक गतिविधियों पर नज़र दौड़ाता है। उस समय जो नौकरशाही व्यवस्था थी, जुलूस निकला करते थे, आज़ादी की पुकार मचाते थे, आज़ादी के लिए लड़ते थे, पुलिस की लाठियों को झेलते थे, क्रान्तिकारियों को जेल में ठूँसते थे, ऐसी कई वारदातें उपन्यास की शुरुआत में वर्णित है। 1947 में देश के आज़ाद होने के बाद स्वयं सेवक संघ की गतिविधियाँ भी अंकित हैं। संघ के प्रति नवयुवकों का प्रभावित होना सुधीर के माध्यम से अंकित है। "सुधीर की तरह कितनी ही कच्ची उम्र के नौजवान और बच्चे संघ की सभाओं में आते जाते थे। सुधीर सबेरे चार बजे उठकर उनके संग प्रभात फेरी में जाता-दण्ड बैठक लगाता, सैनिक ढंग से परेड सीखता और जोशो-खरोश वाले भाषण सुनकर

भड़कता। भाषणों में आमतौर पर हिन्दू साम्राज्य का गुणगान होता। छत्रपति शिवजी के गुणों की स्तुति से शुरु होकर वे मुसलमानों की निन्दा पर उतरते तो जल्दी ही वर्तमान में आकर पाकिस्तान से आ रहे शरणार्थियों का हवाला देकर मुस्लिम अल्पसंख्यकों के ही नहीं, मुसलमान प्रेमियों के विरुद्ध भी भड़काते।"[1]

उपर्युक्त उदाहरण आज के संदर्भ में भी सटीक बैठता है। कौम के नाम पर नौजवान आतंकवादियों को पैदा करने वाले लश्कर-ए-तालिबान आदि संघ इंसानियत से घृणा करने वाले हैं। नौजवान रास्ता भटककर मरने और मारने तक को तैयार रहते हैं।

नवउपनिवेशवादी संस्कार

बाज़ार के नाम पर बिकने वाली हमारी संस्कृति हर दम पर कुछ नया व्यापार करती है। शिक्षा तो ख़ैर पुराना माध्यम है। डॉक्टर, इंजीनियर अथवा अन्य उच्च ओहदों पर पहुँचने का हक़ इस व्यापार ने अमीरज़ादों और उसकी पीढ़ी के नाम कर दिया है। *'किस्सा आज का'* कहानी में एयरोनॉटिकल इंजीनियरिंग की फीस इतनी ज़्यादा है कि जैसे वह फीस बड़े-बड़े लोगों के बच्चों के लिए बनाया गया हो। पैसों के बल पर

---

1. मृदुला गर्ग - वंशज - पृ. 34, 35

पीढ़ी-दर-पीढ़ी पढ़ाई भी पुश्तैनी हो चली है। आज पढ़ाई केवल बड़े लोगों के पल्लू की उछाल बनकर रह गयी है। "चलो, मान लेते हैं। वकील, डॉक्टर, कंप्यूटर इंजीनियर, उद्योगकर्मी, नौकरशाह, सभी आजकल के राजा महाराजा हैं। पढ़ाई ज़रूर करते हैं, राजा बनने के लिए, पर पढ़ाई करने का हक़, बाक़ायदा, पुश्तैनी है।"[1]

शिक्षा के नाम पर आत्महत्या बाज़ार का ही क्रूर रूप है। मेडिकल कॉलेज की फीस न भर पाने की वजह से एक बच्ची का अपनी जान गँवा देना नवउपनिवेशवाद के बदलते रुख को दिखाता है। कहानी की 'अंगूरी', ज़रूरतमंद मालकिनों को ज़रूरतमंद नौकरों से मिलाने का शौक़ पालती है। जहाँ आजकल हर चीज़ की कीमत होती है वहाँ अंगूरी अपने इस शौक़ पर दाम नहीं लगाती। बाज़ारवादी संस्कृति की झकझोर कहानी में व्यक्त है। कहानी की वकील अपने पति से ज़्यादा कमाती है। मृदुला गर्ग ने उसे सफल पुरुष माना है। परंतु शादी के बाद नौकरी छोड़ दी। ज़िम्मेदारियाँ जो थीं इस औरत की तरह। उन ज़िम्मेदारियों को नवउपनिवेश का चश्मा चढ़ाकर मृदुला जी यूँ बयान करती हैं –"फिर भी शादी के बाद रानी बनने पर उसने दूसरों की नौकरी छोड़ दी। पति-घर-बच्चा तो था ही (वह तो हर औरत का होता है) पर सफल पुरुष की पूरक होने पर एक पूरा

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - किस्सा आज का - पृ. 692

राज (समाज) हाथ आ जाता है। जिसकी सेहत का दारोमदार पूरी तरह दावतशाही पर रहता है। पति के साथ जाम से जाम मिला कर, तश्तरी भर-भर, उसकी ज़िम्मेदारियाँ निभानी पड़ती हैं।"[1]

'अंगूरी' नए बाज़ारवाद में दलाल बनती है। वैसे तो आज हर चीज़ का व्यापार होता है। हर चीज़ नए व्यापार और नए पैकेट में बेची जाती है। अंगूरी का शौक़ भी उसी तरह का नया व्यापार है। कहानी का कथन यह साफ बयान करता है।

'रिश्वतखोरी' बाज़ार का ही अंग है। रिश्वत के बल पर तो यहाँ बड़े से बड़ा काम हो जाया करता है। मृदुला जी की कहानी *'नेति-नेति'* ईश्वर की अद्‌भुत सत्ता पर विश्वास - अविश्वास की कथा कहता है। कहानी का नायक मास्टर श्यामल एक छोटे शहर में हिन्दी की क्लास लेने आया है। एक दिन के लिए आए इस शहर में उसे अपने साथी बस यात्री से मंदिर जाने का आमंत्रण मिलता है। अक्सर विश्वास एवं अविश्वास के बीच अटके आदमी के साथ ऐसा होता है कि कोई मंदिर जाने के लिए बुलाए तो सीधे मुँह पर 'न' नहीं कर पाता। किसी अद्वितीय शक्ति के शाप का डर रहता है। कहने का तात्पर्य है कि ईश्वर भी बाज़ार के घेरे में है। "क्षमा करो भगवान, उसने सोचा भर नहीं, मुँह से उचर भी दिया। क्षमा करो। ममता

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - किस्सा आज का - पृ. 691

की रक्षा करना। मैं इक्यावन रुपये का चढ़ावा भेंटूँगा अभी। वह साथी को ठेल ठेल कर आगे बढ़ाने लगा। बेमतलब बुदबुदाते हुए, "चलो भाई दर्शन कर लो, शांति मिलेगी मेरे भाई शांति......"[1]

अंत में श्यामल मास्टर भी मंदिर की ओर चल दिए। पर साथी के सवाल का जवाब अब तक मास्टर खोज रहे हैं कि क्या ईश्वर होते हैं? वे कहना तो चाहते हैं 'नहीं' पर कह नहीं पाते। क्योंकि उन्हें भय है कि कहीं भगवान कुपित न हो जाएँ। पैसों का चढ़ावा चढ़ाने वाले कई मिलते हैं। रिश्वत देकर अपनी बात उस अद्वितीय शक्ति से मनवाना चाहते हैं। जहाँ पहले मंदिर - ईश्वर श्रद्धा भक्ति और त्याग-तपस्या के प्रतीक थे वहीं आज इनके नाम पर धार्मिक व्यापार चल रहा है।

'ज़ीरो-अक्स' में बदलते रिश्तों के बाज़ारवाद का पता चलता है। बदसूरत लेखक 'साजन' अपनी असंदुरता से काफी परेशान है। प्रस्तुत कहानी में साजन को सभी 'भाई' के संबोधन के साथ पुकारते हैं। उसे इस बात से गुदगुदी होती है। यहाँ मृदुला जी ने रक्षाबंधन के बढ़ते खोखलेपन को बताना चाहा है। मृदुला गर्ग ने रक्षाबंधन के द्वारा भाई-बहन के रिश्तों के छलावे का प्रदर्शन कराया है। इस रिश्ते की आड़ में समाज को दूषित करनेवालों की कमी नहीं। पहले भाई बनाने तथा फिर साजन बनाने में

---

1. मृदुला गर्ग - जूते का जोड़ गोभी का तोड़ - नेति-नेति - पृ. 220

लड़कियाँ झिझकती नहीं। वर्तमान समाज में प्रणय-भावना के नकार का पहला पहलू यही है।

'मंज़ूर - नामंज़ूर' में दो बहनों की कहानी है। बड़ी 'मंज़ूर' छोटी 'नामंज़ूर'। दोनों का जन्म एक ही दिन हुआ – 2-अक्टूबर। मंज़ूर कहती है कि गया वक्त कभी वापस नहीं आता। आधुनिक ज़माने में बेहतर से बेहतर नौकरी की तलाश में युवा-पीढ़ी का नौकरी पर नौकरी बदलने की स्थिति का बयान कहानी में मिलता है। नामंज़ूर का पति एक जगह स्थाई नौकरी करता है तो मंज़ूर का पति बार-बार बेहतर नौकरी की तलाश में जगह बदलता रहता है। यहाँ बाज़ारीकरण तथा आधुनिकता के झमेले में पड़े नव-युवकों की नई सोच का बाज़ारीकरण प्रस्तुत हुआ है।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद की नींव से आज नव-उपनिवेशवाद का दौर उभर पड़ा है। नव-उपनिवेशवादी ताकतें कई चेहरों में मंडी का रूप अख्तियार कर रहीं हैं। स्त्री, बच्चे, रिश्ते, माँ-बाप, ममता आदि तराज़ू में तौल कर मोल लगाए जाते हैं। जस्बातों की जगह 'अर्थ' ने ले ली और स्नेह की 'बाज़ार' ने। अपसंस्कृति की दलदल में सांस्कृतिक धरोहर धँसती चली जा रही है। 'स्वतंत्रता' नुमाइश का साधन मात्र रह गया। किसान, मज़दूर भूमि-संपत्ति की बजाय ऐशोआराम की ओर भाग रहे हैं या यूँ कहें कि भगाए जा रहे हैं। व्यक्ति लौकिक-सुख की खातिर इतना गिर चुका है कि

भागमभाग के बीच मरता आदमी उसे दिखाई नहीं देता। दुनिया इतनी नामुराद हो चली है कि, उसे किसी की मदद करना खुद को जाल में फँसाना लगता है। मृदुला जी *'बंजर'* कहानी में एक दम्पति के दुःख की गाथा कहती है जहाँ उनका अपना बेटा किसी की जल्दबाज़ी का शिकार बन जाता है। लोगों की लापरवाही न होती और समय पर इलाज मिल जाता तो उस माँ की गोद सूनी न होती। वर्तमान काल में बाज़ारवाद ने लोगों को अपनी धुन में गुमराह कर दिया है जहाँ खुद की गलती को कम-से-कम सुधारने का प्रयास भी नहीं हो रहा। उनके पास वक़्त नहीं है। बाज़ारवाद ने आज के दौर में तथा जनसंख्या ने भूमि पर अपनी जमात के झंडे गाढ़ लिए हैं। कहते हैं कि भारत में बंजर नाम की कोई जगह नहीं क्योंकि हर तरफ इंसान भरे पड़े हैं। अमरीका में इसे 'विल्डरनेस' कहा जाता है।

उपनिवेशवाद की नवीन काया स्त्री-रिश्तों और मौक़ापरस्ती में कैसे जकड़ी हुई है *'दुनिया का कायदा'* कहानी के दोनों भाग प्रस्तुत करते हैं। गाँव में पत्नी की मौत पर पति की दूसरी शादी का ज़िक्र है और वह भी डॉक्टर वधु के लिए। क्योंकि वह कमाती ज़्यादा है। लोगों के आँसुओं का दिखावा इसी सभा-मंडल में विद्यमान है। उसी तरह दो विपरीत ध्रुवों का रवैया शहर में भी मौजूद है। 'सुनील' अपने बिज़नेस को पनपाने के लिए अपनी पत्नी, प्राध्यापिका 'रक्षा' को मोहरा बनाने में झिझकता नहीं। सुनील

का ‘मि. मेहता’ से एक काम अटका पड़ा है। यदि हो जाएँ तो सुनील गाड़ी खरीद सकता है। इसीलिए रक्षा को लेकर कैबरे नृत्य देखने जाता है तो मि. मेहता के दिलफेंक इरादों से वाकिफ़ होने पर भी रक्षा को उनके साथ डॉन्स को विवश करता है। रक्षा उसके कामोत्तेजक हरकतों का प्रतिकार तमाचे से करना चाहती है। परंतु स्त्री होने के नाते अपने पति की अनुचित माँग पूरी करने हेतु विवश होती है। पहले जहाँ त्योहार खुशियों की बहार लेकर आती थी अब पार्टियों का शोर लेकर आती है। यहाँ व्यक्ति किसी न किसी तरह खुद को कामयाब बनाना चाहता है। कामयाबी भी ऐसी कि सात फेरे लेकर बनाई गई अपनी अर्द्धांगनी को भी दाँव पर लगा दिया जाता है। बाज़ार में रुत्बा कमाने के लिए सांस्कृतिक देसी रिवाज़ नहीं पाश्चात्य-अंधानुकरण प्रयुक्त है। रक्षा को समझाते हुए सुनील कहता है कि; नाचने में थोड़ा बहुत यह सब तो चलता ही है।

रक्षा को लगता है कि कैब्रे डान्सर की जगह वह निःवस्त्र होती जा रही है और देह याचना करती घूम रही है। सुनील, रक्षा के ज़रिए ही रक्षा को उसके बर्थडे पार्टी पर गाड़ी खरीदकर दे रहा है। त्योहारों की जगह जहाँ बर्थडे पार्टी ने ले ली वहीं, स्त्री बाज़ार में नुमाइश की वस्तु मात्र रह गई। जहाँ उसी को बेचकर उसी के लिए तोहफे खरीदे जाते हैं। रक्षा की मानसिक स्थिति लेखिका ने बयान की है।

नव उपनिवेशवाद आधुनिकता का बीज पालती है। *'प्रतिध्वनि'* नामक काव्य रूपी कहानी इसी आधुनिक परिप्रेक्ष्य का ब्यौरा रखती है। राजनीति, मतदान, नशा, धर्म, भड़कीली आधुनिक दुनिया के नवीन कारनामे कहानी का सार है। इसमें पार्टी करती आधुनिक दुनिया पर व्यंग्य किया गया है जो गिटार की ताल पर नगाड़े की धमक पर भड़कती नाचती है। आदेश देने बंद हुए नहीं कि, वे अपनी-अपनी सीट पर बैठ जाते हैं और पसीना पोंछ देते हैं। जैसे सम्मोहन टूट गया हो। फिर घर पहुँच जंज़ीरी दिनचर्या में जुट जाते हैं। वे यह भी नहीं जानते कि यह कसाव उसका अपना है। ऐसे लोग यदि भीड़ का अंग बन भी जाएं तो क्या हुआ, उनका तो अस्तित्व ही समूह में है। क्योंकि वे समूह का ही अंश रूप हैं।

> "अपने अपने घर जा कर वे अपनी
> जंज़ीरों में जकड़ें अपनी दिनचर्या में जुट जायेंगे।
> वे न जाने कि उन जंज़ीरों को कसने में उसका
> हाथ है, वह उन्हें भीड़ का अंग बनाता है। तो क्या
> हुआ? वे और ही क्या जानते हैं?"
> वे सिर्फ महसूस करते हैं अपना होना
> अलग से नहीं, सम्मोहित समूह के अंश रूप में।"[1]

---

1. मृदुला गर्ग - ग्लेशियर से - प्रतिध्वनि - पृ. 93, 94

मृदुला जी की *'कितनी क़ैदें'* विज्ञापन एवं बाज़ारवाद को साथ लेकर चलता है। स्त्री किस तरह दूसरी स्त्री को विवाह के बाज़ार में उपयुक्त माल (कच्चा नहीं पक्का माल) बनाने के लिए आधुनिक तरीकों से तैयार करती है; कहानी का सूत्र है। पहनावा, चाल-चलन, खान-पान, मौज-मस्ती, अंग्रेज़ी बोलचाल, मस्तमौला जीवन-यापन आदि के लिए प्रेरित करती माँ, बेटी के अपने ही नशीले दोस्तों द्वारा बलात्कृत होने और घर पर फेंक दिए जाने पर उसे कमरे में क़ैद कर लेती है। जहाँ एक ओर 'मीना' अपने जिगरी दोस्तों से शारीरिक तौर पर पीड़ित है वहीं अपने परिवार द्वारा मानसिक तौर पर भी बलात्कृत होती है। विवाह की मंडी में बेहतरीन प्रदर्शन के लिए बचपन से 'मीना' को तैयार किया गया और वह उसी ठाठ में पढ़ी-लिखी अंग्रेज़ी बोलने वाली बनी थी। पर उसका, आत्मसम्मान पाश्चात्य देखा-देखी में लूट लिया गया। पति 'मनोज' भी पुरुष होने की वजह से पत्नी की इस सच्चाई को बर्दाश्त नहीं कर पाता। मौत की कग़ार से लिफ्ट में ज़िन्दगी की धरातल पर पहला कदम 'मनोज़' इसी सोच के साथ रखता है कि; आगे क्या होगा? "यहाँ तक तो ठीक है, पर अब सवाल मौत नहीं, ज़िंदगी का है। क्या मैं इसकी पिछली ज़िंदगी के शिकंजों से बरी रह सकूँगा? इस औरत के साथ जी सकूँगा?"[1]

1. मृदुला गर्ग - दुनिया का कायदा - कितनी कैदें - पृ. 92

पैसों के मोह में रास्ता भटकती लड़कियों की कमी नहीं। 'पोकट मणी' को दुरुस्त करने के लिए गलत रास्ता अख़्तियार करती लड़कियों की रिपोर्टे बन चुकी हैं। बैंगलूर मंगलापुरम् में ऐसी खबरें सुनाई देती हैं। विद्यार्थियों की आज़ादी क्या गुल खिला रही है बयान करती है। हमारा देश कहीं वेश्यालय न बन जाएँ। आज़ादी इतनी आज़ाद भी न हो जाएँ कि, आज़ादी का मतलब ज़िन्दगी भर की क़ैद में तब्दील हो जाएँ।

'उसकी कराह' भी एक औरत की कहानी है जहाँ स्त्री के खटिया पकड़ने पर भी पुरुष अपने साइकिल का व्यापार बढ़ाना चाहता है। उसे ट्यूटर से त्रस्त पत्नी से अधिक मुनाफ़े का आग्रह है जो उसे बुलंदियों तक पहुँचाएगा। पत्नी तो और भी मिल सकती है। बुआ की बेटी क्या खराब है। सात साल के 'दीपक' के साथ तंदुरुस्त माँ ही अच्छी लगती है। लोग भावनाओं को भी तराज़ू में तौल कर ग्रहण करते हैं।

उपभोक्तावादी संस्कृति में इंसान को आदमी से ज़्यादा चीज़ों की परवाह है। नफ़ा-नुक्सान की फिक्र है। कहीं किसी की मदद करके, देखभाल करके उसका क़ीमती समय तो नहीं नष्ट हो गया, जहाँ वह काफी पैसे बटोर सकता था? आज उसकी यही सोच है। लाभ एवं काम के आगे किसी के दर्द और तड़प के कोई माइने नहीं है। तभी कहानी का 'सुमीत' भी सोचता है कि, यदि 'सुधा' दो महीने बाद बीमार पड़ती और अस्पताल में भर्ती होती तो वह साथ रह उसकी खुद देखभाल कर सकता था।

आधुनिकता बोध के नवउपनिवेशवादी पहलू को मृदुला जी की ‘क्षुधा-पूर्त्ति’ बखूबी अंजाम देती है। ‘भूख’ प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष घटक है। इस अप्रत्यक्ष घटक को मृदुला जी ने कहानी की तीखी नज़र का निशाना बनाया है। ‘कन्हाई’ की भूख आधुनिकीकरण और उपनिवेशवादी ताकतों द्वारा आमूलाग्र आंतरिक भूख की त्रासद परिणति है। ‘क्षुधापूर्त्ति’ ‘संभवतः’ आग्रह का पर्याय है। खौफ़नाक भूख से त्रस्त ‘पेटू’ आज के अत्याग्रह और उसकी पूर्ति हेतु कुछ भी कर गुज़रने वाले दुराग्रहियों का चेहरा साफ करता है। उनकी क्षुधापूर्त्ति तब तक संभव नहीं होती जब तक कि उनका अंत न हो जाएँ। इच्छा और अभिलाषा सामान्य स्तर है पर उसकी आवाजाही अनित्य। ‘पेटू’ का (कन्हाई का) पेट मृत्यु के दौरान भरे रहना उसके अतिमोह की समाप्ति और उसका वक़्त बतलाता है। अर्थात् क्षुधा तब पूर्त्ति के द्वार तक पहूँची जब ज़िन्दगी ही समाप्त हो गई। वर्तमान समय में ये तेज़ रफ़्तार और लाश पर पैर रखकर आगे बढ़ने की होड़, सब कुछ अधीनस्थ लाने की पकड़ के पीछे भागता भगौड़े आदमी का अंत इसी भूख के भार से ही होता है। आधुनिकीकरण की चकाचौंध में टिमटिमाती रोशनी उसकी खुद की आँखें अंधा कर रहा है। औंधे मुंह गिरकर उसका पेट (आग्रह) भरा रहता है। दूसरों का हक़ मारकर खुद का पेट भरने वाले अंततः आग्रहों की बिसात पर खुद मोहरा बन जाते हैं। वैज्ञानिकी और बाज़ारवाद का युग सबकुछ पाकर भी कंगाल है।

असली 'भूख' प्यार, इंसानियत और सद्‌भाव की है। वही 'भूख' तृप्ति का अहसास करा सकती है। इस भाव को समझाना मृदुला जी का उद्देश्य है। बाज़ार के पीछे भागने वाले भगौड़ों से अपनी संस्कृति के बचाव की माँग लेखिका का उद्देश्य है।

'एक और विवाह' में बाज़ार के वैवाहिक पन्नों को उलेटा गया है। विवाह आजकल 'इंटरव्यू' बनकर रह गया है जो कई बार के मेल-मिलाप के बाद तय होता है। अमरीका बसने के लिए तैयार खुले खयालात की पवित्र औरतें आज के मर्दों की पसंद हैं। स्त्री की स्वतंत्रता 'कोमल' द्वारा कहानी में व्यक्त है। स्त्री शादी के बाद घर और नौकरी दोनों संभालती है। पर घरेलू नौकरी के उसे पैसे नहीं मिलते। कोमल की आधुनिक विचारधारा इस वार्तालाप में व्यक्त हैं– "विवाह के बाद आप काम करना चाहेंगी?"

"किस किस्म का काम?"

"मेरा मतलब, नौकरी।"

"पैसों के लिए या बिना पैसों के?"

"क्या मतलब?"

"बिना पैसा पाये नौकरी तो सभी विवाहित स्त्रियाँ करती हैं।"[1]

---

1. मृदुला गर्ग - हरी बिंदी - एक और विवाह - पृ. 28

आधुनिकता के पीछे भागते पुरुष अपनी होने वाली बीवी में सारे आधुनिक गुण चाहते हैं ताकि वे बाज़ार में अन्य पुरुषों से पीछे न रहें। पुरुष शिक्षित, सुंदर एवं आधुनिक विचारों की स्त्रियाँ ही स्वीकारते हैं यह 'मदन' के वाक्यों से झलकता है। साथ में स्त्री को खरीदने - बेचने वाली चीज़ या 'शेयर' का उदाहरण बनाकर मृदुला जी ने बाज़ारीकरण के दौर में स्त्री की विडंबना दर्शायी है।

दिखावटी बाज़ार में कोमल का मदन की दी हुई हीरे की अंगूठी दिखाकर ठाठ बतलाना बाज़ार की चकाचौंध और नस्ल को बतलाता है। शिल्पा शैट्ठी के दो करोड़ की अंगूठी पहनकर सगाई करना, काफी ज़ोर-शोर से अखबारों में आना, बाज़ारवाद नहीं तो और क्या है?

'कलि में सत' नामक कहानी में भी 'मल्टीनेशनल कंपनी' का ज़िक्र और प्राचीन-नवीन राम-सीता-लक्ष्मण, राघव-सीता-लच्छम के ज़रिए व्यक्त है। किसी की बलि चढ़ाकर उन्हीं के नाम का स्मारक बनाकर करोड़ों का व्यापार आम बात है। सीता का अपहरण तब भी हुआ था और अब भी होता है उसी के नाम पर स्त्रियों के कराटे क्लासिस और अन्य प्रकार के मल्टीनेशनल कंपनी जैसे नवउपनिवेशवादी रावण पैदा किए जा रहे हैं जहाँ सीता भी सीधी-सादी नहीं शातिर है। कहानी इसी सार को लेकर चलती है।

'बाहरी जन' की 'नंदिनी' हो या 'सरिता' सभी नव-उपनिवेशवाद के ही शिकार हैं। राजेश्वर अपनी बहुओं से बच्चे के लिए डॉक्टर को दिखाने की सलाह देता है। जो बात खुलेआम नहीं हुआ करती थी वही अब सरेआम होती है। स्त्री खासकर पढ़ी-लिखी सुंदर स्त्री, उच्च घरों में ब्याही जाने वाली मध्यवर्गीय स्त्री, मात्र विज्ञापन का हिस्सा रह गई है। उसे केवल नाते-रिश्तेदारों को सामने प्रदर्शित करने के उद्देश्य से विवाह के बंधन में बाँधा जाता है। 'नंदिनी' के माँ न बन पाने पर राजेश्वर के ये वाक्य इस बात को साबित करते हैं– "अजीब लड़की है, गुमसुम खाये जा रही है। पता नहीं लगने दे रही कि क्या सोच-गुन रही है। इकलौते बेटे के लिए मामूली घर की लड़की ली थी तो यह सोच कर कि सुंदर है और पाँच भाई-बहनों में एक। घर सुंदर पोते-पोतियों से भर जायेगा। नौकरी छोड़ने को भी झट राज़ी हो गयी थी।"[1]

उपर्युक्त कथन से साफ पता चलता है कि सुंदर स्त्री या तो प्रदर्शन के लिए विज्ञापित होती है या सुंदर बच्चा पैदा करने की मशीन के रूप में। उसके विज्ञापन के गुणों में एक गुण है 'शिक्षा'। नौकरी करनेवाली पसंद तो आती है परंतु उसे नौकरी छोड़ने पर भी मजबूर किया जाता है। *'रेशम'* की हेमवती तथा दोनों बहुओं 'प्रीति' और 'तारा' की हालत भी कुछ ऐसी ही है।

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - बाहरी जन - पृ. 515

'वह मैं ही थी' कहानी में उमा नामक स्त्री और उसके परिवार के बीच की महानगरीय दूरी का खुलासा होता है। बेटी उमा अपने परिवार के सोफिस्टिकेटड नगरीयबोध में बाधा मानी जाती है और उसका प्रसव इसी वजह से पति के घर में ही करने का आग्रह घरवाले करते हैं। आज इन्सानी रिश्ते भी रुत्बे के आड़े किस तरह आते हैं, इसका भी निश्चय बाज़ार करता है। आज हर चीज़ का मोल है।

नवउपनिवेशवाद के चलते भारत पाश्चात्य सभ्यता का हामी बन गया है। *'बाकी दावत'* इसी मुद्दे का हिमायती है। बीवीबाई का ड्राइवर मणिराम इस बाज़ार को मालकिन के घर में रोज़ पार्टी के तौर पर लदता देखता है। उसे घिन्न तो है परंतु उसका और उसके परिवार का गुज़ारा इन्हीं उतरन से होता है। बीवीबाई का काम निकालने के लिए गैर-मर्दों के साथ जाना और ऊँची शान में जीना मणिराम खूब जानता है। परंतु उसके घर में अमित और स्वाति की उतरन ही मणिराम के दोनों बच्चे (दीपक और ललिता) पहना करते हैं। मणिराम भी उतरी हुई सेकेंड हेन्ड चीज़ खाता और पहनता है। इस बाज़ार से वह इन्कार नहीं कर सकता और न ही हामी भर सकता है। प्रस्तुत कहानी बतलाता है कि किस तरह आदमी-आदमी का गुलाम बनता जा रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति के अन्धानुकरण से भारतीय सांस्कृतिक मूल्य कहीं खो गए हैं और मणिराम

की बेटी 'पंच सितारा होटल ताज' में रिसेप्शनिस्ट का काम करती है और उसका 'बर्थडे' भी बीवीबाई की मेहरबानी से काफी धूम-धाम से मनाया जाता है। बाज़ार ने जन्मदिन को 'हैप्पी बर्थडे' बना दिया है। 'केक' और 'शैम्पैन' में बात खत्म हो जाती है।। दुआ-सलामी तो खैर अब पुरानी बात हो चली है।

यहाँ साफ झलकता है कि कुछ दिन दिखावे के लिए मनाए जाते हैं। एक तो यह कि, मैं अपना इतना पैसा खर्च कर रहा हूँ। किसी दूसरे के लिए। अपनी 'दरियादिली' का बाज़ार और प्रदर्शन। दूसरा यह कि 'कुछ दिन' केवल मनाने तक ही सीमित है। 'डे' (Day) का सेलिब्रेशन (Celebration) कुछ ज़्यादा ही हो रहा है। माँ से प्यार, पिता का दुलार, अपना जन्म मात्र खास दिन तक सीमित रह गया है। नव-उपनिवेश ने बाज़ार जमाने के लिए 'दिनों' को भी मंडी में उतार दिया है।

'बर्फ बनी बारिश' में माँ-बाप के आपसी रिश्ते नव-उपनिवेश के नए जाल को लाँघने के प्रयास में असफल है। ऐशोआराम के शौक़ विदेशी चाल-चलन भारतीय रूह में यूँ बसी हुई है कि माँ-बाप का प्यार भी तराज़ू में तौला जाता है। एक तरफ पैसा है तो दूसरी तरफ प्यार। अक्सर पैसे का पलड़ा भारी होता है। कहानी में बिन्नी देश में रह जाती है। पर रमेश-सुरेश पिता के साथ अमरीका जा बसते हैं। हम पाश्चात्य संस्कृति के

इस कदर गुलाम बने हुए हैं कि न वक्त का लिहाज़ है और न बड़ों का। लोगों को प्यार की बजाय खरीदी हुई चीज़ों से खुश कराया जाता है। अमरीका के बारे में अमर की राय देखिए-"यहाँ लोग माँ-बाप को याद नहीं रखते, आप कहाँ एक मास्टर को रोते रहते हैं, वे कहते नहीं थे, पर अमर भाँप लेता था।"[1]

विदेशी ठाठ-बाट से प्रेरित होकर यदि भारतीय विदेशी बनना चाहें तो भी वे खास नहीं बन पाते। क्योंकि विदेशी, बाज़ार तो जमाना चाहते हैं, हमारे साथ व्यापार तो करना चाहते हैं पर अपने देश में अपना सा दर्जा नहीं देना चाहते। क्योंकि वे अपनी चमड़ी को श्रेष्ठ समझते हैं। यही भेद *'बड़ा सेब काला सेब'* नामक कहानी में नायिका महसूस करती है। उसे काली-चमड़ी वालों से मदद मिलती है। न्यूयार्क के जे.एफ. के हवाई अड्डे पर उतरकर रेल से चप्पाकुला स्टेशन तक जाने की हिन्दुस्तानी औरत की यात्रा और अन्य विदेशियों का उसके प्रति बर्ताव कहानी में दर्ज है। गोरों की तुलना में काले मददगार साबित होते हैं।

नवउपनिवेशवाद के संदर्भ में *'नहीं'* कहानी भी मुख्य स्थान अदा फरमाती है। 'नहीं' कहानी में 'खेमू' नामक सात साल के बच्चे के माध्यम से आत्मसम्मान और आधुनिकता को दिखाया गया है। आज की

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - बर्फ बनी बारिश - पृ. 578

पीढ़ी का मिरिंडा, कोको कोला, पेप्सी जैसी चीज़ों के प्रति (ज़हर है जानते हुए भी) आसक्त होना और बहु-राष्ट्रीय कंपनियों के मुनाफे का हिस्सा बनना एक महत्त्वपूर्ण बात है। इसी को खेमू द्वारा ट्रेन में मिरिंडा की बोतलों को बेचने के संदर्भ में दिखाया गया है। साथ में नव-उपनिवेशवाद के गुलाम बने यात्रियों के साथ दुष्कर जीवन बिताते खेमू की भी कथा बतायी गई है जिसमें खेमू बोतल की चोरी हो जाने पर भीख में दिए हुए औरत के पाँच रुपये को ठुकराता है। यहाँ खेमू का मालिक उपनिवेशवादी ताकत का पुरोधा प्रतीत होता है जो बोतल के बदले उसकी तन्ख्वाह काट लेता है जिसमें शायद उसे दो वक़्त की रोटी भी न नसीब होती।

नव उपनिवेशवाद में बाज़ारीकरण का खेल टेढ़ी आँगुली से घी निकालकर खेली जा रही है। इसी बात को व्यक्त करता है मृदुला गर्ग का *'विनाशदूत'*। इसमें कालिदास का मेघ जीवनदायक न होकर प्राणघातक है। भोपाल काँड केन्द्र बिन्दु है। जहाँ शुद्ध देसी चीज़े खाई जाती थीं, शुद्ध वायु को स्वीकारा जाता था और शुद्ध जल का सेवन होता था वहाँ आज ये प्रदूषित होकर बोतलों में मिलती हैं। खाने को अजनोमूटा आदि पदार्थों से स्वादिष्ट बनाया जाता है। त्रिकालदर्शी मेघ आशा की किरण तो अंततः छोड़ता है चंद जीवनदायक छींटों के ज़रिए। परंतु वैज्ञानिक जिज्ञासा और विदेशी लगाव आड़े आ जाता है। उसी तरह *'इक्कीसवीं सदी का पेड़'* नव उपनिवेशवादी बाज़ारवाद का नमूना पेश करता है। वक्त बदला, स्थिति

बदली और परिस्थिति भी बदल गई। मालिन्य उभरा बिमारी बढ़ी। तरह-तरह की गाड़ियों ट्रकों द्वारा प्रदूषित वातावरण मृदुला जी इस प्रकार व्यक्त करती हैं। "एक मंज़िला मकान तोड़ कर, ऊँचे ऊँचे हवाई महल बनाये जा रहे हैं। तोड़ फोड़ का मलबा पेड़ों की जड़ों में फेंका जा रहा है। सड़कें चौड़ी की जा रही हैं, फ़लाई ओवर बन रहे हैं। चौड़ी सड़कों पर स्कूटरों, गाड़ियों, ट्रकों की क़तार पर क़तार चली आ रही है। लोग चीख़ रहे हैं, भोंपू पर ज़ोर ज़ोर से नारे लगा रहे हैं, काग़ज़ के पोस्टर और प्लास्टिक के थैले पेड़ों की जड़ों में डाल रहे हैं।"[1]

प्लास्टिकों का इस्तेमाल इतना बढ़ चुका है कि वह ज़िन्दगी के लिए ख़तरा बन चुका है। जो चीज़ किसी भी तरह ध्वस्त न होती हो वह सुविधा के लिए सरकारी रोक के बावजूद सभी हानिकारक जानकारियों के साथ आज भी प्रयोग में लायी जा रही है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने यहाँ खराब माल नहीं रखती। उसे विकासशील या अविकसित राष्ट्रों में बेच देती है। उनका व्यापार भी चलता है और उन पर कोई आँच भी नहीं आती। इसे एक पेड़ के माध्यम से कहानी में व्यक्त किया गया है।

अंत में सिर्फ इतना कहा जा सकता है कि नव-उपनिवेशवाद रूपी असुर अपनी बाहें फैलाकर दुनिया को पूरी तरह कब्ज़े में करना

---

1. मृदुला गर्ग - दस प्रतिनिधि कहानियाँ - इक्कीसवीं सदी का पेड़ - पृ. 107,108

चाहता है। उसका आकार दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। इससे बचने का एक ही उपाय है अपने आप को बिकने से बचाना। अपने ईमान को बाज़ार की वस्तु बनने से बचाना और अपने रिश्तों की नुमाइश से बचना। नव-उपनिवेश नया रूप धारण कर हर क्षेत्र में अपनी जड़े जमाता जा रहा है। चकाचौंध भरी यह दुनिया चंद दिनों की ही मेहमान है इस सत्य से रु-ब-रु होना आवश्यक है। तभी अदृश्य गुलामी से बचा जा सकता है। आज की तारीख में स्वतंत्र भारत कर्ज़दार ही है। विदेशी चले तो गए पर गुलामी कायम कर गए। नौजवानों को नया रुख अपनाने की ज़रूरत है। 'Back-ground to Globalisation' नामक किताब में अविनाश झा नव-उपनिवेशवाद की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि नव-उपनिवेशवाद वह व्यवस्था है जिसमें पूर्व उपनिवेशी ताकतें अपने पूर्व उपनिवेशों पर अपना वर्चस्व बनाए रखने की कोशिश करती है। देशी उत्पादनों एवं देशी बाज़ार का सर्वनाश ही भूमंडलीकरण की प्रक्रिया है।

नवउपनिवेशवादी बाज़ारवाद के दर्शन *'कठगुलाब'* में मिलते हैं। कुछ लोग इसे नवउपनिवेशवादी उपन्यास भी कहते हैं।

'अनित्य' में आज़ादी के पूर्व एवं बाद की स्थिति बयान की गई है। आज़ादी के पश्चात् लोग अपने ही फायदे के लिए जी रहे थे। इसी

पूँजीवादी दुनिया से गरीबी दूर हटाने का ज़िम्मा अनित्य, प्रभा, संगीता, कैलाश जैसे लोगों ने लिया। उन्होंने अमीरों को लूटा और पैसा ग़रीबों में बाँटा। धन-संपत्ति आजकल चंद लोगों तक सीमित है। उन्हीं को लूटकर कुछ सुधार लाने का कार्य भगतसिंह के पदचिह्नों पर चलकर पूरा करना चाहा। यहाँ तक कि संगीता ने भी अपने पति सुरेश मंडोलिया को लूटने में मदद की। मृदुला जी ने प्रभा काजल बेनर्जी और कैशल के माध्यम से नए क्रांतिकारियों का अभ्युदय दिखाया गया है। नम्बर दो के पैसों को ही ये लोग लूटते थे।

नवउपनिवेशवाद का दर्शन 'अनित्य' में हम देख सकते हैं। सरण, मुकर्जी, बाबू, शुक्लजी आदि के ज़रिए महाजनी संस्कृति का उदाहरण मिलता है। जिसमें वे खुद को समर्पित पाते हैं। उन्हें किसी प्रकार का अपराध बोध नहीं है। उनका उद्देश्य अधिकाधिक भौतिक उपलब्धियों को प्राप्त करना मात्र है। 'टोपी' लगाकर गाँधीवाद की आड में खुद का फायदा करना चाहते हैं। काजलबनर्जी का पति 1942 में माफी मांगकर जेल से निकल आने वाला मौकापरस्त मुकर्जी बाबू, उद्योगमंत्री बनकर भ्रष्टाचार फैलाता है। अविजित का जेल-साथी सरण, लाइसेंस, कोटा-परमिट और संस्था की दलाली में पड़ता है। शुक्ल जी भी पहले अवसरवादी बनकर परिवार छोड़कर अविजित के घर में रहें, बाद में लाख रुपयों की

राशि लाने के लिए बरनी में भी रह जाते हैं। बाज़ारवाद का रुख ही ऐसा है कि हर कोई फायदा चाहता है उसके लिए कुछ भी कर गुज़रने को वह तैयार है। उपन्यास में बाज़ारवाद सामने आया है।

'मैं और मैं' में पूँजीवाद के खिलाफ लड़ता कौशल कुमार इस बाज़ार की खिलाफत करता है। पूँजीवादी वर्ग के खिलाफ लड़ाई छेड़ देता है। ग़रीब लड़के के लिए अस्पताल से चंदा इकट्ठा करना भी एक तरह का बाज़ारवाद ही है। ऐसे कई लोग मौजूद है जो मंडी पर लोगों की भावनाओं को बेचते हैं और पैसा कमाते हैं।

'कठगुलाब' में पश्चिम, पूरब सभी जगहों की स्त्रियों के मानसिक दैहिक शोषण की गाथा सुनाई पड़ती है। आज के बाज़ारवाद में हर चीज़ की कीमत होती है। पैसे के दम पर या किसी और चीज़ के दम पर कुछ भी हासिल कर लिया जाता है। जहाँ ब्रिटिशों ने पहले प्रत्यक्ष होकर भारत को गुलाम बनाया था, आज देश की आज़ादी के बाद अप्रत्यक्ष रूप से भारत जैसे देशों को गुलाम बनाया जा रहा है। अमरीका, ब्रिटन आदि देश इस कृत्य में शामिल हैं। स्त्री तो बाज़ार का ही अंग बनी हुई है। इस बाज़ार ने उसका हर तरह से शोषण किया है। उपन्यास में, स्मिता तथा मारियान को स्त्री सहज दुर्बलता में ढाँलकर इर्विंग ने अपने नाम किताब छपवा दी। 'वुमेन ऑफ द अर्थ' पर पूरा रिसर्च मारियान ने किया था।

उसके नाम पिता द्वारा की गई फ्लैट को देखकर ही इर्विंग उससे शादी करता है। इस उपन्यास को रचते वक़्त उसने कहा था - "शेयर तो करना ही होता है। मैं अपना नज़रिया तुम से शेयर करूँगा और तुम अपनी जानकारी मुझसे। तभी न आथेंटिक किताब लिखी जा सकेगी जो हम दोनों की होगी।"[1] मारियान ने अपने ही दिल के अरमान, अपने ही रूप में सभी स्त्री-पात्रों के रूप में उभारा। रूथ की माँ बनने की लालसा। मारियान की ही थी। यहाँ मारीयान इर्विंग के इस उपन्यास को अपनी संतान मानती है जो पिता और माँ दोनों के नाम से जाना जाएगा। जो उन दोनों का अंश होगा। परंतु वह भूल गई थी कि माँ बच्चे को पीड़ा सहकर सिर्फ जन्म देती है। परंतु समाज में नाम पिता को ही मिलता है। इर्विंग ने भी वही किया। किताब छपी तो नाम सिर्फ इर्विंग का था। समाज ने भी उसे नारीमन को बखूबी समझनेवाला बताया। परंतु इस बाज़ारवाद में जहाँ एक की मेहनत दूसरा हड़प ले जाता है और उसको पता ही नहीं चलता कि वह ठगा जा रहा है वहाँ मारियान स्मिता के नाम अगली किताब लिखकर जीत हासिल कर लेती है। उसने कॉस्ट अकांउटैंट गैरी कपूर से शादी कर ली पर तीन बार गर्भवती होकर भी गर्भपात की वजह से माँ नहीं बन पाई। गैरी कपूर को बच्चों की चिल्लपें पसंद नहीं थी। उसी प्रकार स्मिता भी जिम जारविस की कैस स्टडी का शिकार हुई। नर्मदा भी जीजा के षड्यंत्र से पीड़ित है।

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 72

स्मिता का शारीरिक शोषण उसके जीजा द्वारा भी होता है। बहन नमिता द्वारा उसकी विवशता दर्शित है जो सब जानकर भी उस आदमी के साथ रहने के लिए बाध्य है। परंतु गोधड़ में सिस्टरहुड को शुरु कर, बाज़ारवाद के खिलाफ आवाज़ उठाने का काम इन औरतों ने किया है।

वास्तव में मारियान की रूथ, एलेना, सूजन, रॉक्जॉन एक खास पीढ़ी की नहीं बल्कि औरत की हर पीढ़ी का प्रतिनिधित्व कर रही थी। परंतु ये औरतें मरियान की अंतःचेतना का ही प्रतिरूप हैं - "पता नहीं, मारियान की अंतःचेतना उन औरतों का सृजन कर रही थी या उन औरतों की ज़िंदगी मारियान की चेतना का पुनर्निर्माण कर रहीं थी। शायद दोनों एक दूसरे की नियंता थीं। तभी उनकी दिनचर्या का ढ़ेर सारी निजी और गोपनीय बातें, मारियान खुद-ब-खुद जान गई थी। लिखित प्रमाणों की ज़रूरत महसूस नहीं हुई थी। एक तरह से देखा जाए तो मारियान खुद-ब-खुद जान गई थी। लिखित प्रमाणों की ज़रूरत महसूस नहीं हुई थी। एक तरह से देखा जाए तो मारियान, इर्विंग की उपनिवेश है। एक कॉलोनी, जिस पर इर्विंग का अधिकार है। बहला-फुसला कर। उसे जब चाहे इस्तेमाल कर सकता है। उसकी मेहनत को अपना बना सकता है। बाज़ारवाद के इस माहौल में हर चीज़ बिकती है या बिकने पर मजबूर की जाती है। फिर मारियान तो प्यार करनेवाली, प्यार चाहनेवाली साधारण सी महिला है। जिस सृष्टि लिए वह

आतुर है, उसे खुद ही समाप्त करने को तैयार हो जाती है। पर मैं उसे यह याद दिलाना कैसे भूल गई कि साहित्य रचना, वह कर रहा था, मैं नहीं। क्या मैं उसकी कल्पित महानता को अपनी प्रतिभा मान बैठी थी? उसकी रचनात्मक उड़ानों के पंख अपने कंधों पर महसूस करने लगी थी? या प्यार में इस तरह सिलेक्वि बधिर हो गई थी, कि उसकी बातों में यह दावा सुन बैठी थी, कि जो उपन्यास लिखा जाएगा, वह हम दोनों का होगा, दोनों के नाम से छपेगा।"[1]

वास्तव में मारियान पर इर्विंग ने दाँव खेला था जो ठीक निशाने पर जा लगा। मारियान को इर्विंग ने एक चीज़ की तरह इस्तेमाल किया। एक भावुक चीज़ की तरह।

मारियान की मां वरजिनया भी बाज़ारवाद के खेल में अव्वल है। उसने जॉर्ज से दूसरी शादी की थी। उसकी पहली शादी से उसका एक बेटा 'ब्रायन' भी था। वरीजन द्वारा औरत द्वारा चलाई जा रही बाज़ारीकरण का भी ज़िक्र है। वह खूबसूरत भी और खूबसूरती को कभी ढलते भी नहीं दिया। उसे मैकेप से हमेशा छुपाकर रखा। वह अपने पति को कँगला, सन ऑफ दि बिच आदि कहकर पुकारती था। क्योंकि वह अपने बेटे ब्रायन को अपनी आधी संपत्ति दे गया था। उनकी मृत्यु पहले हुई थी।

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 74

ऐसी कई औरतें हैं जो शादी के बाद तलाक़ लेकर सिर्फ पैसों के लिए एलियनी की माँग का दुरुपयोग करती हैं। शादी को बाज़ार बनाने वाले स्त्री पात्र भी खूब मौजूद है। अपनी खूबसूरती के बल पर उसने शादी ही इसलिए की थी कि, जॉर्ज खूब अमीर था परंतु जार्ज वरजिनया पर जान छिड़कता था। आज का बाज़ारवाद बाज़ार में बिकती खूबसूरत चीज़ों पर काफी आधारित है। वरजिनया मैकेप करके अपनी बेटी से भी युवा दिखना चाहती थी और ऐसा ही होता था। "कम-से-कम डिज़ाइनर कपड़ों में, कॉस्मेटिक-सर्जरी और पेशेवर मेकअप की मदद से, वह दिनोंदिन जवान् होती दिखलाई ज़रूर दे रही थी।.... मेरी छोटी बहन वह ज़रूर लगती थी, कितनी बार लाोग कह भी चुके थे। नवयौवना के नखरे दिखलाती वरजिनया बाज़ारू भले लग जाऊ, अटपटी कभी नहीं लगी थी।"[1]

धार्मिक समस्या

धर्म की विशिष्ट अवधारणा भारतीय परम्परा में अनुपम है। सामान्य धर्म के अन्तर्गत सार्वभौमिक आचरण से सम्बद्ध वे नियम आते हैं, जिन्हें समाज के समस्त सदस्यों हेतु अनुकरणीय माना जाता है। मनु ने इस संदर्भ में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह इत्यादि का उल्लेख किया है। धर्म की दार्शनिक दृष्टि के अंतर्गत धर्म के वे आयाम आते हैं,

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 63

जो सत्य अथवा आधारभूत मानवीय लक्ष्यों एवं मूल्यों को संदर्भित करते हैं। धर्म मात्र वैयक्तिक आचरण की वस्तु नहीं अपितु सामाजिक व्यवहार का निर्धारक भी है। धर्म का मूल लक्ष्य व्यक्तिगत उन्नति (लौकिक-पारलौकिक) अवश्य है, किन्तु सामाजिक सदाचार व कर्त्तव्य-पालन के अभाव में वह स्थिति अप्राप्य ही है। धर्म वस्तुतः पूरी तरह जीने का एक तरीका है। वह विश्वासों से अधिक जीने की प्रक्रिया पर आधारित है। प्राचीन शास्त्रों में केवल 'धर्म' शब्द मिलता है और उसके पूर्व दो या तीन ही विश्लेषण पाये जाते हैं – मानव धर्म, सनातन धर्म, आर्य धर्म। धर्म शब्द के प्रायः अंग्रेज़ी के रिलीजन (Religion) शब्द के समानार्थी के रूप में प्रयुक्त होने से भ्रम उत्पन्न होता है। वस्तुतः भारतीय चिन्तकों हेतु धर्म विशिष्ट पूजा-पद्धति या ईश्वर की मान्यता नहीं रहा। धर्म औचित्यपूर्ण कर्तव्य के रूप में पारिभाषित हो सकता है। धर्मशास्त्रों में पूजा-पद्धति नहीं वरन् सामाजिक-राजनीतिक चिन्तन तथा व्यक्ति के आचार-व्यवहार संबन्धी निर्देश हैं। वर्ण-धर्म, आश्रम धर्म, राज-धर्म प्रयोग हैं। *डॉ. प्रशान्त त्रिपाठी* अपनी किताब *'स्मृति विमर्श धर्मशास्त्रों का समाजशास्त्रीय संदर्भ'* में कहते हैं – "जीवन के किसी भी क्षेत्र में, जो कुछ धर्मयुक्त है, वही स्वीकार्य है, मान्य है, ग्राह्य है और जो कुछ अधर्मयुक्त है, वह त्याज्य है। धर्म ही सुख का मूल है।"[1] इन सभी व्याख्यानों के उपरांत भी 'धर्म' का अर्थ ईश्वरीय

---

1. डॉ. प्रशांत त्रिपाठी - स्मृति विमर्श : धर्मशास्त्रों का समाजशास्त्रीय संदर्भ - पृ. 14

सत्ता से भी जुड़ा है। आज विश्वास दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। विश्वास कहीं-कहीं 'अंधविश्वास' में परिणत भी हुई है।

धर्म सामाजिक इकाई है। धर्म सार्वजनिक नीति के तहत विधिवत् कर्त्तव्य पालन का मार्ग सुझाता है। धर्म की संकल्पना में ईश्वर है। 'ईश्वर' वह है जो सृष्टि का जन्मदाता पालक और संहारकर्ता के रूप में माना गया है। 'धर्म' का निहित अर्थ ईश्वरीय मार्ग के ज़रिए व्यक्ति को सत्कर्म के लिए प्रेरित करना है। इसी के तहत पूजा-पाठ और अन्य संस्कार-विधियाँ, सद्भाषण आदि लागू किया गया ताकि सामाजिक मूल्य शुद्ध सत्कर्म पर केन्द्रित हों। परंतु धर्म अंधविश्वास और रुढ़ियों से भी जुड़ा है भारत जैसा धर्म निरपेक्ष राज्य भी धार्मिक समस्या में डूबा हुआ है। भारत में मौजूद अनेक धर्म विशिष्ट सामाजिक संस्कृति का निर्माण करता है। धर्म के कई अर्थ सामने आते हैं। हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई सभी के धार्मिक विश्वास के देवता अलग-अलग हैं परंतु मूल तत्व एक हैं। जन हिताय किए जानेवाले अनेक फैसलों को सरकार किसी भी धर्म के तहत नहीं रखती। सरकार ने धर्म के संबंध में धार्मिक स्वतंत्रता, धर्म-निष्पक्षता और धर्म-सुधार ऐसे तीन नीतियों का ऐलान किया। धार्मिक मामले इतने जटिल हैं कि *'सुधीश पचौरी'* जी इसके संबंध में कहते हैं – "धर्मनिरपेक्षता की भावना को गहरा करने की जगह धर्मसापेक्षता की प्रक्रिया ने ऐसी स्थिति

पैदा कर दी कि आज व्यक्ति के लिए धर्म से बाहर अपना अस्तित्व समझना दुश्वार हो रहा है।"[1]

वर्तमान युग में धार्मिक-पुरोहित बिकता-बाज़ार है। प्रत्येक पुरोहित के अलग-अलग स्तर या ब्रान्ड हैं। अपने सामाजिक स्तर के हिसाब से हिन्दू-मुस्लिम इन्हें बुलाते और धार्मिक कर्म कराते हैं। मृदुला गर्ग हिन्दी साहित्य में एक ऐसी शख्सियत का नाम है जिसने धर्म में छिपे अनेक मसलों को उठाने का प्रयास किया है। मृदुला गर्ग *'क़रार'* कहानी में गाँववालों के धर्म के मामले में निहित अंधविश्वास को प्रस्तुत करती हैं। चेरी यूनीसेफ नामक चीनी स्त्री जो अमरीका से भारत जलसंचय व्यवस्था के प्रोजेक्ट के लिए आई थी। जोधपुर की जगह वह जिस गाँव में उतरती है वहाँ कुएँ का पानी खेजड़ी वृक्ष को देने की परंपरा है चाहे उनके पास खुद पानी क्यों न हो।रेगिस्तानियों की दृष्टि में खेजड़ी का वृक्ष दैवी है; जो खुद-ब-खुद उगता है। न उखाड़ा जाता है और न उगाया।

'चेरी यूनीसेफ' की मुलाक़ात पाबूजी के मंदिर में अकाल राहत के नाम पर बन रहे तालों की मिट्‌टी खोदनेवाले मज़दूरों से होती है। पंडित ने बताया कि सरकार शहर के लिए ट्‌यूबवेल खोदती है और पूरा पानी उलेड़ ले जाती है। धर्म नियति मानकर लोग सूखा पड़ने पर घरबार

---

1. सुधीश पचौरी - हिन्दुत्व और उत्तर आधुनिकता - पृ. 17

छोड़कर चले जाते हैं और बारिश होते ही वापस आ जाते हैं। चेरी यूनीसेफ धर्म नियति से लोगों को बाहर निकलवाने का प्रण लेती है। यहाँ धार्मिक स्थल है इसलिए उसके पेड़ छाँटे नहीं जा सकते। वे दुःखी हैं कि जिस पेड़ के कारण अन्य पेड़ आसपास उग नहीं पाते। गाँववालों के इस अंधविश्वास को वह दूर करना चाहती है।

धर्म के नाम पर अंधविश्वास तो फैले ही हैं साथ में कई ऐसे मसलों को भी मानने से इंकार किया है जो आज की तारीख़ में मानवता के लिए ज़रूरी हैं। जैसे मुसलमानों का मज़हब कितनी ही संतान चाहें पैदा करने का हामी भरता है। उसे खुदा की मिलकियत समझता है। माना कि बच्चे ईश्वर का ही रूप होते हैं पर बढ़ती हुई आबादी से बचने के लिए लिया गया नियम पालन करना भी ज़रूरी है। "हम दो, हमारे दो" के नारे को परिवार-नियोजन के लिए हर धर्म को दायित्व समझकर पालन करना चाहिए। *"मेरे देश की मिट्टी, अहा"* नामक कहानी में 'लल्ली' द्वारा सरकार ने गर्भनिरोधक गोली देकर महिलाओं को जागरूक करने की योजना पंचायत द्वारा चलाई तो गाँव के मर्दों के साथ-साथ औरतों ने भी विरोध किया। लल्ली के लैला बन शोहर के साथ गाँव में आने पर उसकी असलियत का पता चलता है।

परिवार-नियोजन के पाक् इरादे को धर्म के नाम पर खदेड़ा गया। मुसलमान ब्याह करने की छूट मर्दज़ात को देते हैं चाहे कितनी भी। और बच्चे तो ख़ुदा की नियामत हैं; उसे नज़ाकत से सहेजा जाता है। अतः उनके मज़हब के खिलाफ है - 'नसबंदी'। परिणाम निकलता है - 'जनसंख्या 'वृद्धि' जिसे थामना इंसानों और प्रकृति दोनों के बस में नहीं रहता। *'मेरे देश की मिट्‌टी, अहा'* में धर्म की एकता भी लल्ली द्वारा नज़र आती है इस एकता का आग्रह मृदुला जी का है। इसीलिए तो धर्म-परिवर्तन के पश्चात् मुसलमानों के लिए लड़ती है।

मृदुला जी की *'छलावा'* ऐसी कहानी है जिसमें काल्पनिकता को लेकर एक अलग ही तथ्य उभारा है। लेखिका कहती है कि; जो चीज़ नामुमकिन है उसके पीछे भागकर अपना वक्त बर्बाद करने का कोई फायदा नहीं। अनागत, अगम्य, अप्राप्य के पीछे दम लगाने का अर्थ है ख़ुद का ही नुक़्सान करना। दुनिया में ऐसे कई लोग हैं जो ईश्वर की पूजा करते हैं पर अपना कार्य नियमित तौर पर नहीं करते। ऐसे लोगों से लेखिका कहती हैं कि बेक़ार बैठ यह सोचने से कि, एक अज्ञान शक्ति तुम्हारा काम पूरा करेगी एक धोखा है - 'छलावा' है। कार्य की पूर्त्ति ख़ुद की मेहनत से होती है वरना सब बेक़ार है।

'सात कोठरी' स्त्री की सदियों पुरानी दास्तान को ज़ुबा देती है। समाज के कार-प्रतिकार का हामी भी है - *'सात कोठरी'*। धर्म के नाम पर सती-प्रथा के जंझाल में फँसी महिलाओं के संताप की कहानी है - *'सात कोठरी'*। धार्मिक दृष्टि से दहेजप्रथा से झुलसती सात कुँआरियों का सती हो जाना कहानी का केन्द्र बिन्दु है। एक साहित्यकार जो पर्यटन के लिए सात कोठरियों के दर्शन करती है तब उसे वहाँ की कथा का ज्ञान होता है कि पुराने ज़माने में सात कुँआरी लड़कियाँ हुआ करतीं थीं जो ख़ुद को महादेव की ब्याहता बतलाती थीं, सती मानती थीं। सूखा पड़ने पर गाँव वाले ने कहा कि; कुंआरियों के गाँव पर नाच करने से ही यह हालत हुई है। लोगों के अंधविश्वास का ब्यौरा उपर्युक्त विचारों से मृदुला जी कराती हैं– "फिर हुआ यूँ कि उस साल भी पिछले दो सालों की तरह गाँव में भयानक सूखा पड़ा। जो झरने, ताल, तालाब पहले बच गये थे, वे भी अब सूख गये। गाँव में हाय-हाय मच गयी। बड़े बूढ़े बोले सात-सात जवान कुँआरियाँ छाती पर मूंग दलोगी तो और क्या होगा।"[1]

कहा जाता है कि सातवीं, सती नहीं हुई। सती होतीं तो गाँव में सूखा नहीं पड़ता। माना जाता है कि आज भी सातवीं, सती कपड़े धोने वहाँ महादेव के मंदिर आती है।

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - सात कोठरी - पृ. 720

धार्मिकता को लेकर चलने वाले हम चाहे ख़ुद को कितना ही आधुनिक बतला लें पर अंदर ही अंदर डरते हैं कि कहीं अदृश्य शक्ति हमारा कुछ नुक़्सान न कर दें। अपनी कार्यसिद्धि के लिए लोग कई उपहार चढ़ाते हैं, 101 रुपये देने का वादा करते हैं। करन- जोहर का 'K' फोर्रमुला किसी नए पिच्चर की शुरुआत पर नारियल फोड़ना, पढ़े-लिखे नौजवानों का बर्त-स्टोन पहनना आदि इसी बात का सबूत है। कुंड़लियों का मिलाना भी तो एक तरह का धार्मिक अंधविश्वास है। इससे जाने कितनी लड़कियाँ ना चाहते हुए भी कुँआरी रह जातीं हैं। मृदुला गर्ग की *'नेति-नेति'*, ईश्वर पर रखनेवाले अंधविश्वास का हामी है। जहाँ लेखिका ने विश्वास को श्रेष्ठ बतलाया है अंधविश्वास को नहीं।

'नेति-नेति' में मास्टर श्यामल एक छोटे शहर में हिन्दी की क्लास लेने आया है। अपने ख़र्च पर नहीं बल्कि उन्हें किसी ने बुलाया है। उन्हें अपने शहर का नाम याद है। एक दिन के लिए आए उस शहर में वह बस में एक साथी से मिलता है, जो उन्हें मंदिर जाने के लिए आमंत्रित करता है। अक्सर, विश्वास एवं अविश्वास के भीतर अटके आदमी के साथ ऐसा होता है कि कोई मंदिर जाने के लिए बुलाए तो सीधे मुँह मना नहीं कर पाता। किसी अद्वितीय शक्ति के शाप का डर रहता है। "क्षमा करो भगवान, उसने सोचा भर नहीं मुँह से उचार भी दिया। क्षमा करो। ममता की रक्षा करना। मैं इक्यावन रुपये का चढ़ावा भेटूँगा अभी। वह साथी को ठेल-

ठेल कर आगे बढ़ाने लगा। बेमतलब बुदबुदाते हुए, "चलो भाई दर्शन कर लो, शांति मिलेगी मेरे भाई शांति....."[1]

अंत में वे भी बस के रुकने पर मंदिर की ओर चल पड़े। रास्ते भर साथी पूछता रहा कि क्या भगवान होते हैं? इस सवाल का उत्तर श्यामल मास्टर भी खोज रहे थे। धर्म का रूप धार्मिक ही नहीं ज़िम्मेदारी भी होता है। परंतु स्त्री का धर्म समाज ने निश्चित किया है चुप्पी का, सब कुछ सहने का। इन धर्मों का ज़िक्र *'वितृष्णा'*, *'तीन किलो की छोरी'*, *'रेशम'* आदि कहानियों में मिलता है। परंतु इस धार्मिक समस्या के अंतर्गत धर्म संबंधी समस्याओं को ही जोड़ा है। मृदुला जी की 'अगली सुबह' सिक्ख और हिन्दु धर्म के बीच का मतभेद है जो 1984 में इंदिरा गाँधी हत्याकांड की वजह से पनपा। यही धर्म सांप्रदायिकता में बदल गया।

निष्कर्षतः मृदुला जी कहना चाहती हैं कि धर्म के कई पहलू हैं उनमें सही को चुनकर मानवता की रक्षा करनी चाहिए। धर्म ने इंसान को नही इंसान ने धर्म को बनाया है।

आर्थिक समस्या

आर्थिक असमानता के कारण भारतीय जनता में असन्तोष की ज्वाला प्रज्वलित होती जा रही थी। बेरोज़गारी, ग़रीबी, भूख, काला

---

1. मृदुला गर्ग - जूते का जोड़ गोभी का तोड़ - नेति-नेति - पृ. 220

बाज़ारी, भ्रष्टाचार आदि जनसामान्य के जीवन को ध्वंस्त कर रहे थे। अर्थ ही जीवन का विधायक बन चुका था। मूल्यों के विघटन से मानव का मूल्यांकन धन के आधार पर ही होता है।

सर्वप्रथम अंग्रेज़ों ने भारत का आर्थिक शोषण किया। औद्योगिक क्रांति ने तो जैसे नींव ही हिला दी। भारत के ग्रहोद्योग, मशीनी उद्योग के सामने ठप्प पड़ गए। बेरोज़गारी बढ़ी, किसानों का श्रम महत्वहीन होने लगा, ज़मीन का कब्ज़ा साहूकारों के हाथों आ गया। 1920 के करीब की साम्यवादी विचारधारा ने भी तीव्र प्रभाव छोड़ रूस की लाल क्रान्ति ने आग में घी का काम किया। मज़दूर, मध्यवर्ग, किसान पिछड़ गए। पूँजीपतियों की धन-संपदा आसमान छूने लगी और मज़दूरों की स्थिति दयनीय हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति तक दोनों की खाई और गहरी हो गई। बढ़ती ग़रीबी और बेकारी ने आज़ादी के पश्चात् भी अर्थव्यवस्था में बदलाव लाने नहीं दिया। आम आदमी इसके चंगुल में बुरी तरह फँस गया। सन् 1971 ई. के भारत-पाक युद्ध से भारत का आर्थिक क्षेत्र काफी नीचे आ गया। जान-माल की हानि के साथ युद्ध की जीत भी थी। हमारी सरकार इस जीत पर गर्वित थी किन्तु जन-जीवन की विषमता की तह पाना मुश्किल था।

आर्थिक विषमता के घेरे से साहित्यकार ख़ुद को अलग न कर सका। इसलिए प्रेमचंद, यशपाल जैसे साहित्यकारों ने अपनी-अपनी रचनाओं

में आर्थिक संकट से उत्पन्न विषमताओं का चित्रण किया है। लेखिका मृदुला गर्ग ने मज़दूरों की दयनीयता, निम्नवर्ग का विद्रोह, वर्ग-संघर्ष का चित्रण, पूँजीपतियों की भर्त्सना, राजनीतिक मुनाफ़ा, उद्योगपति-मंत्रियों की धनसंचय हेतु साँठ-गाँठ आदि को अपनी रचना का विषय बनाया है। अर्थमूलक संस्कृति पर कईयों ने अपने विचार दिए हैं। इसे समाज में अनैतिकता, भ्रष्टाचार, गुण्डागर्दी, हिंसा, अराजकता का केन्द्र माना है। और यह उनकी *'नहीं', 'बेनकाब', 'मौत में मदद', 'टुकड़ा-टुकड़ा आदमी', 'नकार', 'उसका विद्रोह', 'बाकी दावत'* जैसी कहानियों में व्यक्त है।

मृदुला जी ने आर्थिक विषमता का चित्रण *'अनाड़ी'* नामक कहानी में सुवर्णा नामक बारह वर्षीय बच्ची के माध्यम से प्रस्तुत किया है जो स्कूल जाने की उम्र में किसी अमीर घर की नौकरानी है। परंतु उस पर कोई बेचारगी जताए यह उसे पसंद नहीं। तरस खाते सेठ से वह कहती है- - "इतना तरस आ रहा है तो भेज दो ना इस्कूल। करवा दो उसकी पढ़ाई-लिखाई का इंतेज़ाम। ना, वो इनके बस का नईं। फिर कौन करेगा झाड़ू-फटका, कौन मलेगा भांडे। चः। और ये बेचारी बेचारी बी कितने दिन करेंगे। मक्कार !"[1]

'मौत में मदद' मज़दूरों और गरीब तथा निम्न वर्गों के प्रति अमीरों की तुलनात्मक छोटेपन तथा हीनता का भाव व्यंग्य के साथ प्रस्तुत

---

1. मृदुला गर्ग - स्त्री मन की कहानियाँ - अनाड़ी - पृ. 41

है। बुद्धन की आर्थिक लाचारी से उसका छोटा बेटा बुख़ार से भगवान को प्यारा हो जाता है। उसके अंतिम संस्कार करने के लिए भी बुद्धन असमर्थ है। ऐसे में मालकिन के साथ हुए वार्तालाप में इंसानों की अमानवीयता साफ ज़ाहिर है। लाचारगी की बात जानते हुए भी कोई मदद नहीं की गई परंतु मृत्यु पर कफ़न चढ़ाने साथी आ टपकते हैं।

मौत के वक़्त व्यक्ति पैसे देकर अपनी ज़िम्मेदारियों से मुक्त हो जाता है। हृदय तो पत्थर का ही रहता है। बुद्धन के बेटे की मौत उनके लिए साधारण सी घटना है। ज़िन्दगी में आदमी आर्थिक सहायता करने की ना चाह रखता है और ना ही वक़्त। वक़्त तो मौत पर भी नहीं होती पर हाँ दाह-संस्कार की ज़िम्मेदारियों से पैसे के बल पर मुक्त हो जाता है।

'स्थगित कल' नामक कहानी में भी प्रवीण की आर्थिक दृष्टि से कमज़ोरी दोस्त विपिन के सामने उसे कर्ज़दार बना देती है। मृत्यु के वक़्त भी उसे अपने घरवालों की चिंता है कि यदि वह कल न रहा तो उसका घर दाने-दाने के लिए मोहताज हो जाएगा। वहीं विपिन मौत के क़रीब जाने का नाटक तो करता है ताकि वह अपने अज़ीज़ लोगों को जान सकें और मौत की पहचान कर सकें। परंतु उसे सुकून है कि उसकी पत्नी के पास जीने के लिए पैसे हैं। यहाँ प्रवीण की आर्थिक विवशता अंकित है।

'उर्फ़ सैम' में भी सावनप्रताप सिंह आर्थिक समस्या के कारण ही अपना देश छोड़ विदेश जाता है। जहाँ लोग उसे पूछते तक नहीं थे विदेश जाने के बाद बड़ी इज़्ज़त करते हैं। मृदुला जी कहतीं हैं– "उसका उसूल है कि अपने नये देश के खिलाफ़ कभी कुछ नहीं कहता। कहीं किसी सिरफिरे की आँखों का रश्क तरस में बदल गया तो? फिर उस देश की बदौलत ही उसे यह रुतबा हासिल हुआ है कि अपने देश में बड़े से बड़े आदमी से नज़रें मिला कर बात कर सकता है।"[1]

आर्थिक संपन्नता ने ही सावनप्रताप सिंह को लोगों की नज़रों में इज़्ज़त दिलाई। झूठी ही सही पर उसे उसकी अमरीकी ठाठ और धन के बलबूते पर ही लोग पूछते हैं।

अमीरी-ग़रीबी का फ़र्क 'अर्थ' ज़रूर पैदा करता है। आदमी को आदमी का गुलाम बना देता है। इंसान को इंसान से अलग कर देता है *'पोंगल पोली'* में जहाँ गाँव की भोली-भाली संस्कृति का ज़िक्र है वहीं उनकी कला के साथ निहित अभावग्रस्तता भी अंकित है। शोध करने आए दो युवक-युवती, 'फकीरप्पा' और 'सोनम्मा' की यक्ष-यक्षणियों की तरह थे। ग्रामीणों की विपन्नावस्था देखकर इनमें सहानुभूति पैदा होती है।

---

1. मृदुला गर्ग - चर्चित कहानियाँ - उर्फ सैम - पृ. 121

यहाँ यक्ष यक्षणियों की तरह शहर वासियों का लगना बताता है कि आर्थिक अभाव के कारण ग्रामीण जनता कितनी सख़्त और अमीर कितने नरम-सुंदर होते हैं। यह भी 'अर्थ' का ही खेल है। *'मधुप पत्रकार'* में पत्रकार पैसों की चकाचौंध में अपने उसूलों से फिर जाता है। कहानी का पत्रकार 'मधुप' अपने सहयोगियों के लिए तो क्रांतिकारी भाषण देता है। करोड़पतियों एवं पूंजीपतियों के विरुद्ध पत्र में उनके छक्के छुड़ाता है। उसकी 'इमेज' ही विद्रोही क्रान्तिकारी की है। वही, बीस हज़ार रुपयों में अपना उपन्यास 'माया-दर-माया' फ़िल्म बनाने हेतु बेच आता है। पत्रकार में धन के प्रति लोभ पैदा करने के लिए करोड़पति सेठ का सेक्रेटरी कहता है कि जिसके पास धन होता है वे धन देकर कला पाना चाहते हैं और वही होता है। करोड़पति का सेक्रेटरी कहता है- "“कला और धन, इनमें तो सभी को रुचि होती है, मधुप जी, 'सैक्रेटरी आंख दबा कर हंस पड़ा, “हमारे पास धन है तो हस कला ख़रीदना चाहते हैं, “उसने कहा, “और आपके पास कला है तो आप धन पाना चाहते होंगे।”"[1]

इसी धन के आड़े करोड़पति मधुप पत्रकार को शतरंज का मोहरा बनाकर खेलता है। पैसा ऐसा राक्षस है जो आदमी को लोभ के कुएँ में धकेल देता है। लोभ समाज के रक्षक को भक्षक बना देती है ऐसे कई

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - मधुप पत्रकार - पृ. 176

ज़िम्मेदार, ईमानदार, आक्रोश से भरे समाज के हिमायती हैं जो अर्थ के लोभ में; या साहचर्य के कारण ख़ुद को बेच देते हैं। इस बिकाव में सामने वाले की कूटनीति और बिकने वाले की कमज़ोरी मात दे जाती है।

'अर्थ' ने जाति का भेद मिटाने में मदद की है। जहाँ जात-पात को सबसे ऊँचा दर्जा दिया जाता था वहीं अर्थ ने रुत्बा दिला दिया। *'तीन किलो की छोरी'* में शारदाबेन जब से ग्रामसेविका बनी और 100 रुपया माह कमाने लगी तो, उसका मर्द, बेटा और पूरे गाँववाले उसकी वाहवाही करते हैं, उसे इज़्ज़त देते हैं।

'बेनक़ाब' में माधो के द्वारा कहानीकार ने अपने विचारों को व्यक्त किया है। इसमें ज़मींदारी अत्याचार के खिलाफ क्रांति का आह्वान है। निर्भीक, अद्भुत, बाग़ी चरित्र माधो लेखिका के विचारों का वाहक है। एक मामूली ग़रीब किसान के विद्रोह करते हुए डाकू और बागी बन जाने का उल्लेख है। प्रस्तुत कहानी का क्षेत्र चंबल की घाटी है और ज़मींदारों पुलिस और सरकारी कर्मचारियों का शोषण व्यक्त है। ज़मींदारों की शोषक नीति मासूमों-मज़लूमों का ज़मीन हड़पना, ग़रीब स्त्रियों का बलात्कार आदि के खिलाफ माधो का अस्त्रु पुलिस और सरकार को रास नहीं आता। क्योंकि वह उनकी सत्ता को हिलाना था। बड़े अधिकारियों की मदद से विद्रोही ग़रीबों को चोर और उग्रवादी घोषित करने वाली अनेक घटनाएँ

कहानी में दर्ज हैं। 'अर्थ' अपने को पराया तो बनाता ही है बल्कि अमीरों को गरीबों पर किसी भी तरह का शोषण करने का 'लाइसेंस' भी प्रदान कर देता है। पुलिस और ज़मींदारों के घृणित एवं क्रूर व्यवहार को बेपर्दा करती कहानी है - *'बेनकाब'*।

'विनोबा बावे' की जगह जयप्रकाश के सामने माधो ने आत्मसमर्पण सिर्फ इस वादे पर किया कि उसके साथियों के घरवालों को सरकार ज़मीन वापस कर देगी। परंतु अदालत में सरकार अपना रंग दिखा गई। और वहीं उसी माँ के साथ हुए पुलिस बेतवा द्वारा बलात्कार और पिता के साथ हुए अन्याय का खुलासा होता है। ओंकारसिंह माधो कहता है – "उस हरामी इंसपेक्टर ने आपकी माँ के साथ किया होता, आपकी बेटी के साथ किया होता.... तो कुछ नहीं करते आप लोग, कुछ नहीं करते। बात को दबा जाते, माँ को चुपचाप जला आते, बेटी को फ़रार कर देते और कोसने दे कर कहते हे भगवान, इंसपैक्टर बेतवा मर जाये। नहीं? नहीं करते ऐसा आप लोग? करते। यही करते आप लोग!......"[1] डाकू की ज़िन्दगी और आदमी के अपराधी होने के यथार्थ पर लिखी कहानी 'बेनकाब' का यह सार वाक्य कि 'कायर होने से अपराधी हो जाना ज़्यादा बेहतर' है गाँधीवादी सोच पर भगतसिंह की क्रांतिकारी दबंगता का प्रहार है।

---

1. मृदुला गर्ग - जूते का जोड़ गोभी का तोड़ - बेनकाब - पृ. 202, 203

जब तक ग़रीब भी आर्थिक रूप से संपन्न नहीं होंगे और उनके हक़ नहीं मिलेंगे ऐसे विद्रोही डाकू बनते जाएँगे। उनके पास बागी होने के सिवाय कोई रास्ता नहीं रह जाएगा। यह वर्ग-संघर्ष है अमीरी-ग़रीबी का। बेनकाब इसी आर्थिक विषमता का ब्यौरा रखती हैं।

आदमी तो अपने द्वारा हुए अन्याय को भी भूल जाते हैं। पर खुद पर हुआ नहीं कि ईश्वर की दरगाह पर पहुँच गए। उन्हें पुकारने लगे। शायद कोसने और शायद यह कहने लगे कि, उनके साथ जिसने बुरा किया, उसका बदला ईश्वर लेगा। वे डरपोक होते हैं, कुछ भी करने से डरते हैं और बदला लेने से डरते हैं। वे अपने पर हुए अत्याचार की अपने मान-सम्मान की परवाह के लिए छिपाते हैं। यादि जो माधे के साथ हुआ तो अन्य आम आदमी के साथ होता तो ईश्वर के पीछे ख़ुद को छिपाने की कोशिश करता।

'मैं और मैं' उपन्यास का छोटा रूप *'नकार'* कहानी आर्थिक भेद को इंसानों के बीच दिखाता है। कलाकार कई माइनों में कला के पारखी के अभाव में आर्थिक विपन्नता के जंझाल में झुलसते हैं। *'नकार'* कहानी में भी एक कलाकार निर्धनता, अभावग्रस्तता और लाचारी में ज़िन्दगी गुज़ारता है। उसकी अस्मिता की प्रखरता कहानी में दर्ज है।

प्रस्तुत कहानी का चित्रकार दिमाग की नसों को झंकृत कर देनेवाली अद्‌भुत, अतुल्य चित्र कैनवास पर उतारता है पर खरीदने वाले कतराते हैं। पर चित्रकार की उम्मीद कायम है कि कभी न कभी कोई पारखी मिलेगा। उसे पैसा मात्र जीवन के लिए चाहिए। वरना तो सब बेकार है। यही समझता है। उसे कई बार उधार भी माँगना पड़ता है। उसकी दृष्टि में जीवन नकार है। उसे जीवन में न प्यार मिला न विश्वास और न पैसा। चित्रकारी में उसका निःस्वार्थ भाव है। कथानायिका जो उसके कला की पारखी है उससे वह उधार की माँग करता है। नायिका की आमदनी भी बँधी-बँधाई होने की वजह से उधार दे पाना कठिन है। परंतु, उधार, उधार ही बना रहता है वह लौटा नहीं पाता। बार-बार के उधार माँगने और साम्यवादी विचारों पर ही बात करते उस चित्रकार को वह इंकार नहीं कर पाती और ना ही हाँ कर पाती है। उधारदाता की यह स्थिति सामान्य है। ऐसी घटनाएँ रोज़मर्रा होती रहती है। आर्थिक विषमता का वर्णन लेखिका के वाक्यों में व्यक्त है। "कितने लोग हैं जो नौकरी करते हैं सारी उम्र करते आए हैं- - - - पर अपनी ज़रूरतों को पूरा नहीं कर पाते भूख जैसी तेज़ ज़रूरत तक नहीं- - - - सिर पर एक छत तक नहीं जुटा सकते।"[1]

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - नकार - पृ. 435, 436

भारत की आम जनता की आर्थिक स्थिति की दयनीयावस्था *'नकार'* में दर्ज है। रोटी, कपड़ा, मकान जैसी आधारभूत आवश्यकता भी नहीं पूरी हो पाती।

'नहीं' कहानी में खेमू द्वारा बाल मज़दूरी की समस्या उद्धृत है। ट्रेन में पूरा दिन घूम-घूमकर पेप्सी-कोला बेचना, बोतल के चोरी हो जाने पर औरत का चिल्लाना, भीख की तरह पैसे देना तथा खेमू के आत्मसम्मान का छलनी हो जाने पर खोए हुए बोतल को फिर ढूँढना कहानी में प्रस्तुत है। अर्थ के अभाव से ग्रसित खेमू की विषमता का मज़ाक उड़ानेवाले आरामपरस्त मौज मस्ती परस्त लोगों को पेश करना भी लेखिका का लक्ष्य रहा है।

खेमू जैसे अनेक बच्चे अपने खेलने - कूदने की उम्र में परिवार चलाते हैं। ऐसी कतार में बच्चे या तो पोकट मार बनते हैं या चोरी करते हैं पर खेमू जैसा लड़का स्वाभिमानी है और सबक है उच्चवर्गीय लोगों के लिए। रेलवे और रेलवे परिसर तथा यात्रियों का चित्र खूब खींचा है लेखिका ने। *'बाकी दावत'* भी उच्चवर्ग के तौर-तरीकों का वर्णन करता है। उच्चवर्ग की जूठन से पलने वाले ग़रीबों की स्थिति दर्ज है। आदमी-आदमी का गुलाम किस तरह अर्थ-भेद पर बन जाता है और दूसरे की जूठन और उतरन का मोहताज बनता है आर्थिक भेद को दर्शाता है। मणिराम तथा

अन्य नौकरों का परिवार सहानुभूति के पात्र हैं। बीवीबाई के बेटे अमितबाबा और बेटी स्वाति बेबी के जन्मदिन की दावत की बची मिठाइयाँ मणिराम का परिवार खुश होकर खाता है। अमीर बीवीबाई अपनी उतरी हुई साड़ियाँ, स्वेटर, दुशाले मणिराम को देकर अपनी ममता और दरियादिली दिखाती है। इसी पर मणिराम की पत्नी का जीवन बीतता है। बीवीबाई रंगीन मिजाज़ की भी हैं। अति अर्थ से किस प्रकार रंगरैलिया पैदा होतीं हैं, यह बीवीबाई द्वारा प्रस्तुत है।

कहानी के उत्तरार्द्ध में उच्चवर्गों के प्रति तथा खुद के प्रति निम्नवर्गों की मानसिकता व्यक्त है। मणिराम की बेटी ललिता अपने जन्म दिन पर केक काटकर पिता को हेप्पी बर्थडे कहने को कहती है। परंतु पिता उसकी नौकरी मिलने पर खुश नहीं होता। उसे डर है कि उच्चवर्गीय संस्कृति उसके परिवार को चरित्रहीन और अनैतिक न बना दें।

लेखिका का प्रयास यह बताने का रहा है कि अर्थ के अभाव में ग़रीब कितनी बार मरता है और अमीर चरित्रहीनता की हद़ पार करता है।

आर्थिक समस्या को उपन्यास के हर कोने में व्यक्त किया गया है। *'अनित्य'* में चड्ढा संगीता, अनित्य, स्वर्णा की स्थिति इसी की ओर इशारा करता है। *'कठगुलाब'* में स्मिता (अमरीका जाने से पूर्व), नर्मदा, दर्जिन बीवी, तथा गोधड़ गाँव के लोगों की स्थिति। *'मैं और मैं'* में पड़ोस

के नौकर की स्थिति तथा उसके घर में काम करनेवाली महतरानी की स्थिति। कौशल कुमार की स्थिति। *'चित्तकोबरा'* में माली हालत ठीक है। *'मिलजुल मन'* में माली हालत उन्हीं के घरवालों के उतार-चढ़ाव के साथ दिखाया गया है। *'वंशज'* में धनबाद के मज़दूरों की हालत।

'अनित्य' की संगीता, कॉंग्रेसी नेता यशदत्त शर्मा तथा उनकी माशूका चमेली बाई की बेटी है। पिता के होते हुए भी लावारिस का दुःख तथा बड़े नेता तथा धनवान की बेटी होकर भी अविजित द्वारा दी जाने वाली चंदा में आजीवन पढ़ने का आर्थिक अभाव वह झेलती है। ऐसे अभाव में आदमी एक तरह से दूसरे का कर्ज़दार बन जाता है। ऐसे में खुद को उसका गुलाम समझने लगता है। परंतु संगीता अपना आत्मसम्मान खोना नहीं चाहती। वह कहती है - "अविजित जी उसने कहा था, एम.बी.बी.एस. की डिग्री मिल जायेगी तो सब पैसा धीरे-धीरे करके लौटा दूँगी।"[1] ऐसा अभाव व्यक्ति अपने जीवन में और बर्दाश्त नहीं कर सकता। इसलिए वे शादी भी अपनी सुरक्षा को ध्यान में रखकर करती है।

उसी तरह चड्ढा जो स्वतंत्रता संग्राम में क्रांतिकारी की हैसियत से काम कर रहा था, अंत में आर्थिक अभाव में ही मर भी जाता है। पार्टी के 20,000 रुपये अविजित के पास हैं। पर फिर भी वह उस पर अपना

---

1. मृदुला गर्ग - अनित्य - पृ. 199

हक़ नहीं समझता। अंतिम समय में बीमारी की हालत में तथा दयनीय आर्थिक अभाव में भी सच्चा और ईमानदार रहता है।

'मैं और मैं' में कौशलकुमार के घर की हालत को मृदुला जी ने बयान किया है। समाज में ऐसे लोग भी जीते हैं जिन्हें तन ढ़कने के लिए एक जोड़ी कपड़ा तक नहीं मिलता पर जीते जाते हैं। इसी आर्थिक अभाव को कौशलकुमार के माध्यम से उपन्यास में व्यक्त किया गया है। आर्थिक अभाव में त्रस्त कौशल कुमार का आक्रोश साफ ज़ाहिर है – "वर्ग - चेतना को परिपक्व होने में न जाने कितने दशक लगेंगे। पर तब तक हाथ पर हाथ रखकर नहीं बैठा जा सकता। बड़ी लड़ाई लड़ने के लिए अपने को तैयार करना पड़ता है। और उसके लिए ज़रूरी है कि छोटी-छोटी मुठभेड़ों में जीत हासिल करके अपना हौसला बढ़ाते रहें।"[1]

असल में धन का अभाव ही कौशल कुमार को पशु तुल्य बना देता है। वह जीवन भर धन के लिए लड़ता है और थक-हार कर जानवरों सा बर्ताव करता है। अर्थ के लिए लड़ते व्यक्ति की हालत ऐसे ही हो जाती है। मृदुला जी ने उच्चवर्ग की सुविधा भोगी प्रवृत्ति तथा निम्नवर्ग का आर्थिक अभाव दिखाकर कौशल की संपन्न वर्ग के प्रति ईर्ष्या, द्वेष एवं नफरत दिखाई है। माधवी के प्रति कौशल अपना ईर्ष्या भाव दिखलाता है।

---

1. मृदुला गर्ग - मैं और मैं - पृ. 193

लेखिका ने आर्थिक अभाव का जायज़ा पड़ोसी के नौकर पर चोरी का इल्ज़ाम लगाने का ज़िक्र करते हुए भी किया। अक्सर देखा जाता है कि यदि घर में कोई चोरी हुई और उस घर में कोई नौकर भी हो तो इल्ज़ाम बिना सोचे, बिना वजह उस पर लगा दिया जाता है। इसी इल्ज़ाम की वजह से नौकर को पुलिस स्टेशन ले जाया जाता है परंतु वह खुद को फाँसी लगा लेता है। यहाँ माधवी उसे बचाना तो चाहती है पर बचा नहीं पाती। उसी तरह माधवी के घर काम करने वाली महतरानी एक दिन की छुट्टी के बाद वापस काम पर आ जाती है। काम पर न आने का कारण उसके घर का टूट जाना था। बस्ती में घर तोड़े जा रहे हैं। वह अपने बच्चे के साथ बाहर थी। पर आर्थिक अभाव उसे काम पर आने को मजबूर करती है।

'कठगुलाब' में स्मिता माता-पिता की मौत के बाद, जीजा की सारी अश्लील हरकतें बर्दाश्त करते हुए घर पर रहती है। ऐसा सिर्फ आर्थिक तंगी के कारण होता है। यदि स्त्री के पास पैसा न हो तो वह सचमुच गुलाम बन जाती है। यहाँ स्मिता भी जीजा की गुलाम के समान ही थी जिसका वह बलात्कार करता है। उसी प्रकार एक नया आर्थिक अभाव नर्मदा सहती है। निम्न वर्ग की होकर भी घर खर्च का पैसा वही कमाती है पर खुद आर्थिक अभाव में जीती है। उसकी शादी ज़बरदस्ती उसकी बड़ी

बहन अपने पति से करा देती है। दर्जिन बीबी भी दर्जी का कार्य अपने आर्थिक अभावों के कारण ही करती है। व्यक्ति अनेक तरह से इस अभाव को झेलता है। अतः यह समस्या व्यक्ति के जीवन से हमेशा जुड़ी हुई होती है। *'वंशज'* उपन्यास धनबाद में कोयला खदान में काम करने वाले मज़दूरों की माली हालत बयान करता है। सुधीर का वहाँ काम पर जाना तथा यह देखना कि वहाँ मज़दूर रात-रात भर, घंटों कोयला में सिर खपाकर भी अपनी अधिकारयुक्त असली पगार नहीं ले पाते, सुधीर में विद्रोह की भावना जल जाती है। बिलकुल न के बराबर है। दी जाने वाले पैसों पर अंगूठा लगवाने की बजाय कम पैसा देकर अधिक पैसों पर अंगूठा लगवाया जाता है। सुधीर द्वारा विरोध करने पर उसे पागल करार दिया जाता है।

'मिलजुल मन' में मोगरा और गुल के घर की माली हालत का भी ज़िक्र है। पिता के बिस्नेस की व्याप्ति के पूर्व उन्हें कुछ वक्त आर्थिक अभाव झेलना पड़ता है। *'मैं और मैं'* में उसी तरह महतरानी की स्थिति भी दिखाई गई है कि घर टूटने पर भी काम पर आने की मजबूरी है। दो वक़्त की रोटी के लिए जी तोड़ मेहनत करता निम्नवर्ग सामने आया है। मेहतरानी के आने में देर होने पर माधवी कहती है - "“यह वक़्त है आने का? ग्यारह बज रहे हैं।" मेहतरानी ने बंगाल से मैले-कुचैले कपड़ों में लिपटे बच्चे को उतारा और ज़मीन पर लिटा दिया। बोली, "घर तोड़े जा

रहे हैं न, इसीसे देरी हो गयी।" और झाड़ू उठाकर गुसलखाने की तरफ बढ़ गयी।"[1]

'मैं और मैं' में एक किस्सा है जो माधवी अखबार में राकेश को सुनाती है। जिसमें एक गरीब बच्चे के ऑपरेशन के लिए पाँच लाख रुपये की अपील की गई है। सुशील पाठक की यह अपील इंस्टीट्यूट के एक ग़रीब लड़के के लिए थी। यह अपील झूठी भी हो सकती है क्योंकि ऐसी चीज़ों के नाम पर पैसे ऐंठने वाले बहुत मिलते हैं। गरीबी का अभावग्रस्त जीवन के बारे में यहाँ बताया गया है।

पारिस्थितिक समस्या

पर्यावरण 'परि' और 'आवरण' दो शब्दों से मिलकर बना है। 'परि' का अर्थ होता है 'चारों ओर' तथा 'आवरण' का अर्थ है 'लबादा' या 'घेरनेवाला'। अतः पर्यावरण का सरल शाब्दिक अर्थ है – 'चारों ओर से घेरने वाला'। प्रत्येक जीव पर्यावरण में पैदा होता है, उसी में जीता और मरता है। *'डी. डेविस'* इसे परिभाषित करते हुए कहते हैं–"पर्यावरण से अभिप्राय जीव को चारों ओर से घेरे उन सभी भौतिक स्वरूपों से है, जिनमें वह रहता है, जिनका उसकी आदतों, उसकी क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है।

---

1. मृदुला गर्ग - मैं और मैं - पृ. 132

इस प्रकार के स्वरूपों में भूमि, जलवायु, मिट्टी की प्रकृति, वनस्पति, प्राकृतिक संसाधन, खनिज, जल-थल आदि सम्मलित हैं।"[1]

भारत में पर्यावरण की अवधारणा सबसे प्राचीन है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्वावधान में जून 1972 में स्टाकहोम में आयोजित विश्व पर्यावरण सम्मेलन में पूरे संसार का ध्यान प्रदूषण और पर्यावरण अपघटन की ओर प्रथम बार आकर्षित किया गया। इसी के बाद ही पर्यावरण शब्द जन मानस में लोकप्रिय हुआ। इसके संरक्षण और प्रदूषण को रोकने की दिशा में सम्बन्धित विभागों की स्थापना करते हुए इसकी ओर ध्यान देना शुरु किया गया।

अपने देश में जनसंख्या विस्फोट और मानव की अतिवादी गतिविधियों के कारण पर्यावरण विनाश का खतरा कई रूपों में सामने आता है। इसमें उपजाऊ मिट्टी का तेज़ी से कटाव और बहाव, जलाशयों और नदियों का प्रदूषण, भूमिगत जल के स्तर में कमी, सूखा और बाढ़, वनों के क्षेत्रफल में कमी भूस्खलन आदि दर्ज हैं।

अंग्रेज़ी के 'इनवायर्मेंट' शब्द का ही समानांतर हिन्दी में पर्यावरण नाम दिया गया। हमारे चारों ओर प्रकृति का जो घेरा है, वही हमारा पर्यावरण है। इन घेरों में मुख्य रूप से हवा, पानी, मिट्टी, पेड़, पौधे तथा

---

1. निशांत सिंह - पर्यावरण और जल प्रदूषण - पृ. 13

जीव जन्तु प्रमुख हैं। इन्हीं के साथ मानव जीवन भी आश्रित है। अतः कह सकते हैं कि पर्यावरण वह है जहाँ हम सांस लेते हैं, जल जो हम पीते हैं, भूमि जिस पर हम फसल बोते हैं, भवन बनाते हैं तथा खनन करते हैं और जीवन जिसका हम आनन्द लेते हैं, यही पर्यावरण है।

पर्यावरण संबंधी समस्याओं में सबसे महत्वपूर्ण पर्यावरण का प्रदूषण है। हमारे जीवन की मूल भूत आवश्यकता वायु एवं जल है। किन्तु प्राकृतिक वायु एवं जल में मनुष्य के ही क्रिया कलापों द्वारा तमाम तरह की अशुद्धियों एवं वर्ज्य पदार्थ छोड़े जाने से यह मानव के उपयोग लायक नहीं रह गया है। पूरे विश्व तथा अपने देश में जनसंख्या विस्फोट के कारण जीवन के लिए आवश्यक प्राकृतिक संसाधनों यथा वायु,जल, भूमि की मांग दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। आवश्यकता से अधिक इन संसाधनों के दोहन से पर्यावरण असंतुलन एवं प्रदूषण की स्थिति पैदा हो रही है। गत वर्षों तेज़ाबी वर्षा, ग्रीन हाउस प्रभाव, मैडकाउडिजीज, ओजोनपर्त का क्षरण, एलझीमार रोग ऐसी तमाम घटनाएँ पर्यावरण प्रदूषण के कारण ही घटित हुई हैं।

पर्यावरण प्रदूषण की यह समस्या भारत जैसे विकासशील देशों के लिए अत्यन्त भयावह है। हमारे देश में बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर जैसे महानगर भयंकर प्रदूषण की चपेट में हैं; जहाँ वायु, जल भूमि

तथा शोर प्रदूषण से लाखों लोग प्रभावित हैं। पर्यावरण प्रदूषण के विरुद्ध विश्व के वैज्ञानिकों ने पूरे संसार का ध्यान खींचने का प्रयास किया है। वैज्ञानिकों ने पर्यावरण प्रदूषण को परिभाषित करने का प्रयास किया है "पर्यावरण प्रदूषण हमारे वायु, जल तथा भूमि के भौमिक - रासायनिक एवं जैविक गुणों में वह अनचाहा परिवर्तन है, जिससे मानव जीवन को नुक़सान होता है।"[1]

बढ़ती जनसंख्या एवं कटते जंगलों से पर्यावरण के क्षरण के साथ नित्य नई पर्यावरणीय समस्याएँ पैदा हो रही हैं। मानवीय सभ्यता एवं पृथ्वी को बचाने के लिए ग्रीन हाउस प्रभाव, तेज़ाबी वर्षा, ओज़ोन पर्त का क्षरण, एल-नीनो प्रभाव, आदि का अध्ययन ज़रूरी है। विकसित तथा विकासशील देश इस विषय में चिंतित हैं कि पृथ्वी पर मनुष्यों की संख्या विस्फोटक गति से बढ़ती जा रही है। हम एक ऐसे संकटपूर्ण बिन्दु पर पहुँच गए हैं, जहाँ जनसंख्या की गति को स्थिर करने या उसमें कमी लाना आवश्यक जान पड़ता है।

प्रकृति ने हमें पाला-पोसा। पर हमारी संख्या इतनी बढ़ी कि अपने अस्तित्व हेतु हम पेड़ काटने लगे। बाँध बनाने लगे। जंगल साफ कर ऊँची-ऊँची इमारतों ने स्थान ग्रहण किया। नदियाँ ही नहीं यहाँ तक

---

1. डॉ. रविशंकर पाण्डेय - हम और हमारा पर्यावरण - पृ. 88

कि सागर थी बाँधे गए। परंतु इंसान यह जान कर भी अनजान बना रहा कि घटता पेड़ नाश का कारण बन सकता है, और वही हुआ। बढ़ती गाड़ियों, सड़कों, इमारतों ने श्वास-वायु को तक सिलेण्डर में क़ैद करने पर मजबूर कर दिया। पानी 'मिनरल वाटर' के रूप में बोतल में मिलने लगे। खुदा की नेमन हवा, और पानी पर ग़रीब, अमीर एवं जीवजंतुओं का समान अधिकार था। अब वक्त ऐसा आएगा कि जो धनवान है वही जीवित रह सकेगा। परंतु कई ऐसे रहमदिल बाशिन्दे सामने आएँ जो *'वनस्पाति दिवस'*, *'चिपको आन्दोलन'* के रूप में प्रकृति संरक्षण के लिए आगे बढ़े। एक पेड़ के कटने पर एक पेड़ लगाने, रोपने का निर्णय लिया गया। किसी हट्टे-कट्टे पेड़ को काटने से रोकने के लिए पेड़ों के साथ ख़ुद चिपक गए। इस अभियान में औरतों और बच्चों ने अधिक कार्य किया। कई लोग तो साथ कट मरे भी।

मृदुला जी उन महिलाओं में से एक हैं जो पारिस्थितिक सजगता की माँग उठाती हैं। उनकी बाग़वानी का शौक़ इसका सबूत है। उनके उपन्यासों और कहानियों में उनकी यह इच्छा साफ ज़ाहिर होती है। प्रकृति संरक्षण हमारे लिए बहुत ज़रूरी है। यदि इसके प्रति हम सजग न हुए तो वह दिन दूर नहीं जब हम अमरीका के पीछे भागते-भागते उन्हीं की तरह सख़्त दिखेंगे और नगरों के सामने हरियाली होगी तो सिर्फ रंगों की प्रकृति की नहीं।

मृदुला गर्ग ने वनस्पति कटाव का मसला बार-बार कहानियों में उठाकर जनता को आग़ाह करना चाहा है। क्योंकि वनों का कटना, जंगल का कम होना आजकल आम मुद्‍दा बन गया है। *'तीन किलो की छोरी'* में शारदाबेन की लड़की का लकड़ी काटने जाने पर लकड़ी का न मिलना इस बात का सबूत है कि जंगल निरंतर हज़ारों की तादाद में साफ किए जा रहे हैं। जिससे ग़रीबों की आमदनी ख़ुद के शौक़ में ही खर्च होते जाते हैं। परिणाम निकलता है उनका वक़्त से पहले बुढ़ाता शरीर। शारदाबेन सोचती है कि यदि पेड़ ऐसे ही कटते गए तो ग़रीबों का क्या होगा? क्योंकि अमीर तो ऐशो-आराम की ज़िन्दगी बसर करते रहते हैं। शारदाबेन का अफसोस मुद्दे को साफ करता है। "क्या करें मानुष! रहा कहाँ जंगल जो जलावन मिले। सब काट कूट कर तंबाकू उगा लिया पटेलों ने। ग़रीब-ग़ुरबा का क्या, लो तेंदु का पत्ता और पेलों बीड़ी। क्या मरद, क्या औरता, क्या बूढ़ा क्या बच्चा।"[1]

'डेफोडिल जल रहे हैं' मृदुला गर्ग की लंबी कहनी है। लेखिका की नज़रों में सर्वश्रेष्ठ। यद्यपि कहानी 'वीना-सुधाकर' और डॉ. फिरोज़-जिना के इर्द-गिर्द घूमता है फिर भी यत्र-तत्र प्राकृतिक सौन्दर्य और जीवन की ऊष्मा पाने की चाहत है। वीना-सुधाकर का हनीमून गुलमर्ग में बिताना

---

1. मृदुला गर्ग - स्त्री मन की कहानियाँ - तीन किलो की छोरी - पृ. 29

तथा आइरिस, डेफोडिल और नर्गिस के फूलों की वादियों का ज़िक्र काबिले तारीफ़ है। वीना का तेज़ बुखार डेफोडिल के फूलों को जला देते हैं। यह कल्पना है जिसे वीना बुखार के वक़्त महसूस करती है। अंत में जिना खुद को इन्हीं डेफोडिल के फूलों के बीच खुशी-खुशी विदा कर देती है। क्योंकि उसे उन फूलों की वादियों में जीवन की ऊष्मा नज़र आती है। कहानी प्राकृतिक सुंदरता की आस जगह-जगह के विश्लेषण में साफ बयान करती है। कश्मीर जैसा सुंदर स्वर्ग पूरे देश में अपनी सूझ-बूझ और सजगता से बनाने का आग्रह मृदुला जी करती हैं।

प्रकृति और मनुष्य का आत्मीयतापूर्ण संबंध काफी गहरा है। *'क़रार'* कहानी इसी आत्मीयता की थाह है। प्रस्तुत कहानी की अमरीकी महिला 'चेरी यूनिसेफ' जिसका असली देश चीन है और वह हिन्दुस्तान पारंपरिक जल संचय व्यवस्था पर प्रोजेक्ट पूरी करने आई थी। पर्यावरण और पानी की खेती पर सेमिनार में भाग लेने उसे जहाँ जाना है वह जगह जोधपुर है। परंतु वह जैसलमेर ही उतर जाती है। सेमिनार में बोलने और उसके लिए प्रत्यक्ष रूप से कुछ करने में बहुत भिन्नता है। राजस्थान के ग्रामीणों में पेड़ निरंतर कटने और धूप की लंबी छाप से परेशान चेरी गाँव में ही रहने का फैसला करती है। चेरी जानती है कि पेड़ उगता चिड़ियों द्वारा है। यदि पर्यावरण नहीं बचेगा तो चिड़िया कहाँ जाएगी? वह इस जंगल के

दूत को बचाना चाहती है। "यहाँ दोनों बचाये जा सकते हैं, पेड़ और उनके दूत।'[1]

वृक्षों की रक्षा का दिवस मनाया जाता है - जून 5 को। पर उसे दिल से स्वीकारा नहीं गया। परिणाम है - अक़ाल। राजस्थान जैसे राज्य में हम चाहें तो वर्षा हो सकती है। नल लग सकते हैं। देश समृद्ध बन सकता है। इसी की रक्षा करने का प्रण मृदुला जी करती हैं। अकाल पड़ने पर घरों को छोड़ने की लोगों की नियति बदलना चाहती हैं। कहानी में इस बात को व्यक्त किया गया है। "जंगल में सभी पेड़ों के बीज पशु-पक्षियों की बदौलता छींटे जाते हैं और प्रकृति की कृपा से फूटते-बढ़ते, फूलते-फलते हैं। मनुष्य बीच में न आये तो सब तरफ जंगल ही जंगल हो! पर मनुष्य ऐसा जीव है, जिसे रोटी, कपड़ा, मकान ही नहीं, ऐशोआराम का हर सामान चाहिए। इसलिए जंगल काटे जाते हैं, रेगिस्तान की गिरफ़्त रंग लाती है, सूखा और अकाल पड़ता है।"[2]

वैज्ञानिक आविष्कारों और तक़नीकों ने कई खोजें की हैं। मनुष्य ने अपनी सुख-सुविधा और जीने की राह खोज निकाली। पर मनुष्य अपने तात्कालिक सुख में इतना अंधा हो गया कि, उसके निरंतर हो रहे

---

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - करार - पृ. 496
2. वही - पृ. 489, 490

नुक्सान के बारे में सोचा तक नहीं। जो विज्ञान मनुष्य के लिए वरदान सिद्ध हुआ उसने अभिशाप का द्वार भी खोला। तब प्रकृति - प्रक्षोप होना तो लाज़मी था। *'विनाशदूत'* कहानी सत्य घटना पर आधारित कहानी है। 2-12-1984 की रात भोपाल की यूनियन कार्बाइड कारख़ाने से ज़हरीली गैस से 3000 से भी ज़्यादा लोाों की मृत्यु हुई थी। इस भयानक हादसे का ज़िक्र लेखिका ने मेघ और कवि के वार्तालाप के माध्यम से प्रस्तुत किया है। कालिदास तो अपने प्रेमी को मेघ द्वारा संदेश पहुँचा सकता है पर भोपाल दुर्घटना से मरे लोगों पर साहित्यिक प्रतिनिधियों ने चुप्पी क्यों साधी है? तीसरी दुनिया को विकसित एवं संपन्न देशों ने प्रोयगशाला की तरह इस्तेमाल किया है। उसका परिणाम ही है - प्रकृति का प्रतिशोध। जिसका हल नहीं निकाला जा सकता। गैस दुर्घटना और उससे जनित शून्यता भोपाल के कोण-कोण में है। यह वैज्ञानिक जिज्ञासा शांत करने के लिए ही कही गई है।

लेखिका ने स्वयं बात कहकर मेघ और कवि कालिदास को माध्यम बनाया है। काल-परिवर्तन के साथ मेघदूत, विनाशदूत बन गया। *'विनाशदूत'* कहानी में तीसरे विश्व की विडंबना और उन्हें विकसित देशों की बेकार तक़नीक देने की घटिया नीति का पर्दाफाश हुआ है। आज विकसित देशों ने कई कीटनाशकों, मशीनों, दवाईयों को बनाकर ख़ुद को

विकसित बना रखा है। पेड़ काटे जा रहे हैं। सड़कें बनाई जा रही है। कॉन्क्रीट की दीवारें बिल्डिंगे बनाई जा रही हैं। साथ में प्रकृति नष्ट होती जा रही हैं।

मनुष्य के हथियार एवं आविष्कारों ने इतने भयानक और जानलेवा गैंस बनाए हैं कि, वायु एवं वातावरण दूषित होता जा रहा है। ख़तरा इससे मनुष्य को ही है। प्रस्तुत कहानी में कवि की खिड़की से आए दैत्य के सामने कवि का ठहर न पाना उसी वातावरण को द्योतित करता है। अंत में बाल-मेघ के होने से जो छींटे पड़ीं, वह आशा की किरण है। शायद कभी मनुष्य अपनी गलती समझे और सही राह पकड़े। अहंकारी, अल्पज्ञ और लोभी मनुष्य बदल जाएँ। "मनुष्य के निर्देश पर नाचा जा रहा है, दिव्य शक्ति के निर्देश पर नहीं। उस अपूर्ण मनुष्य के निर्देश पर जो अपने को अपूर्ण जानते हुए भी पूर्ण मानने लगा है। अर्धसत्य पर विश्वास और अर्धज्ञान में दंभ जिसकी प्रकृति बन चुकी है। तभी न प्रकृति के विरुद्ध युद्ध छेड़ बैठा है। प्रकृति ने नहीं चुना उसे, वह खुद उसका संरक्षक बन गया है, प्रकृति रक्षिता हो उसकी जैसे। अपने निरंकुश अहंकार से उन्मत्त वह भूल गया है कि प्रकृति तभी देती है जब नतमस्तक होकर उससे माँगा जाये, नहीं तो प्रहार कर उठती है। प्रकृति से युद्ध किया ही नहीं जा सकता क्योंकि जो प्रकृति के विरुद्ध है, अंततः समझ लो वह नहीं है।"[1]

---

1. मृदुला गर्ग - चर्चित कहानियाँ - विनाशदूत - पृ. 144, 145

भोपाल गैंस कांड में तीन हज़ार लोगों से भी अधिक जान-माल की हानि हुई थी। इस ज़हरीली हवा के वर्षण से साँस घुट कर लोगों की मौत हुई थी। यही बख़ान आधुनिक कवि का कालिदास के विनाशदूत मेघ द्वारा हुआ है।

इस दुरवस्था में प्रेमी अपनी प्रेमिका की खैरियत के बारे में सोचता है। तब भी उसे दुनिया की फिक्र नहीं। साहित्यकारों की यह ग़ैरज़िम्मेदाराना हरक़त मृदुला जी को रास नहीं आई। कवि की, हवा के अंदर स्वीकारने (साँस लेने) से खड़े-खड़े मौत हो गई। परंतु बालक मेघ द्वारा (आगे की पीढ़ी का प्रतीक) चंद छींटों से अंतिम समय में भी आस बची रही। "लो देखो, सुनो सूँघो, त्रिकालदर्शी तुम्हारे बिल्कुल करीब आ पहुँचा भोपाल शहर। क्यों, अब भी महसूस नहीं कर पा रहे उस अथाह शून्य को, जो तुम्हारे चारों तरफ़ फैल रहा है, कितना भयानक है यह शून्य। चीखोंपुकार नहीं, शोर गुल नहीं, बस, बस बेआवाज़ खांसी के दौरों का भूकंप और लाशें।"[1]

भूमि पर कई तरह के गैसों की वजह से 'अल्ट्रा वाइलेट रेस' की रश्मि को रोकने वाली 'ओज़ोन' की परत कम होती जा रही है। उसमें छेद तो पड़ ही चुका है और आज की तारीख़ में यह छेद बढ़ता ही जा रहा

---

1. मृदुला गर्ग - चर्चित कहानियाँ - विनाशदूत - पृ. 145

है। छेद का बढ़ना मानव के अस्तित्व पर सवालिया निशान है। वायुमण्डल में समताप मण्डल की बाहरी पर्त ओज़ोन गैस से बनी है जो सूर्य की पराबैंगनी किरणों के दुष्प्रभावों से पृथ्वी को बचाती है। परन्तु हाल के वर्षों में ओज़ोन के इस रक्षक पर्त की मोटाई में कमी आयी है, जिससे हानिकारक पराबैंगनी किरणों के पृथ्वी में पहुँचने की सम्भावनाएँ बढ़ती जा रही हैं। वायु में मिले हुए हाइड्रोकार्बन, जो प्लास्टिक के निर्माण, पुनःर्निर्माण व पुनःर्शोधन क्रियाओं से बनते हैं, ओज़ोन पर्त से क्रिया करके ऑक्साइड बना लेते हैं, जिससे ओज़ोन गैस आक्सीजन में परिवर्तित होती रहती है। ओजोन पर्त के पतली हो जाने पर पराबैंगनी किरणों से पौधे जल जायेंगे तथा मनुष्यों में त्वचा कैंसर की सम्भावनाएँ बढ़ जाएँगी। ऐसी कई घटनाओं के प्रति ध्यान आकृष्ट करना मृदुला जी का उद्देश्य रहा है।

पर्यावरण और उसकी सुरक्षा को लेकर अन्य एक और कहानी है *'इक्कीसवीं सदी का पेड़'*। यह कहानी आबादी से लेकर परिस्थिति हनन की क्रियात्मक परिणाम का लेखा-जोखा पेश करता है। कूड़ा-कर्कट, प्लास्टिक की दुरूहता, बेपरवाह दो पैरों का जानवर, राजनीति एवं शासकों के गलत फैसलों आदि की घटनाओं को माध्यम बनाकर उसकी संकीर्णता से जनित प्रकृति-चक्र का डँबाड़ोल होना कहानी में निहित है।

21 वीं सदी तक ज़िन्दा रहने वाले पेड़ की कहानी है - *'इक्कीसवीं सदी का पेड़'*। अपने शुरुआती दौर में वह पेड़ घना था। चिड़ियाँ घोंसला बनाया करती थीं। उन्हें तक प्रकृति के हर कोने को सँभालने का श्रेय दिया गया है। मृदुला गर्ग कहानी में चीन से आए चिड़ियों का फ़िल्मी रूप में रचना और उनका नई जगह एवं नस्ल के साथ समा न पाने की विडंबना दर्शाती है। मानव का लकड़ी पर झपटना, चीनियों का चिड़ियों को फ़सल के लिए मारना काफी विडंबना पैदा करता है। अंत में इक्कीसवीं सदी तक के गवाह बुज़ुर्ग पेड़ का अपनी जान बचाकर आई चिड़ियों की मौत एवं अपने बेटे जैसे जवान पेड़ का मालिन्य के कारण मौत को देखना काफी दर्दनाक है। अंत में वह बुजुर्ग पेड़ भी धराशायी होने वाला था। इत्तफाक़ से वह 21 वीं सदी थी और कुछ लोग पेड़ लगाओं के नारे लगाए जा रहे थे।

आबादी से बढ़ते शोर-शराबे से जो-जो हानि प्रकृति पर हावी हो रही थी उसकी तीव्रता को दर्शाने का प्रयास मृदुला जी द्वारा हुआ है। कूड़ा तो फेंकने की चीज़ है। पर यही फेंकने की चीज़ के फिंकाव के लिए जगह न मिले तो वह हम पर बोझ बन जाता है। जनसंख्या ने तो कूड़ों का ढेर पैदा कर ही दिया है। लोगों की बेपरवाह आदत ने उसे और महीन एवं गंभीर बना दिया। मृदुला जी का कहना है – "कूड़ा-कर्कट फैला हो तो हम

सुरों में बंधी महीन आवाज़ें सुन नही पाते। शोर और कूड़ा पेड़ों की तान और महक को खतरे में डाल देते हैं। परिंदे-दरिंदे फिर भी सुन-सूंघ लेते हैं, असल दिक्क़त इंसानों को होती है।"[1]

समय के बदलाव के साथ दुनिया का नक्शा, और इंसानी सोच बदलती रही। गलियाँ सड़कों में तब्दील हुई, सड़कें हाइवे और फलॉई ओवर भी बनने लगे। गलियों से पहले पगडंडियाँ हुआ करतीं थीं। पेड़ों के बीच से पाँव-पाँव चलने लायक रास्ता बनता था। दौड़ते लोग चाहे जैसे जाते हों, पेड़ों को नज़रअंदाज़ करने पर भी वापस आकर उसकी छाँव में बैठना नहीं भूलते। पेड़ों को भी उसके खात्मे पर दुनिया महसूसेगी। मृदुला जी चिड़ियों के माध्यम से कहतीं हैं - "चिडियाँ कह रही थीं, शहर के बारिशों की पेड़ों की ज़रूरत नहीं रही। ठंडी गाड़ियों में चलने वाले पंथी नहीं कि छाया की दरकार हो। बिजली से आग बनाने वालों को पेड़ों से क्या काम? फिर ये इंसानी टिड्डियाँ किस शहर से आयी है? इस शहर के अंदर कितने शहर बसते हैं? नहीं, लोगों को पेड़ों की ज़रूरत तो है, पर उनसे इंसानियत नहीं रही। इस कद्र बेदिली! ऐसी बेमुरव्वत मौत! इतना बेदर्द इस्तेमाल।"[2]

---

1. मृदुला गर्ग - दस प्रतिनिधि कहानियाँ - इक्कीसवीं सदी का पेड़ - पृ. 100
2. वही - पृ. 107

आबादी के मामले में पहले नंबर पर चीन है। उसने बढ़ती आबादी का पेट भरने के लिए फसलें उगानी शुरु की। पर चिड़ियों का फसल खा जाने की वजह से चिड़ियों को ख़त्म करने का निर्देश हुआ। एक चिड़िया छिपती-छिपती सरहद पार कर हिन्दुस्तानी पेड़ के आश्रय में आई। अपनी दुःख भरी दास्तान सुनाई और पेड़ ने उसे भरपूर ऑक्सीजन प्रदान किया। अपनी गोदी में जगह दी। चीनी लोगों की इस हरक़त का पाठकों के सामने व्यक्त करने का उद्देश्य मृदुला जी का था। वे आज के बेवक़ूफ तख़्तोताज नेताओं पर व्यंग्य करतीं हैं। ये लोग कुछ भी जाने बिना फ़रमान जारी कर देते हैं। हुक़्मरानों से चिड़िया का बदला तब पूरा होगा जब चिडियों के न रहने से पूरी फसल कीड़े खा जाएँगे।

कुछ बुद्धि जीवी लोग पेड़ के महत्त्व और उसकी कमी को पहचानते हुए 'पेड़ लगाओं' के नारे लगाने लगे। 21 वीं सदी में भयानक हानि की जड़ धरती के उस मुक़ाम तक पहुँच चुकी थी जहाँ मनुष्य को ख़ुद अपना अस्तित्व ख़तरे के चौराहे पर महसूस हो रहा था। अतः उन्हें पेड़ लगाने का एहसास हुआ और नारे बुलंद हुए।

'विचल' नामक कहानी में सूखे की विभीषिका शोभा के कथन से ज़ाहिर है। सीज़नल फूलों की बात निखिल से करते वक़्त शोभा कहती है- "यह बात नहीं है। इस साल इधर बिल्कुल बारिश नहीं हुई, इतनी गर्मी

पड़ी कि सीज़नल फ्लावर्स हुए ही नहीं। आपने पढ़ा होगा, इधर कितना सूखा पड़ रहा है।"[1] महंगाई और ऊपर से सूखा पड़ना इंसान और उसकी हरकतों के खिलाफ प्रकृति का प्रकोप ही तो है।

मृदुला जी का प्रकृति प्रेम *'बर्फ़ बनी बारिश'* नामक कहानी में अमर के वाक्यों द्वारा झलकता है। बिन्नी भारत में ही रहकर अपने बेटे को पालती है। पति अपने दोनों बच्चों के साथ विदेश चला जाता है। बिन्नी की तटस्थता और पिघलाहट प्रकृति के माध्यम से प्रस्तुत है। पारिस्थितिक सजगता का मुआइना भी अमर के वाक्यों से हो जाता है। वह कहता है - "एक बार फिर चुनने की स्वतंत्रता मिली है हमें। मुझे। चांद को और अच्छी तरह देखने के लिए वह छज्जे पर आगे को लटक आयी। धुली, अधखिली रोशनी में उसे अपना मोहल्ला काफी सुंदर लगा। दिन की रोशनी में ऐसा कभी नहीं लगता। सड़क पर जगह जगह पड़े चकत्ते, गंदले पानी से भरे गड्ढे, किनारे पर जहाँ-तहाँ गंधाते कचरे के ढेर, पलस्तर उड़ी दीवारें, कुछ दिखायी नहीं दे रहा था। गीली चांदनी में नहायी सड़क, मकानों की धूमिल रेखाएँ और दूर खड़े दो - चार पेड़ों के सायें, सब मिल कर एक कलाकृति का आकार ले रहे थे।"[2]

---

1. मृदुला गर्ग - हरी बिंदी - विचल - पृ. 20
2. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - बर्फ बनी बारिश - पृ. 588

'बंजर' नामक कहानी भी पारिस्थितिक सजगता और ईमानदारी को मद्देनज़र रखकर लिखी गई है। इसमें माँ-बाप के इकलौते बेटे की मौत हो जाती है। वह माँ एक लेखिका है। बेटे की मौत लोगों की लापरवाही की वजह से होती है जिसे अनजाने की ग़लती कह कर माफ करने की हिदायत दी जाती है। यदि सही समय आस्पताल पहुँचाया होता तो वह बच जाता।

हिंदुस्तान के विशेषज्ञ यह विश्वास दिला रहे हैं कि हिन्दुस्तान में बंजर जैसी कोई धरती नहीं है। लेखिका 'पर्यावरणहितु संस्था' के साथ काम करती रही हैं। लेखिका जहाँ गईं थीं वहाँ ज़मीन के चार फुट नीचे पानी है। पेड़ की जड़ जमने से पहले, खारे पानी में जल जाती है। मई-जून में 48-50 डिग्री तापमान होता है। फिर पानी ख़ूब बरसता है पर नमक से भरी धरती उसे सोख नहीं पाती। जो पेड़ लू और खार से बच जाता है वह पानी से सड़ जाता है। प्रस्तुत बात का ज़िक्र करते हुए मृदुला गर्ग ने पर्यावरण के बचाव की आवाज़ बुलंद की है। इसका एक मात्र उपाय जनसंख्या को कम करना है। वे इसका ज़िक्र *'बंजर'* कहानी में करतीं हैं-- "यहाँ तो भूमि के हर टुकड़े पर, उस पर निर्भर इंसान बसे हुए हैं। कोई भी टुकड़ा अगर परती छोड़ दिया जाये तो प्रकृति ख़ुद ब ख़ुद उसे हरिया देगी। जो भी वनस्पति उस प्रदेश के पर्यावरण के अनुकूल होगी उस पर उग आयेगी, बस काटने चरने से बची रहे। पर यहाँ तो पिछले सौ बरसों से कुछ

नहीं हुए, न किसी ने कुछ रोपा, न काटा, न चरा। प्रकृति भी मुँह फेरे खड़ी थी।"[1]

पर्यावरण और उसके प्रदूषण को व्यक्त करती कहानी है *'मेरे देश की मिट्टी, अहा'*। इसमें लल्ली नामक हिंदू युवती के मुस्लिम शादीशुदा आदमी से विवाह कर ठगे जाने की कहानी है। इसमें लल्ली उसके माँ-बाप की सेवा कर जीने की ठान लेती है। पूरा गाँव उसके साथ था। गाँव के लोग वर्षा की कमी तथा खारे-पानी की वजह से पत्थर ठोकने जाते थे जिससे - तपेदिक की बिमारी पड़ गई थी। परंतु पेट भरने का यही रास्ता था। बाद में बंजर भूमि पर कारख़ाना लगवाया गया जहाँ जानवरों की खाल से सामान बनाया जाता था। उसकी गंध गाँव की आबो-हवा को दूषित कर रही थी। यहाँ प्रकृति और जानवरों के बचाव की ओर इशारा है। प्रदूषित होते वातावरण को बचाने की माँग हर पंचायत में हो रही है।

अकाल से पीड़ित होना प्रकृति का प्रकोप ही है। अकाल से पीड़ित तथा बाढ़ से मरने वालों की संख्या में वृद्धि होती रही है। वक़्त बदला है। दशा नहीं। अकाल वहीं का वहीं है।

'कठगुलाब' मृदुला जी का प्रसिद्ध उपन्यास है। जिसमें चिपको आंदोलन जैसे अनेक आंदोलनों से जुड़ कर प्रकृति का प्रतीकात्मक एवं सजगता पूर्ण वातावरण को अपनाने का प्रयास मृदुला जी ने किया है।

1. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - बंजर - पृ. 674

विज्ञापन

विज्ञापन किसी न किसी रूप में समाज में फैला हुआ है। समाज में कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जो विज्ञापन से अनछुआ रह गया हो। मृदुला गर्ग ने अपने कथा साहित्य में विज्ञापन के इन्हीं पहलुओं को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

'उनके जाने की खबर' में शादी का पवित्र बंधन घरेलू दफ़्तरी पार्टियों में कैसे पिसता है, कॉकटेल पार्टी में किस तरह बोस को खुश किया जाता है जैसी वारदातें हैं। वर्मा डिप्टी मैनेजर है और सिन्हा जनरल मैनेजर। जनरल मैनेजर द्वारा डिप्टी मैनेजर को बरख़ास्त करने की धमकी बराबर दी जाती है। वर्मा मन ही मन 'सिन्हा' के हार्ट-फेल हो जाने की इच्छा रखता है। वह तरकीब सोचकर विज्ञापन तैयार कर छपवा देता है। सिन्हा ने सोचा कि, शायद मैनेजिंग डाइरेक्टर की नाराज़गी होगी। वे सिन्हा के यहाँ डिनर करने अहमदाबाद आए थे और मिसेस सिन्हा के साथ नाचे थे। मि. सिन्हा अपने जूनियर वर्मा के साथ बद्सलूकी का बर्ताव किया करता था। वर्मा ने सिन्हा के विरुद्ध मैनेजिंग डाइरेक्टर के नाम से विज्ञापन निकाला। डायरेक्टर इस बात से अनजान है कि उसने ऐसे विज्ञापन का आदेश दिया भी है या नहीं। सिन्हा आसानी से बात को भाँप लेगा यह सोचकर वर्मा डर के कारण अपने गाँव सब छोड़कर खेतीबाड़ी करने चला

जाता है। क्योंकि सिन्हा के जाने पर वर्मा को ही प्रोमोशन मिलती। सिन्हा भी विज्ञापन की तहक़ीकात किए बग़ैर कनेडा चला जाता है। अंततः किसी को कुछ हासिल नहीं होता।

कहानी में मृदुला जी बेकार के विज्ञापन के दुष्परिणामों की ओर इशारा करती हैं। अधिकारियों के अपने काम में पूरी तरह रत न होने की वजह से जो-जो कठिनाइयाँ सामने आती हैं उसका ज़िक्र किया गया है। अधिकारी सेक्रेटरी को रखते हैं और यह पता नहीं रहता कि आखिर वे काम क्या कर रहे हैं, किसको क्या पत्री भेजी गई है आदि। बग़ैर जाँच के अपनी मनमानी करने वालों की कमी नहीं। प्रस्तुत कहानी में डायरेक्टर साहब का बिना सोचे समझे विज्ञापन की बात को अमल में लाने की बात सोचना तथा सिन्हा साहब द्वारा अभिमान हेतु इस्तीफ़ा देना, इसी बात का सूचक है। वर्मा बदले की आग में ख़ुद तो जलता ही है साथ में मन की तक़लीफ भी बनी रहती है।

स्त्री का विज्ञापन तो अप्रत्यक्ष तौर पर भी तैयार होता है। जैसे *'कितनी कैदें'* की मीना। मीना को इस तरह पाला गया है कि वह शादी के विज्ञापन के अनुरूप ढल जाएँ। अंग्रेज़ी शिक्षा, चाल-ढाल इत्यादि, जो आजकल के लड़कों को पसंद है। "अच्छा अमीर घर, ख़ूब कमाऊ लड़का। सिर्फ इसी ख्याल से उन्होंने पिताजी को मेरे फ़ैशनेबुल कॉलेज

जाने के लिए राज़ी कर लिया था। इसी ख्याल से वे मुझे फ़ैशनेबुल लड़कियों से मेल-जोल रखने से मना नहीं करती थीं, बल्कि उत्साहित करती थीं। उनकी योजना थी कि मैं फैशनेबुल, चुस्त और अंग्रेज़ी बोलने में निपुण हो गयी तो बी.ए. में पढ़ते-पढ़ते कोई काम का लड़का फंस जायेगा, यानी उनका लक्ष्य सिद्ध हो जाएगा।"[1]

'टुकड़ा-टुकड़ा आदमी' कहानी में एक अलग तरीके का विज्ञापन है। जहाँ अपनी दरियादिली को विज्ञापित करने का प्रयास चलता है। सुबोध कुमार बेलापुर की सीमेंट फैक्टरी से बनारस हवाई अड्डे उतर कर सीधे कार्लटन प्यारे होटल जाकर रहता है। ए.सी. में बैठकर मज़दूरों का दुःख महसूसता है और उनसे कई वादें करता है। दरियादिली और दुःख क्षण भर का होता है और वापस जाकर सारी बातें भूल जाता है। बस यहाँ सुबोध कुमार ने कंबल बाँटकर, अगली दीवाली में पक्के मकान बनवाने की बात छेड़कर ख़ुद की दरियादिली को विज्ञापित करता है ताकि उसे नरम दिल मालिक होने का ख़िताब मिलें। अपनी जयजयकार के लिए मज़दूरों के दिल तोड़े जो भरी बारिश में गिरते पानी की छत में सिर छुपाते हैं।

'खरीदार' में नीना नामक स्त्री का चित्रण है। वह विवाह के लिए विज्ञापित होती है। महंगा इश्तेहार देकर माल की ख़रीदारी और

---

1. मृदुला गर्ग - कितनी कैदें - कितनी कैदें - पृ. 18

बिकाव तो बाज़ार में चलता ही है। परंतु विवाह रूपी बाज़ार में भी पूरी दुनिया दो गुटों में बँटी है। दुकानदार और ख़रीदार। शादी के इश्तेहार दिए जाते हैं। इसी पर व्यंग्य मृदुला जी प्रस्तुत करती हैं– "शादी का इश्तिहार। आधुनिकता का पुट लिये हुए। दूल्हे का मुख खुला था। शायद सेहरा पहनने से इनकार कर दिया होगा। पर इस सर्कसनुमा जुलूस से नहीं कर पाया। ज़िंदगी में एकाध बार आदमी तमाशा बनता है, वरना तमाशबीन रहता है। उसने देखा, दूल्हा काफी बदसूरत है।

बदसूरत!

कितना भारी शब्द है, विशेषकर जब अपने आप पर लागू किया जाये।"[1]

अतः समाज का कोई कोण ऐसा नहीं है जहाँ विज्ञापन न मिलता हो। मनुष्य हर पल विज्ञापित होता है - पार्टी में जाते वक़्त, हैसियत का विज्ञापन, दफ्तर जाते वक़्त पेर्सनेलटी का विज्ञापन, स्कूल में अव्वल आने का विज्ञापन, साथियों के संग श्रेष्ठता का विज्ञापन आदि। अतः ज़िन्दगी हर कदम एक नया विज्ञापन है।

'कठगुलाब' परिस्थिति से संपूर्णतः जुड़ा है। पर्यावरण एवं उसकी स्वच्छंद प्रवृत्ति को अपनाया गया है। वास्तव में कठगुलाब 'ईको

---

1. मृदुला गर्ग - हरी बिंदी - खरीदार - पृ. 115

फेमिनिज़्म' से जुड़ा है। 'ईको' माने प्रकृति और 'फेमिनिज़्म' माने नारीवाद। कठगुलाब जो पूरी ज़िन्दगी नहीं उगा। जिसे स्मिता की माँ ने उगाना चाहा था और खुद स्मिता उसे चारों तरफ उगाना चाहती है। वह अंततः गोधड़ गाँव (गुजरात) में सामाजिक कार्य करते हुए हुआ। वहाँ चारों और कठगुलाब के फूलों की खेती हुई। सारे के सारे फूल खिले भी। जिस फूल के बीज को स्मिता इतने दिनों से हाथ में लेकर घूम रही थी वह फूला-फला गोधड़ गाँव में। पहले स्मिता का बलात्कृत चेहरा, उसकी त्रासदी देखने को मिलती है। तब वह इसी बीज को हाथ में लिए हुए थी और इसी की भाँति बेजान थी। परंतु खिलने के लिए आतुर। अमरीका जाकर शुगर मेपल को देखकर उसे उसका शरीर नंगा नज़र आता है क्योंकि मौसम के बदलाव ने उसके सारे पत्ते झड़ लिए। अब वह बिल्कुल स्मिता की भाँति दिख रही है निःर्वस्त्र। न जीजा ने और ना ही जिम जारविस मनोवैज्ञानिक ने उसे छोड़ा। जीजा ने हवस पूरी करने के लिए और जिम जारविस ने केस-स्टडी के लिए। उसका बच्चा भी उसे गिराना पड़ा। वह खुद को बिल्कुल शुगर मेपल की तरह महसूस कर रही थी। परंतु गोधड़ गाँव में बालिकाओं के लिए शिक्षा और वयस्क औरतों को काम दिलाने का बीड़ा उठाकर उसे लगा कि यही सही जगह है, कठगुलाबों के लिए। और कठगुलाब जो कहीं भी नहीं पनपे वहाँ भरपूर मात्रा में खिले। बिल्कुल आज़ाद होकर आत्मतृप्ति के साथ 'स्मिता' की तरह। गाँववाले उसे 'बा'

कहकर पुकारते थे। वह माँ न बन सकी तो क्या हुआ, वह सबकी माँ है। असीमा, विपिन आदि ने भी वहीं आकर अपना अस्तित्व पाया या फिर यूँ कहें कि अपना स्व पहचाना। सार्वभौमिक भगिनीवाद के आदर्श से प्रभावित होकर वे गोधड़े परियोजना जैसी संकल्पनाएँ सामने लाती हैं। विपिन वहाँ लसून की खेती करना चाहता है। मृदुला गर्ग *'कठगुलाब'* में निहित मूल मंतव्य और कथ्य को प्रेषित करते हुए कहती हैं "बरसों से एक विचार मेरे मन में था कि क्या धरती के बंजर होते जाने और स्त्री की भावभूमि के ऊसर होने के पीछे एक ही कारण काम नहीं कर रहा? प्रकृति पर पदार्थ का होना उपन्यास में इस विषय को अभिव्यक्ति देने में मुझे एक दशक लग गया, क्योंकि इस बीच मुझे विविध पात्रों के साथ अनेक जीवन जीने पड़े, तब जाकर 'कठगुलाब' लिखा जा सका।"[1]

बंजर होने का संबंध प्रकृति से है। बंजर भूमि होती है। परंतु यहाँ मृदुला जी ने स्त्री की भावभूमि को ही बंजर होते दिखलाया है जिससे उभर कर ये स्त्रियाँ एक नए स्वातंत्र्य और अस्तित्व को महसूस कर पाती हैं। इसके लिए दुनिया की सारी स्त्रियों का एक जुट होना दिखलाया गया है। मारियान, स्मिता, असीमा, नर्मदा सभी इस प्राकृतिक बंजर ज़मीन का ही प्रतीक है। अंत में वे बंजरनुमा ज़मीन पर ही खेती करते हैं। वहाँ के

---

1. हंस जनवरी 1999 मृदुला गर्ग के लेख 'उच्छेदक कर्म का सशक्त माध्यम से - पृ. 108

औरतों को काम दिलाते हैं। उस बंजर ज़मीन का फूलना फलना इन स्त्रियों की ज़िन्दगी का सदाबहार होना दर्शाता है। उन्होंने अपनी ज़िन्दगी का लक्ष्य पा लिया। मारियान ने इर्विंग के धोखे के बाद स्मिता की ज़िन्दगी को लेकर 'द फमेल जेस्ट' लिख डाला और हाशिए से उठ गई। धीरे-धीरे लोगों को भी अहसास होने लगा कि मारियान का दिया गया केस ही सही है। इर्विंग की लिखी किताब 'वुमेन ऑफ दि अर्थ' की रूस मारियान ही है। उसी के कई रूप हैं। उसकी यह किताब वास्तव में उसकी और इर्विंग की संतान थी। जिसे सिर्फ पिता का नाम मिला। दर्द भोगकर उसे पैदा मारियान ने किया पर नाम पिता को मिल पारिस्थितिक सजगता युक्त पर्यावरण का चित्र हमे 'वंशज' उपन्यास में भी मिलते हैं। मृदुला गर्ग का प्रकृति-प्रेम यहाँ जज शुक्ला साहब के माध्यम से व्यक्त है। वे फूलों की वल्लरियों एवं पंखुडियों को इस तरह छूते हैं जैसे कोई नवजात शिशु हो। उन्हें तरह-तरह के फूलों का शौक है। उसी तरह घोड़ी को भी बिना दर्द दिए इस तरह चलाते हैं कि पैदल चलता आदमी उनसे पहले निकल जाएँ। फूलों के प्रति शुक्ला साहब की दिलचस्पी प्राकृतिक स्नेह दर्शाता है। "उन्हें फूलों से बेहद लगाव था। हर तरह का फूल उनके बगीचे में मिल सकता था। पर इतनी सम्पदा के बीच से एक फूल भी किसी को तोड़ने की इजाज़त नहीं थी।"[1]

1. मृदुला गर्ग - वंशज - पृ. 20

यत्र-तत्र प्रकृति के उदाहरणों का इस्तेमाल *'अनित्य'* में भी मिलता है। सुरेश मंगलिया और संगीता के बीच पति-पत्नी का संबंध है परंतु संगीता; प्रभा और कैलाश के साथ मिलकर 'सेफ की चाबी' उन्हें देने को कहती है। सुरेश से असल में वह डरती थी। संगीता की आँखों से आज सुरेश डर रहा था। उसको प्रकृति के चंद उदाहरणों द्वारा चित्रित किया गया है। "बरसों तक सूखा पड़ने से खुश्क ज़मीन में दरारें आ जाएँ तो बूँद-दो बूँद पानी का अस्तित्व क्या हो सकता है।"[1]

यहाँ बंजर भूमि में जिस प्रकार से एक बूँद पानी से कुछ पैदावार नहीं हो सकती वैसे ही संगीता के प्रति सुरेश की नज़रों का रुख भी कुछ बदल नहीं सकता। उपन्यास में बंगाल के अकाल का भी ज़िक्र है जो स्वर्णा के माध्यम से व्यक्त है। प्राकृतिक सजगता को ध्यान में रखते हुए स्वर्णा प्रभा खोखी और शुभा से पूरी थाली खत्म करने को कहती है। वह खोखी से कहती है - "भात का एक कौर छोड़ेगा तो मालूम एक साल अकाल पड़ेगा।"[2]

यह स्वर्णा का भोगा हुआ सच है। जिसकी दशहत कई लोगों ने बर्दाश्त की थी। आज लोगों में चीज़ों को व्यर्थ बर्बाद करने की प्रवणता है, उसके प्रति लोगों को जागृत करने का प्रयास हुआ है।

---

1. मृदुला गर्ग - अनित्य - पृ. 248
2. वही - पृ. 61

प्राकृतिक धरोहर के चित्र हमें उनके उपन्यास *'उसके हिस्से की धूप'* में भी मिलते हैं। इसमें लालबाग का ज़िक्र है। यहाँ मनीषा मधुकर के साथ आई है। प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ उनका आना उपन्यास में प्रस्तुत है। "उसे जो याद था उसके अनुसार लालबाग में पर्यटकों की इतनी भीड़ होनी चाहिए थी कि फूल कम दिखलायी दें और सिर अधिक।"[1] परंतु आज वह मधुकर के साथ आई थी। ऐसा लग रहा था मानो उनके आने का समाचार पाकर सारे पर्यटक भाग गए हों। श्वेत, लाल, बैंगनी, हरे, पीले, 'फर्न्स' के गमले गोधूलि की छाया में ग्रीनहाउस में प्रखर दिखाई पड़ते थे। ग्रीनहाउस के सामने लगी हिबिस्कस के पौधों की कतारें, पीले, नारंगी, लाल, गुलाबी अनेक रंगों की थी। यहाँ हिबिस्कस के फूलों से लदी झाड़ियों का इधर-उधर हिलना-डुलना नन्हीं बालिकाओं के बिंब से जोड़ा है जहाँ वे बालिकाएँ अपनी रंगीन पोशाकें, एक-दूसरे को दिखलाकर खिलखिला रही थी। ""वह क्या फूल है?" मधुकर ने पूछा।

"हिबिस्कस।"

"हिबिस्कस? जवाकुसुम ही न?"

"हाँ, पर हवाइन। इसका फूल यहाँ के जवाकुसुम से बड़ा होता है और विभिन्न रंगों का। वह वाला-पीला - सुन्दर है न?""[1]

---

1. मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 93

'मिल जुल मन' मृदुला गर्ग की ही जीवन गाथा कहती है। उन्होंने पर्यावरण एवं उसके सौन्दर्य को बहुत देखा और भोगा है। इसमें जब वे डालमियानगर लौट आई थीं तब गर्भवती होने के कारण उन्हें डॉक्टर साहब ने लंबे सफर में जाने से मना किया था। उनके घर के आसपास बड़ी हरियाली थी। "पेड़ों की टहनियों, बांस-सरकंडों, जंगली फूल-पंक्तियों से मैं तरह-तरह की आकृतियाँ बनाती। जंगली बेर की टेढ़ी-मेढ़ी डालियों को ख़ास अंदाज़ में सजाती, फिर उसे क्रॉस स्टिच कर कपड़े पर काढ़ देती। जैसा भी कपड़ा, जिस-जिस रंग के धागे वहाँ मिलते, उनसे।"[1] यहाँ कपड़ों पर कसीदाकारी में वे फूल-पौधों की बात करती है।

'चित्तकोबरा' में मिस्र तथा कौंगो के रेगिस्तान एवं जंगल का ज़िक्र है। वहीं हरियाली भरे जंगलों का। मनु यहाँ इंसानों को ढूँढ़ रही है। टहनियों, पेड़-पौधों, नदी-झाड़ियों आदि का ज़िक्र करते हुए मृदुला गर्ग ने अपने प्रकृति-प्रेमी मन को जागृत किया है। ""मैं मिस्र के रेगिस्तान से लौटा हूँ अभी।"- - - - - मेरे सामने घना जंगल है.... गुन्थमगुन्था बेलों का अनंत झंखाड़... पेड़ों पर घटाटोप लदी लहरियां लतरें... झाड़ियां और कांटे..... बेपनाह भीड़.... आदमी सूने रेगिस्तान में खोता है और भरे-पूरे जंगल में भी.... किनकी भीड़ है यह.... इंसानों की या पौधों की...."[2]

यहाँ कौंगों में जंगल के काटे जाने की ओर इशारा है।

---

1. मृदुला गर्ग - मिलजुल मन - पृ. 318
2. मृदुला गर्ग - चित्तकोबरा - पृ. 154

नारी और संतानोत्पत्ति

संतानोत्पत्ति स्त्री को महान प्रतिष्ठा प्रदान करती है। वह कन्या से माँ बन जाती है। संतान के जन्म में जितनी भी पीड़ा आएँ पर एक अभूतपूर्व सुख प्राप्त होता है। परंतु प्रसव के दौरान जो वेदनाएँ स्त्री झेलती है वह भयानक होती है। संसार में मातृत्व की इच्छा रखनेवाली हर स्त्री को इस चीरफाड़ से गुज़रना पड़ता है। जहाँ पुरुष का पिता बनना मामूली नहीं तो पीड़ादायक भी नहीं है वहाँ स्त्री का माँ बनना पुनर्जन्म से कम नहीं क्योंकि प्रसव के समय वह ज़िन्दगी और मौत से लड़ती है। इसका अनुमान केवल स्त्री ही लगा सकती है। नारी की सहनशीलता ही उसे इस पथ पर आगे बढ़ने की ताक़त देता है। इस विषय से संबंधित रचना करना बड़ी जिगर का काम है और मृदुला गर्ग ने यह हिम्मत दिखाई है। वे कहती हैं-- "यह एक ऐसी किया है जो नितान्त अकेले निपटानी पड़ती है। प्रेम, सेक्स और गर्भधारण के लिए अन्य व्यक्ति की आवश्यकता होती है पर जन्म देते हुए कोई साथ नहीं होता। निपट अकेली औरत अपने भीतर से एक सम्पूर्ण मानव को जन्म देती है पर उसे बड़ा करके छोड़ देने में, दुबारा अकेले होने में ही, उसकी सार्थकता है।"[1]

---

1. साक्षात्कार - जुलाई-अगस्त 1996, अंतर्गत, 'मृदुला गर्ग के लेख समकालीन संस्कृति और हिन्दी साहित्य में स्त्री चेतना' से - पृ. 89

स्त्री उपर्युक्त विषय पर अधिकतर नहीं लिखा करती थी परंतु अब स्त्रियों ने अपनी ऊर्जा इस विषय की ओर भी दिखाई है। मृदुला गर्ग ने *'बडतला', 'एक चीख का इंतज़ार', 'वह मैं ही थी'* जैसी कहानियों में प्रस्तुत विषय उकेरा है। नारी की गर्भधारण और संतानोत्पत्ति की पीड़ा को लेकर रचना न लिखे जाने को लेखिका यूँ बयान करती हैं– "शुरु शुरु में अपनी स्त्रियाँ अंतरंग, निजी एकाधिकृत अनुभूतियों के बारे में संकोच करती थीं। ....आखिर मातृत्व का सम्बन्ध भी स्त्री की सेक्सुअलिटी से है जो अरसे तक वर्जित विषय बना रहा है, खासकर स्त्रियों के लेखन में। मेरे उपन्यास 'चितकोबरा' पर उठा विवाद इस बात का प्रमाण है। धीरे-धीरे जैसे-जैसे स्त्रियों का संकोच दूर होता गया वे शिशु जन्म के गोपनीय रहस्यमय व एकात्मिक अनुभव के बारे में भी लिखने लगी।"[1]

'बड़तला' में पाकिस्तानियों द्वारा बंग्लादेश की बहूबेटियों पर किए जाने वाले अत्याचारों तथा घरों को जलाए जाने का भी ज़िक्र है। इसके साथ बंग्लादेश की मुक्ति वाहिनी सेना द्वारा घोषित *'आमार सोनार बंगला जय बंगला'* के नारों का उल्लेख और राजनीतिक पृष्ठभूमि भी दी गई। खान की सेना की गोलियों से बचने के लिए बांगलावासियों में गर्भवती जोहरा का भी घुटनों के बल रेंगना, भीषण पीड़ा से कराहना और किसी

---

1. साक्षात्कार - जुलाई-अगस्त 1996, अंतर्गत, 'मृदुला गर्ग के लेख समकालीन संस्कृति और हिन्दी साहित्य में स्त्री चेतना' से - पृ. 89

तरह 5 मील का रास्ता तय कर एक बड के नीचे पहुँच जमाल द्वारा जोहरा की सुरक्षित प्रसूति करवाना, बार-बार अन्य औरतों से अनुनय-विनय करना जोहरा की चीखों और चीत्कार को लेखिका सहज ढ़ंग से पेश करती हैं। "तभी जोहरा ने पूरी देह तीर कमान की तरह तान ली और एक लंबी सिसकती चीख के साथ जमाल के दोनों हाथ कसकर थाम लिये - जोहरा की पकड़ ढीली हुई और फिर कस गई और फिर जोहरा की चीख नवजात शिशु के प्रथम क्रंदन में जा मिली।"[1]

उसी तरह *'एक चीख का इंतज़ार'* में सुरेश की पत्नी प्रसव पीड़ा से छटपटा रही है। अस्पताल में सुरेश और उसकी भाभी बाहर इंतज़ार कर रहे हैं। जच्चा के दर्द से भाभी परेशान होती है। लेबर रूम में चक्कर काटती है। भाभी की मनोदशा को समझ सुरेश उन्हें समझाता है। घायल की गति घायल ही जान सकता है। स्त्री का दर्द स्त्री ही जान सकती है। भाभी को इस बात की खुशी है कि उसे और बच्चे नहीं होंगे। जितना दर्द प्रसूति के वक्त होता है उतनी ही ममता बच्चे से होती है ऐसा कहा जाता है। ऑपरेशन के लिए सुरेश के दस्तख़त लिए जाते हैं कि कहीं कुछ हो गया तो उनकी ज़िम्मेदारी नहीं। भयंकर सन्नाटे के बाद 'साढ़े सात पौंड़' वज़न का लड़का सुरेश के हाथ में मिलता है। वह इसे लेकर पिता का गर्व

1. मृदुला गर्ग - टुकड़ा-टुकड़ा आदमी - बड़तला - पृ. 106, 107

लिए पत्नी से मिलने जाता है परंतु भाभी अपनी सारी संवेदनाओं के साथ बाहर रह जाती है। वे *'एक चीख़ का इंतज़ार'* जो कर रही थी, इसी चीख से नया जीवन धरती पर आता है।

'वह मैं ही थी' कहानी में उमा नामक अर्थशास्त्र की प्रोफसर पति मनीष के तबादले के बाद बिहार के एक छोटे से कस्बे में रहती है। वहाँ ढंग का कोई अस्पताल नहीं है और वह गर्भवती है। एक स्त्री होने की वजह से उसका वहाँ जाना तय था क्योंकि उसका पति जहाँ जाएँ वहाँ पत्नियों का जाना ज़रूरी माना जाता है। लेखिका बडे मार्मिक ढंग से कहती है। "सिर्फ औरत ऐसी चीज़ है जिसे कहीं से उखाड़कर कहीं फेंका जा सकता है, इस धारणा के साथ कि वह जड़े जमा ही लेगी। ऐसे तो कोई कीकर, बबूल से भी पेश नहीं आता।"[1]

इस क्वार्टर में भी एक गर्भवती औरत मर चुकी है। कारखाने की दूषित स्थिति भी मौजूद है। डिस्पन्सरी में दवा के नाम पर मात्र 'एस्परीन' है। उमा को रह-रहकर उस औरत और बच्चे की आत्मा वहाँ भटकती सी लगती है। उस औरत की हैबतनाक चीखों और दर्दनाक मौत की कहानी का गहरा प्रभाव होता है। ऐसे बुरे-बुरे ख्याल हर स्त्री को होते हैं। वह अपने बच्चे के लिए काफी स्वार्थी हो जाती है। इसी मकान का वह

---

1. मृदुला गर्ग - दस प्रतिनिधि कहानियाँ - वह मैं ही थी - पृ. 66

पलंग उस औरत की मौत का साक्षी है। आखिर एक दिन बरसाती रात के अंधेरे में प्रसव का समय हो जाता है। उसकी इतनी हैसियत न थी कि घर जाकर रहे क्योंकि माँ-बाप के कंधों पर अन्य लड़कियों की भी ज़िम्मेदारी थी। दाई ने आकर प्रसूति करानी शुरु की। पसीने में तर पाँच-पाँच मिनट बाद के दर्द से पिसती, आँखे बंदकर, दाँतों को कस्कर अपना पूरा ज़ोर देती है और 'उमा' शिशु को जन्म देती है। लड़की होती है। नौसिखिया डाक्टर बताता है कि प्रसव में देर हो जाने की वजह से दोनों गुर्दे ख़राब हो गए हैं और ख़ून भी काफी बह चुका है। उमा की उसी पलंग पर मृत्यु हो जाती है परंतु अपनी बच्ची को बचा लेती है। परंतु एक औरत और ज़िंदा है जिसे इस क्रिया से फिर गुज़रना होगा। काफी मार्मिक है।

निष्कर्षतः मृदुला गर्ग की गर्भ संबंधी पीड़ा को लेकर लिखी गई रचना काफी गहरी है। इतनी उत्कृष्ट स्थिति का बयान कम ही हुआ है।

बाल-मज़दूरी

मृदुला जी ने बाल-मज़दूरी जैसी समस्या को भी अपने कथा साहित्य में शामिल किया है। खेलने-कूदने की उम्र में दिन-रात कमर तोड़ते बच्चे क्या इस देश का भविष्य बन सकेंगे? इस बात पर ज़ोर देते हुए समाज के सामने मृदुला जी ने सवाल उठाया है। *'तीन किलो की छोरी'* में शारदाबेन की बेटी, *'जेब'* में पेप्सी-कोला बेचता खेमू, *'अनाड़ी'* की

सुवर्णा, *'जादू का कालीन'* (नाटक) के बच्चे और *'कठगुलाब'* की नर्मदा द्वारा इस मुद्दे को पाठकों के समक्ष रखा है। अपना पेट भरने के लिए खेमू ट्रेन में पेप्सी- कोला बेचता है। यात्रियों की उसके प्रति बेरुखी कहानी में दर्ज है। *'तीन किलो की छोरी'* में शारदाबेन की बेटी लकड़ी काटने जंगल जाती है। जो काम उसके पिता को करना चाहिए वह काम एक छोटी लड़की करती है। *'अनाड़ी'* की सुवर्णा अपने अभाव के कारण ही मालकिन के यहाँ काम पर आई है। उसके मालिक का उस पर हमदर्दी जताना उसे पसंद नहीं आता। क्योंकि वह जानती है कि यह सब दिखावे की बातें हैं। यदि उस जैसे लोग काम पर नहीं आएँगे तो इन जैसे लोगों का गुज़ारा नहीं होगा। तभी आक्रोश में मालिक से कह देती है कि इतनी हमदर्दी है तो उसे वे ही दाखिला क्यों नहीं दिला देते। जिन लोगों का उसके सोफे पर बैठकर बिस्कुट खाना पसंद नहीं वे उसे क्या खाक् पढ़ाएँगे। उसी प्रकार 'जादू का कालीन' में कालीन बनाते छोटे-छोटे बच्चों का ज़िक्र है। 'कठगुलाब' की नर्मदा भी बचपन से जी तोड़ मेहनत करके अपनी बहन और उसके पति तथा बच्चों का पेट पालती है। असीमा कमसिन लड़कियों के इस तरह कोल्हू के बैल की तरह काम कराने की व्यवस्था पर थूकती है। वह इन प्रश्नों पर सोच विचार करनेवाली बुद्धिजीवी औरत है। वह प्रश्न करती है - "क्या हिंदुस्तान में बाल मज़दूरी खत्म की जा सकती है? क्या मुफ्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उसका कारगर हल बन सकती है?

क्या उसके साथ शुरु में माँ-बाप को, बच्चों की कमाई एवज में, वज़ीफ़ा देना पड़ेगा। अनिवार्य रूप से प्राथमिक शिक्षा देने के लिए बजट में कितना प्रावधान होना चाहिए?"[1]

इस तरह बाल-मज़दूरी के खिलाफ मृदुला जी की आवाज़ बुलंद है।

निष्कर्ष

जीवन को विभिन्न दृष्टियों से परखने पर ही कला अपनी संपूर्णावस्था निखारती है। इसके लिए किसी विशेष चिंतन धारा के प्रति प्रतिबद्ध होने की आवश्यकता नहीं। मृदुला गर्ग भी कहती हैं कि वे समाजसुधारक नहीं हैं परंतु उनके साहित्य में समाज सुधारक पहलू ज़रूर प्रतिबिंबित होता है। मृदुला गर्ग ने विभिन्न सरोकारों को एक गाँठ में जिल्दबंद कर अपनी संपूर्ण जटिलताओं में भी कृति के प्रति प्रतिबद्धता दिखाई है। उनका कथा-साहित्य जहाँ प्रेम-प्रसंग को द्योतित करता है वहीं लगभग संपूर्ण मानव-जीवन संबंधी समस्याओं को भी इंगित करता है। सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, पारिस्थितिक, आर्थिक आदि सरोकारों को उनके इस अध्याय में वाणी मिली है। उपन्यास से अधिक उनकी कहानियाँ

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 181

मानव जीवन की गहन संवेदनाओं से गहरा सरोकार रखतीं हैं। उन्होंने मौन मानव को वाणी प्रदान की है। अन्याय का खुलकर सामना करने का आह्वान दिया है। उनका साहित्य सचमुच पाठकों को दिशा निर्देश देने वाला है। अतः मृदुला गर्ग निःस्सन्देह आधुनिक जीवन के नए यथार्थ को तलाशनेवाली तथा आधुनिक मानव के अंतरंग सत्य को अनावृत करनेवाले साहित्यकारों में अग्रणी हैं।

❖❖❖

अध्याय - पाँच

मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य का संरचना पक्ष

मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य का संरचना पक्ष

'शिल्प' शब्द की उत्पत्ति 'शिल्प' धातु और 'पक' प्रत्यय से हुई है। यह कलात्मक निर्वाह से संबंधित है। *डॉ. कैलाश वाजपेयी* जी कहते हैं कि शिल्पविधि रचना की उन प्रमुखताओं का लेखा-जोखा है, जिनके आधार पर रचना मूर्त हो सकी है अथवा विशिष्ट भंगिमा के साथ लेखनी द्वारा अवतरित हुई है।

कलाकार अपनी अनुभूति को जिस पद्धति से व्यक्त करता है उसे शिल्प कहा जाता है। शैली उन अनुभूत विषय वस्तु को सजाने का कार्य करता है जिससे कि उस विषय वस्तु को सुंदर एवं प्रभावपूर्ण बनाया जा सके। अतः शिल्प की आत्मा वह डोर है जिसके द्वारा प्रस्तुत ढाँचे में अनुभूत विषय-वस्तु को समाहित या व्यवस्थित किया जाता है। *डॉ. सुरेंद्र उपाध्याय* जैसे विद्वानों ने शिल्प को शैली से अधिक व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हुए उसे वस्तु की अंतःसंरचना का अनिवार्य प्रतिफलन माना है। *डॉ. सुरेन्द्र* के शब्दों में-"शिल्प से तात्पर्य किसी वस्तु को गढ़ना या रूपायित करना है, किंतु यह नितांत बाह्य ढाँचे के तकनीक के नियम हैं, जैसा कि जैनेंद्र मानते हैं। शिल्प वस्तुतः समूची कृति के अंतः भाव का बाह्य

रूपाकार है, वह वस्तु की नाटकीय ढंग से संपूर्ण उपस्थिति है।"[1] शिल्प के अंतर्गत, शब्द प्रयोग, शैली, भाषा, चित्रात्मकता प्रतीक, वाक्य रचना, बिंब, सांकेतिकता, अलंकार आदि आते हैं।

मृदुला गर्ग ने अपने कथा-साहित्य का संरचनात्मक पक्ष काफी प्रभावशाली सिद्ध किया है। अतः उनकी कहानी एवं उपन्यास के संरचनात्मक पक्ष का समग्र विवेचन यहाँ प्रस्तुत है।

जीवन की विविधताओं, मार्मिक प्रसंगों तथा सूक्ष्म समस्याओं को अपने कथा-साहित्य का विषय बनाने और उसे अभिव्यक्त करने के लिए संरचना विविध रूप में अपनाई गई है। परंपरागत घेरे से आज कथा-साहित्य बाहर निकला है और अपनी अलग ही सरगम बजा रहा है। अतः जीवन का हर खण्ड, मार्मिक क्षण, अर्थपूर्ण घटना, कथा तंत्र में बँधने में समर्थ है। संरचनात्मक-पक्ष के नवीन पहलुओं और प्रयोगों का समीकरण कथा-साहित्य में दर्ज है। कहानीकार अपने अनुभव और संवेदना को अभिव्यक्त करने हेतु शिल्प का ही सहारा लेता है। जब कलाकार का अनुभव, कलाकार से बड़ा हो; तो जान लेना चाहिए कि कहानी का ढाँचा बार-बार टूटेगा और तेज़ी से बदलेगा। अतः कथा-साहित्य का संरचनात्मक पक्ष (अनुभूति पक्ष + अभिव्यक्ति पक्ष और वस्तुपक्ष + कलापक्ष) कहानी का निर्माण करने में सहायक होते हैं। नामवर सिंह के अनुसार- "'छोटे मुंह

---

1. हिन्दी लेखिका की कहानियों का शिल्प - पृ. 210

बड़ी बात' कहने वाली कहानी के बारे में प्रायः 'बड़े मुंह छोटी बात' कही जाती है। कहानी का यह दुर्भाग्य है कि वह मनोरंजन के रूप में पढ़ी जाती है और शिल्प के रूप में आलोचित होती है। मनोरंजन उसकी सफलता है तो शिल्प सार्थकता।"[1]

'रमेश बक्षी' जी आज़ादी के बाद की कहानियों में शिल्प के प्रति अतिशय जागरूकता को लक्षित करते हुए कहते हैं कि स्वाधीनता के ठीक बाद की कहानियाँ आप देखें तो ऐसा लगेगा कि शिल्प के हज़ार मोड़ उनमें हैं। उनमें बारीकी है, बखिया है, कसीदा है, फुलकारी है। यहाँ तक संदेह होने लगा था कि कथ्य के बजाय उनमें शिल्प ही शिल्प है।

मृदुला गर्ग की कहानियों के शिल्प-विधान का गहन अध्ययन करते हुए कहना चाहिए कि वस्तु और शिल्प पृथकत्व का बोध नहीं कराते। वस्तुतः लेखक की अनुभूति सामर्थ्य से ही शिल्प उत्पन्न होता है। लेखिका मृदुला गर्ग वस्तु और शिल्प की अपनी धारणा स्पष्ट करती है। "शिल्प कथ्य में से निकलता है। कथ्य में मौलिक तत्व होंगे तो शिल्प में भी प्रयोग होगा। केवल शिल्प का चमत्कार कथ्य को नवीनता नहीं दे पाता। ज़्यादातर नए शिल्प का प्रयोग वही करता है जिसके पास कुछ नया कहने की इच्छा हो। सफलता कितनी मिल पाती है, वह अलग बात है।"[2]

---

1. कहानी : नयी कहानी - नामवर सिंह - पृ. 18
2. मृदुला गर्ग से दिनांक 3 तथा 4 अक्टूबर 2000 को उनके निवास स्थान पर डॉ. तारा अग्रवाल के साक्षात्कार के आधार पर

एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि, कथा-साहित्य का कथ्य, चरित्र, भाषा, शिल्प सभी सुन्दर हो। वास्तव में मृदुला गर्ग वर्णनात्मक शिल्प प्रविधि का पालन कर अनुभूतियों को अभिव्यंजित करती हैं। उनकी कहानियों का अभिव्यक्ति शिल्प उच्चस्तरीय है। भाषा पात्रों की मानसिक अवधारणा के सूक्ष्म बिन्दुओं को अभिव्यंजित करती है। महत्त्वपूर्ण विषय यह है कि मृदुला जी के पास कहने को काफी चीज़े हैं अतः शिल्प उनके कथ्य का सखा और सहगामी बनकर प्रस्तुत होता है। उन्हें अधिक सोच-बूझ कर संरचना नहीं करनी पड़ती। इस विशिष्टता पर *डॉ हरदयाल* का कथन– "वे फंतासी, चेतना प्रवाह, मुक्त आसंग, अत्यधिक प्रतीकात्मक के शिल्प में से किसी का भी उपयोग नहीं करती। वे सीधे सादे वर्णनात्मक शिल्प की कहानियाँ हैं। यह शिल्प परम्परागत शिल्प है। हिन्दी में साठोत्तर काल में इसका उपयोग बहुत अच्छा नहीं माना गया है। लेकिन मृदुला गर्ग की कहानियाँ इस बात को प्रमाणित करती हैं कि पुराना से पुराना शिल्प सार्थक हो सकता है अगर रचनाकार के पास कहने के लिए सार्थक बात हो।"[1]

प्रतीक, रूपक, बिम्ब, लाक्षणिकता या संगीतात्मक ध्वनियों के सहारे कहानीकार प्रभाव को चेतना के अनेक स्तरों पर संप्रेषित करता है।

---

1. पुस्तक परिचय - दिसम्बर 1978 - डैफोडिल जल रहे हैं, शीर्षक डॉ. हरदयाल के लेख से, पृ. 104

नए-पुराने मूल्यों के संक्रमणों ने उसे जटिल बना दिया है। अतः मृदुला गर्ग की सोच कहाँ तक उपकरण एवं कथ्य के सहगामी बन पाएँ हैं आँकना ज़रूरी है।

भाषा के वैविध्य का पुलिन्दा उनके कथा-साहित्य का विषय है। पात्रानुकूल, प्रसंगानुकूल, चित्रात्मक, चलती-फिरती गंभीर एवं चिंतनप्रधान, भदेस इत्यादि भाषाई प्रयोग उनके कथा-साहित्य के कोने-कोने में यत्र-तत्र फैला है। विविधता के अनुरूप ही उन्होंने भाषा तथा शैली शिल्प को अपनाया है। कभी-कभी भाषागत गुंजलक में उलझती भी दिखाई देती हैं। शैली के प्रयोग में भी मृदुला जी माहिर हैं। कथा-निरूपण की शैलियों में आत्मकथात्मक शैली, फ्लैश बैक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, वार्तालाप शैली, वर्णनात्मक शैली, परस्मैपदीय शैली आदि आती हैं। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने उनके लेखन की प्रशंसा करते हुए लिखा, "तुम्हारे लेखन में कोई कुंठा नहीं है। कथा-विचार कैसे, किस रंग और अनुपात में आता है, यह अविस्मरणीय रहेगा।"[1]

लेखक जिस भाषा, जिस रूप तथा जिस विशिष्ट ढंग से अपने भावों तथा विचारों को व्यक्त करता है, वह शैली है। जब लेखन में ये भाव एवं विचार कई बार प्रयुक्त होते हैं तब शैली रूप धारण करती है। यही

---

1. डॉ. लक्ष्मीनारायणलाल द्वारा दिनांक 26.1.1980 को मृदुला गर्ग को लिखे पत्र में से उद्धृत

कारण है कि शैली वैयक्तिक विशेषता बन जाती है और रचना की शैली देखकर हम लेखक का नाम सहज ही बता पाते हैं। समकालीन लेखन में मृदुला गर्ग अपने विशिष्ट कथ्य को अभिव्यक्त करने की विशिष्ट शैली के कारण भी अत्यंत चर्चित हैं। उनका लेखन पाठक की चेतना पर दस्तक देने के साथ-साथ परंपराओं पर आघात भी करता है। योगेश गुप्त उनकी 'बोल्डनेस' के बारे में कहते हैं कि "आधुनिकता को घिसे-पिटे अर्थों के सींखचों से बाहर घसीट लाना ही संभवतः मृदुला गर्ग की बोल्डनेस है।"[1]

साहित्य के लिखित रूपों में भाषा शरीर की भाँति है। जिस प्रकार शरीर के बिना आत्मा अमूर्त ही रहती है, उसी प्रकार भाषा के बिना अमूर्त और अरूप भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान नहीं की जा सकती। भाषा वास्तव में भावों की वाहिका है। मृदुला गर्ग की भाषा नैतिकता के पुराने मानदंडों को तोड़कर प्राचीन परिपाटी का अतिक्रमण कर, अपने भीतर काव्यात्मकता और वैचारिक साहित्य की बौद्धिकता को, एक साथ समाहित कर लेती है। इनकी भाषा का प्रवाह गूढ़, पंडिताऊ और क्लिष्ट शब्दों के स्थान पर सरल, सुबोध और सामान्य जीवन में प्रयुक्त होने वाले शब्दों पर अधिक टिका है। महानगरीय जीवन को अपने कथा साहित्य में अभिव्यक्ति देनेवाली लेखिका ने आम बोलचाल के साथ-साथ दूसरी भाषाओं के शब्दों, वाक्यों, आंचलिक बोलियों, विदेशी भाषाओं के शब्दों,

---

1. योगेश गुप्त - साक्षात्कार, मध्यप्रदेश, सितंबर 1976 - पृ. 84

मुहावरे तथा लोकोक्तियों को भी अपने लेखन में स्थान दिया है। भाषाई वैविध्य उनके साहित्य का विषय है। पात्रानुकूल, प्रसंगानुकूल, चित्रात्मक, चलती-फिरती, गंभीर एवं चिंतनप्रधान, भदेस इत्यादि प्रयोग उनकी विशेषता है। विविधता के अनुरूप ही उन्होंने भाषा तथा शैली को अपनाया है। कभी-कभी भाषागत गुंजलक में उलझती भी वे दिखाई देतीं हैं।

कथा निरूपण की शैलियों में आत्मकथात्मक शैली, फ्लैश बैक शैली, परस्मैपदीय शैली आदि आते हैं। कलाकार मृदुला गर्ग के संरचनात्मक पक्ष को सिक्के के दो पहलुओं में तब्दील कर भाषा तथा शैली; दो संदर्भों में आँका जा सकता है। मृदुला गर्ग की अभिव्यक्ति शैली की भाषा इस रूप में व्यक्त है कि एक-एक शब्द नगाड़े पर चोट करता प्रतीत होता है। लेखन को उच्छेदक कर्म माननेवाली लेखिका अभिव्यक्ति के उपकरणों के माध्यम से प्रचलित सत्य और सांस्कृतिक मान्यताओं पर भी प्रश्नचिह्न लगा देती है। यह मृदुला गर्ग का अभिव्यक्ति कौशल ही है। अध्ययन-विश्लेषण की सुविधा के लिए भाषिक संरचना तथा शिल्पगत उपकरण दो उप-शीर्षकों में विभक्त किया गया है।

मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य की भाषिक-संरचना

'भाषा' शब्द संस्कृति की 'भाष्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है - 'बोलना या कहना। *'हिन्दी साहित्य कोष'* के अनुसार - "यदि वैज्ञानिक

और सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो भाषा मनुष्य के केवल विचार-विनिमय का ही साधन नहीं है, विचार का भी साधन है।"[1] विचार और अनुभूतियाँ अगर बदलती हैं तो भाषा-शैली में भी परिवर्तन होता है। मृदुला गर्ग भाषा के विविध घटकों में डूबी-नहाई प्रतीत होती हैं। उनकी भाषा में अनुभूतियों को सक्षम अभिव्यक्ति देने की क्षमता मौजूद है। जहाँ तक उनकी भाषा की बात आती है, वे ऐसी भाषा का प्रयोग करती हैं जो संवेदना और अनुभव को रचना के सागर में उतारने का सामर्थ्य रखती हैं। अतः यही सक्षमता उन्हें औरों से पृथक सिद्ध करती हैं। वस्तु की आंतरिक माँग के अनुरूप उन्होंने भाषा के विविध विषय चुने हैं। मृदुला गर्ग अपनी कहानियों की अपेक्षा उपन्यासों में भाषा-प्रयोग की दृष्टि से विशेष सतर्क लगती हैं और भाषा तथा शैली के प्रति सजगता के कारण उनके उपन्यासों में शिल्पगत चमत्कार भी अनुभव होता है। मृदुला गर्ग की भाषा शब्द भण्डार से सम्पन्न, सूक्तियों से सजी, चित्रोपमता से युक्त और आलंकारिता से पूर्ण है। मृदुला गर्ग की विशिष्ट भाषा के संदर्भ में सुरेन्द्र उपाध्याय का कथन समीचीन है-- "आज की कहानी में भाषा का एक और आयाम है जिसे घरेलू परिवेश और सम्बन्धों के आत्मीय स्वरूप को चित्रित करने में अत्यंत सफलता मिली है।"[2]

---

1. हिन्दी साहित्य कोष - धीरेन्द्र वर्मा
2. सुरेन्द्र वर्मा - कहानी : प्रवृत्ति और विश्लेषण - पृ. 323

मृदुला गर्ग के सृजन-संसार में उनका प्रमुख और एहं पहलू भाषा का रहा है। यही कारण है कि इस विषय में अधिक वाद-विवाद एवं चर्चा हुई है। गुण-दोषात्मक समीक्षाएँ भी होती रहीं हैं। उनके कथा-साहित्य के भाषाई प्रयोग के विविध आयाम प्रस्तुत हैं।

डॉट्स भाषा

वाक्यों को अधूरा छोड़कर बिन्दुक भाषा भी साहित्यकार से बहुत कुछ कहला देती है। कथा-साहित्य में ऐसे कई बिन्दु होते हैं जहाँ विविध भावों को पाठकों के मन रूपी महासमुद्र की गहराई तक पहुँचाने हेतु तथा उपयुक्त रस उत्पन्न कराने हेतु विशेष प्रकार की भाषा का इस्तेमाल करना पड़ता है। अन्यथा काला अक्षर भैंस बराबर ही समझा जाता है। उन्हीं विशिष्ट भाषाओं में तनावपूर्ण एवं अमूर्त भावों की पकड़ के लिए डॉट्स भाषा का प्रयोग होता है। मनुष्य के भिन्न भावों जैसे द्वन्द्व, निराशा, अवसाद, खीज, विद्रोह आदि सुझाने के लिए डॉट्स भाषा अत्यन्त आकर्षक एवं सार्थक सिद्ध होती है। मृदुला गर्ग ने भी भटकाव, अनिश्चित एवं द्वन्द्व जैसे भावों के स्पष्टीकरण में अमुक प्रयोग किए हैं। इसे 'बिन्दुक प्रयोग' भी कहा जाता है। *'चित्तकोबरा'*, उपन्यास में 'बिन्दुक-प्रयोग' का उदाहरण देखिए–

"अगर मैं रिचर्ड की बीवी होती..... अगर रिचर्ड मेरा पति होता,.... मैं उसके साथ जापान, फूजियामा पर चढ़ती.... रिचर्ड पेरिस के

आईफल टॉवर के नीचे मेरा चुंबन लेता, रिचर्ड मेरी ज़िन्दगी में न रहा तो...."[1]

यहाँ मनु का भटकाव नज़र आता है जहाँ उसे रिचर्ड को खो देने का डर है।

".....मैं न आती तो...... बाहर के दरवाज़े पर तो मैंने ताला लगाया था.... खोल लिया चोरों ने। मेरी अल्मारी खुली पड़ी है, सोने की चेन और अंगूठी गायब है। पर उनका क्या अफसोस करना तेरे साथ जो घटा... हे भगवान।"[2]

यहाँ अनिश्चितता है। स्मिता के बलात्कार के बाद नमिता को शक़ है कि क्या दरवाज़ा खुला था? क्या उसने ताला पक्का लगाया था?

'अनित्य' उपन्यास में भी अविजित की सोच का उदाहरण है "चाय-सिगरेट-फैल पाँव.... सुक़ून और सुक़ूत के चन्द लम्हे...... जहाँ भी मिले। कहीं भी मिल सकते हैं।"[3]

यहाँ अनित्य अविजित के ही मन का प्रतिरूप है जो शांति चाहता है इसे पाना हमारे जीने के तरीके पर निर्भर करता है। पर कुछ लोग इसकी तलाश करते हैं।

---

1. मृदुला गर्ग - चित्तकोबरा - पृ. 142
2. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 21
3. मृदुला गर्ग - अनित्य - पृ. 32

'मिलजुल मन' उपन्यास में गुल के बारे में कही गई बात देखिए-

"कहाँ....गुल तो..... हरदम अकेली..... बंटी-बंटी रहती.... होता है बच्चों के बाद..... ऐसा ही होता है।"[1]

यहाँ गुल की मानसिकता बिना कहे ही पाठक समझ लेता है।

कहानियों में डॉट्स भाषा का उदाहरण है–

"सूरज ढल रहा है.... सोच पिघल चुका..... अब मशाल की गरमी पाकर शरीर पिघल रहा है। मोम की तरह..... कोई अहसास बाकी नहीं है....."[2]

यहाँ मृत्यु की ओर बढ़ते व्यक्ति की अकुलाहट साफ नज़र आती है। पठान मौत का फरिश्ता था। जिसके साथ मिसेस दत्ता चली जा रही थी। मिसेस दत्ता का अनकहा एहसास डोट्स में मृदुला जी ने समझा दी है।

"जी.... मैं.... मंज़ूर......" वह हकलायी तो उधर वह भी हकला दिया। "मैं..... मेजर लतीफ़...... आपने चिट्ठी....." बमुश्किल उसकी नज़रें पेट से हट कर मंज़ूर के चेहरे तक आयी और उसने जुमला पूरा किया, "....लिखी थी...."[3]

---

1. मृदुला गर्ग - मिलजुल मन - पृ. 253
2. मृदुला गर्ग - हरी बिंदी - ग्लेशियर से - पृ. 75
3. मृदुला गर्ग - संगति-विसंगति - मंज़ूर-नामंज़ूर - पृ. 751

यहाँ पर बिन कहे ही डोट्स भाषा चिट्ठी के भेजने, पढ़ने, समझने की बात बयान करती है। उनकी आपसी हिचक भी बतलाती है।

"तेज़ाब की बौछार की तरह फूँक रहे हैं उसकी आँखों को.... उसे दीखना बंद हो गया है..... कुछ देर के लिए.... सामने बैठे आदमी।"[1]

व्यंग्यात्मक भाषा

यथार्थ सदा कटु होता है और साठोत्तरी कहानियाँ यथार्थ के निकट हैं। कटु सत्य को व्यंग्यात्मक शैली में कहना सर्वथा उपयुक्त रहता है। भाषा में व्यंग्य शैली पाठक पर सीधा प्रहार करके उसके हृदय को चीरकर कचोटती है। जीवन और उसकी न्यूनताओं के प्रति जागृत करती हैं। उसे सक्रिय बनाती है। अतः व्यंग्य-चेतना कहानी-सृजन में अनिवार्य हिस्सा है। स्वाधीनता के पश्चात् भिन्न विषयों जैसे आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक अनेक विषयों पर खामियों और गलतियों को टटोलते हुए व्यंग्यात्मक कहानियाँ लिखी गई हैं। मृदुला गर्ग ने कई आवश्यक स्थानों पर व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग किया है।

डाक व्यवस्था पर व्यंग्य- "बप्पा का जवानी खत इतनी जल्दी आया कि मैं घबरा गयी। दोनों देशों की एक व्यवस्था यकायक इतनी सुधर कैसे गई? सवाल जवाब के बीच थोड़ा सा असमंजस भी बाकी नहीं रहा।"[2]

---

1. मृदुला गर्ग - उर्फ सैम - पृ. 76
2. मृदुला गर्ग - शहर के नाम - पृ. 87

आज कल डाक-व्यवस्था इतनी ग़ैर ज़िम्मेदार है कि वे 'इंटर्व्यू कार्ड', इंटर्व्यू खत्म होकर रिक्रूटमेंट के बाद पहुँचाती है। परीक्षाओं के लिए हॉल टिकट यहाँ तक कि ज़रूरी कागज़ात भी वक़्त बीत जाने के बाद पहुँचता है। स्पीड़ पोस्ट इतना धीमा चलता है कि कछुआ भी खुद पर गर्व करने लगे।

नेताओं के दलबदलने पर व्यंग्य - "मैंने भी सोचा बात तो ठीक है दलबदलू नेताओं पर ऐसी दवा हिन्दुस्तान में ही ईजाद हो सकती है। यहाँ की हवा की करामात है। साहब तभी न हमारे प्यारे नेता, इस मुस्तैदी से आये दिन अपने नारे और दल बदल लेते हैं।"[1]

अपने फायदे के लिए फालतू में दल बदलते नेताओं की कमी नहीं। एल.डी.एफ, यू.डी.एफ का खेल तो सभी केरलवासी जानते ही हैं। अब्दुल्ला कुट्टी का दल बदलना कुछ इसी खेमे में आता है। यहाँ दल मात्र पार्टी नहीं अपनी बात से फिरना भी है। चुनाव से पहले के वादों से नेता इस तरह मुक़र जाते हैं जैसे चोर चोरी करके भूल जाता है।

व्यंग्यात्मकता लेखिका की लेखन-शैली का प्रमुख गुण है। "1992 के बाद मृदुला गर्ग की कहानियों में व्यंग्य और फंतासी के पुट बढ़ गए हैं। या कहें कि पार्श्व से निकलकर के मंच पर आ गए हैं और प्रमुख

1. मृदुला गर्ग - ग्लेशियर से - पृ. 76, 77

भूमिकाएँ निभाने लगे हैं।"[1] उनके कहानी-संग्रह *'मेरे देश की मिट्टी, अहा'* की कहानी *'कलि में सत्'* में व्यंग्य का उदाहरण द्रष्टव्य है– "आम पिताओं की तरह उसका बाप भी उसका नाम राम रखना चाहता था, पर नामकरण के ऐन मौके पर पंडित अड़ गया, नाम 'द' अक्षर से शुरु होगा। बस, बाप ने दशरथ कह दिया। राम से संबंध जो ठहरा। राजपाट तो दशरथ को मिला नहीं, पर विरसे में हलवाई की दुकान ज़रूर मिली। शुद्ध देसी घी के विज्ञापन वाली। नाम देसीराम, कमाई इतनी कि राजपाट पानी भरे।"[2]

नाम का पहला अक्षर सोच-समझ कर, अंधविश्वासों के चलते, पंडितों के बताए अक्षरों के दम पर रखने वाले लोगों की कमी नहीं। यहाँ पंडित से तात्पर्य मात्र हिन्दू धर्म नहीं बल्कि उनमें अन्य सभी धर्म भी शामिल हैं। यदि वह ईश्वरीय न हो तो भी उनके जुड़े किसी न किसी नेक़ व्यक्ति के नाम से जुड़ा ज़रूर होना चाहिए। फिर चाहे उसमें वे गुण हों न हों। इस कहानी का राम, दशरथ सब मंडी पर बिक रहे हैं। अर्थ के पीछे भागने वाले हैं। पुराने दशरथ के राजपाठ से अधिक कमाने वाले हैं।

'सुधीश पचौरी' ने *'मेरे देश की मिट्टी, अहा'* की समीक्षा करते हुए इसकी शैली पर बड़ी सुंदर टिप्पणी की है - "मृदुला की इन कहानियों का गद्य एक बिंदास गद्य है। बेलौस, दो टूक और खिलंदड़ा।"[3]

---

1. मृदुला गर्ग - मेरे देश की मिट्टी, अहा के फ़्लैप से उद्धृत
2. मृदुला गर्ग - मेरे देश की मिट्टी, अहा - कलि में सत् - पृ. 98
3. सुधीश पचौरी, सुपर कहानी ज़ीरो अक़्स, राष्ट्रीय सहारा, 29 अक्टूबर 2001

'ज़ीरो अक़्स' में व्यंग्यात्मकता का पुट देखिए– "लेखक वह अपनी मर्ज़ी से बना था। पर इस प्रकाशन संस्थान का मालिक, संपादक, आलोचक, संयोजक, संपर्क अधिकारी वग़ैरह-वग़ैरह उसे मज़बूरन बनना पड़ा है। प्रकाशन की दुनिया में जो सन्नाटा छाया हुआ था, जो बाज़ारूपन आ गया था, समाजोन्मुख होने के बजाय, किताबों की दुनिया जो समाज-विमुख होती जा रही थी, उसे लोहा लेने के लिए उसे मैदान में उतार दिया गया।"[1]

संपादन एवं प्रकाशन में होते खेल का खुलासा करते हुए कौशल कुमार के माध्यम से व्यक्त किया गया है कि किताबी दुनिया के आदर्शों में भी खेल छुपा है। प्रकाशन, आलोचना सभी दोहरेपन से गुज़रता है। ऊपर कुछ और तथा भीतर कुछ और।

संवादों का बिन्दुओं के बाद छोड़ देना

मृदुला जी के कथा-साहित्य में अनेक स्थानों पर संवादों को तीन बिन्दुओं के बाद छोड़ दिया गया है। यह शैली न केवल वाक्यों के उतार चढ़ाव और लेखिका की अभिव्यक्ति को पाठक तक संप्रेषित करने में सहयोग देती है, बल्कि अधूरे वाक्य और भी अधिक प्रभावी सिद्ध होते हैं। *'अनित्य'* उपन्यास में इस शैली का अत्यंत सुंदर प्रयोग हुआ है। इसमें

---

1. मृदुला गर्ग - मेरे देश की मिट्टी, अहा - ज़ीरो अक़्स - पृ. 59

वाक्य अधूरे होते हुए भी कुछ न कुछ कह जाते हैं - "भूख आँतों में नहीं लगती आदमी के....।"[1]

उपर्युक्त प्रयोग अविजित के लिए प्रयुक्त है जो संगीता के प्रति उसकी 'जिस्मानी भूख' को बख़ूबी व्यक्त करता है।

'नेति-नेति' कहानी में भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं। "मैंने कहा, मुक्ति दो और उसी क्षण, वह....।"[2]

पहले जहाँ लेखिका की भाषा कसी-सधी संयत भाषा थी वहीं बाद में वह फक्कड़पन और बेलोस हो गई। चुटीलापन उनकी *'इक्कीसवीं सदी का पेड़'* कहानी में व्यक्त है। "पेड़ को नहीं मालूम था, इक्कीसवीं सदी आएगी, आ गई। जब उसने उगना शुरू किया तो बीसवीं सदी थी या उन्नीसवीं, उसने पता करने की कोशिश नहीं की थी। पेड़ को सदियों से क्या लेना देना।"[3]

आलंकारिक भाषा

अमूर्त भावों का यह मूर्त्त चित्रण भावाभिव्यक्ति में सौंदर्य उत्पन्न कर रहा है। ***'साहित्य कोष'*** के अनुसार 'अलंकार' शब्द में 'अलम्' और 'कार' दो शब्द हैं। 'अलम्' का अर्थ है 'भूषण'। जो अलंकृत या भूषित

---

1. मृदुला गर्ग - अनित्य - पृ. 254
2. मृदुला गर्ग - मेरे देश की मिट्टी, अहा - नेति-नेति - पृ. 51
3. मृदुला गर्ग - मेरे देश की मिट्टी, अहा - इक्कीसवीं सदी का पेड़ - पृ. 89

करें वह अलंकार है। *डॉ. नरसिंह प्रसाद दुबे* कहते हैं कि अलंकारों के द्वारा अभिव्यक्ति में स्पष्टता आती है, भावों में प्रभावोत्पादकता आती है तथा भाषा में सौंदर्य आता है। अलंकार-वाणी, भाषा के सामर्थ्य, समृद्धि एवं सौन्दर्य में इज़ाफा लाने में काफी माइने रखता है। लेखक अप्रस्तुत विधानों द्वारा अपने निजी अनुभवों, विचारों तथा कल्पना को वाणी देता है।

कथ्य को और अधिक आकर्षक तथा चमत्कारी बनाने के लिए, भावाभिव्यक्ति में तीव्रता लाने के लिए तथा हृदय की सौन्दर्य पिपासा की पूर्ति के लिए उपन्यासकार श्रीमती गर्ग ने भाषा को आलंकारिता से भी सजाया है जैसे - "उसे कैसे समझाया जाए कि रोज़ उसी कमरे की खिड़की के आगे सूरज उगता है। रोज़ धूप का नन्हा ख़रगोश डरा-सिमटा उसी बरामदे के कोने में दुबका रहता है और सूरज डूबने से बहुत पहले, निश्चित मृत्यु के डर से काँपकर, अपनी खोह में जा घुसता है। रोज़-रोज़ अंधेरा उसी कमरे के कोनों में कालिख पोतता है। और रोज़ उसी बिस्तर पर सिसकियाँ पैदा होने के पहले दम तोड़ दिया करती है।"[1]

यहाँ सफेद धूप ख़रगोश की भाँति उछलता-कूदता और सिमटा सा प्रतीत होता है। धूप का सूरज डूबते ही गायब हो जाना और रफ़्ता-रफ़्ता अंधेरा होना आलंकारिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। धूप और शाम दोनों वक़्त बड़े ही सुन्दर अंदाज़ में प्रकट है।

---

1. मृदुला गर्ग - चित्तकोबरा - पृ. 129

"इतना बेहिस्स सच थप्पड़ की तरह माधवी के गाल पर लगा।"[1] सच के थप्पड़ के साथ तुलना करके उस सत्य की तीव्रता मृदुला जी ने अंकित की है कि माधवी के भीतर के मध्यवर्ग का दोमुहापन साफ नज़र आने लगा। त्रिवेणी पहुँचकर कौशल कुमार जैसे भद्दे चेहरेवाले के साथ सड़कों पर खड़ा रहना, मध्यवर्गीय माधवी के लिए चौकसी का विषय है। उसे डर है कि लोग क्या सोचेंगे कि इतनी संभ्रांत महिला इस जैसे दो टके के आदमी के साथ क्या कर रही है। कौशल कुमार का इस सच को मुँह पर पूछना कि यदि मैं अच्छी सूट-बूट में सड़क पर इंतज़ार करता तो माधवी को कोई एतराज़ न होता एक कड़वी सच्चाई है।

"स्तब्ध चम्पा, क्षण कर के लिए मेंढ़क के समान तुड़ी-मुड़ी टांगे लिए ज़मीन पर बिलखते मुन्नू को देखती रही।"[2] यहाँ 'चम्पा' का मेंढ़क से मुन्नू की उपमा करना काफी सराहनीय कार्य है। मुन्नू का बिलखकर ज़मीन पर रेंगने को मेंढ़क के साथ तुलना की गई है। जिससे मुन्नू की विवशता और रोना दोनों अंकित है।

"इसके चेहरे पर यह प्रफुल्ल मुस्कान बिल्कुल ऐसे लग रही है जैसे पुराने जूते का मुँह आगे से खुल आया हो।"[3] यहाँ कल्पना के साथ मुस्कान को जूते के खुले मुँह की तरह बताया गया है।

---

1. मृदुला गर्ग - मैं और मैं - पृ. 61
2. मृदुला गर्ग - टुकड़ा-टुकड़ा आदमी - पृ. 32
3. मृदुला गर्ग - मैं और मैं - पृ. 60

'उसके हिस्से की धूप' में मधुकर की आँखों के वर्णन के लिए लेखिका ने एक नहीं अनेक उपमानों का प्रयोग किया है। "उसे याद आया उसकी ये काली पुतलियाँ हमेशा से उसकी विभिन्न मनःस्थितियों का चित्रण उतनी ही सूक्ष्मता से करती आई हैं। वह हंसता है तो नीली-झील में तैरती बतखों - सी दिखाई पड़ती है, प्यार करता है तो तूफानी नदी पर खेलती सफल नाविकों की नावों सी प्रतीत होती है, क्रोध करता है तो ताज़े टूटे कोयलों - सी चमक उठती है जैसे अब लगता है, दियासलाई की लॉ का स्पर्श पाए बगैर ही भभककर जल उठने को तैयार हैं।"[1]

"उसकी एक डॉट में अपने को देशप्रेमी कहने वाला नवयुवक दल, गुब्बारे में सूँई चुभ जाने के समान पिचककर रह गया था।"[2] जिस तरह सुई चुभ जाने से फुला हुआ गुब्बारा पिचक जाता है उस तरह संघियों का, देशप्रेमी नवयुवकों का जोश शुक्ला साहब के एक डाँट से फुस्स हो गया।

"पता नहीं, कपड़े कब धोकर डाल देती थी, छत पर बंधी डोर पर लटके फरफराया करते थे, हवा भरे गुब्बारों से।"[3] इस उदाहरण में भी कपड़ों का सूखने के लिए बिछाना और हवा के कारण कपड़ों का फुल जाना आलंकारिक ढंग से प्रस्तुत है। "उसकी साड़ी। इतनी महीन, जैसे हवा

---

1. मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 24, 25
2. मृदुला गर्ग - वंशज - पृ. 74
3. मृदुला गर्ग - समागम - पृ. 25

में उड़ता वर्षा ऋतु का पहला बादल।"[1] महीन साड़ी को वर्षा ऋतु के पहले बादल के साथ जोड़कर, उस साड़ी के हवा में उड़ते नज़ारे को मृदुला जी और सुन्दर बना देती है।

"वे चिंतक, गुरु, दार्शनिक बने; मामाजी, पागलखाने के मेहमान। पर मेरे वे गुरु थे। मैं गणितज्ञ नहीं बनी चूंकि मुझमें एकलव्य-सी बसारत न थी।"[2] एकलव्य की काबलियत मोगरा में नहीं है। इसीलिए वह गणित में होशियार होते हुए भी गणितज्ञ नहीं बनी। इस बात को 'एकलव्य-सी बसारत' कहकर मृदुला जी ने अपनी आलंकारिता का सबूत दिया है। "काम मुश्किल नहीं था। पर बुनियादी ईमानदारी ने करने नहीं दिया और मैंने रंगीन बुढ़िया की तरह की, किरदार अदा किया।"[3]

'मिलजुल मन' में रंगीन बुढ़िया का किरदार अदा करना, काम में आलसन तथा काम की तरफ बेरुखा रवैया अपनाना है। यहाँ बुढ़िया के उपमान के साथ मोगरा का रवैया बयान किया गया है।

दृश्यात्मक भाषा

दृश्य वह पर्दा है जिसे उठाते ही कही या सुनी गई बातें अधिक प्रभावशाली हो जाती हैं। मृदुला गर्ग की भाषा में वह टीस मौजूद है जो दृश्य

1. मृदुला गर्ग - टुकड़ा-टुकड़ा आदमी - पृ. 19
2. मृदुला गर्ग - मिलजुल मन - पृ. 54
3. वही - पृ. 207

को जस-का-तस उभारने का सामर्थ्य रखता है। कभी-कभी उनकी कथाएँ मंचीकरण सी प्रतीत होती हैं। मृदुला गर्ग की रचनाओं के द्रष्टा - 'पाठक' पढ़कर उनके द्वारा प्रस्तुत दृश्यों के शब्दबद्ध रूप महसूसते हैं। "चांद काफी मुहिम तय कर चुका था। अब ठीक हमारे ऊपर था और पहले से भी कहीं ज़्यादा चमकदार।"[1]

बीतते वक़्त को चाँद के बदलते स्थान के अनुसार बयान किया गया है। यह वाक्य आकाश में चंद्रमा के पूर्ण रूप से उदित होने का दृश्य साकार करता है। एक और उदाहरण उनकी कहानी *'कितनी कैदें'* प्रस्तुत करता है - "फिर देखा, वर्षा थमी हुई है पर आका तब भी काफी गुस्सैल नज़र आ रहा है। पूरा बरसा नहीं।"[2]

अपूर्ण वर्षा के कारण आका की स्थिति और दृश्य का वर्णन अलंकारिकता के साथ हुआ है। एक और उदाहरण *'मिलजुल मन'* नामक उपन्यास से प्रस्तुत है जिसमें दृश्य गुलमोहर के पहली बार जूड़ा बाँधने तथा उसकी काबलियत का है। "ये मोटा-बड़ा-ऊंचा। गुल से दोगुना। वह बालों के बीच झब्बू रखती, तब जाकर बड़ा-सा बनता।"[3] गुलमोहर की सबको अपने बस में करने के हुनर का दृश्य मृदुला गर्ग जी यूँ बयान करती हैं।

---

1. मृदुला गर्ग - शहर के नाम - पृ. 18
2. मृदुला गर्ग - कितनी कैदें - पृ. 33
3. मृदुला गर्ग - मिलजुल मन - पृ. 224

"चेहरे की रंगत बचाना एक बात है, ज़िंदगी को आँधियों से बचाना, दूसरी। मेरे हिसाब से जो डर कर भागने के बजाय, ताप-लू-गर्दिश को अपने हक़ में कर ले, वह है गुलमोहर।"[1]

काव्यात्मक भाषा

साधारणतया काव्यात्मकता कविता में अधिक पाई जाती है। परंतु गद्य में काव्यात्मकता का प्रयोग भी ज़ोरों पर है। इसका प्रवाह भाषा में सौंदर्य-सृष्टि करता है। सूक्ष्म और अमूर्त्त भावनाओं को शब्दबद्ध करने के लिए अधिक कठोर और तर्कपूर्ण शैली का इस्तेमाल मुश्किल है। अतः भाषा का सरल, सुंदर, कोमल और लावण्ययुक्त होना ज़रूरी है। मृदुला जी ने अपने कथा - साहित्य में काव्यात्मकता तथा तार्किकता दोनों गुणों को सहज ही स्वीकृत किया है। *'चित्तकोबरा'* उपन्यास में काव्यात्मकता सर्वत्र देखी जा सकती है। "दो टुकड़ों में बँटा मेरा चित्र। दो टुकड़ों में बँटी मैं। हर क्षण जुड़ने की प्रतीक्षा में...... आशंकित। जुड़कर एक होना और चूर-चूर होकर पिघल जाना एक ही बात है।"[2] *'चित्तकोबरा'* को यदि भावप्रवण लंबी कविता कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। और एक उदाहरण उद्धृत है– "रिचर्ड, बोलो! कहो न एक बार तुम हो। कहीं भी.... मिस्र के रेगिस्तान में.... कांगो के जंगल में.... आइसलैंड के ग्लेशियर पर.... तुम

---

1. मृदुला गर्ग - मिल जुल मन - पृ. 11
2. मृदुला गर्ग - चित्तकोबरा - पृ. 23

हो.... बस हो.... कहीं भी.... बोलो रिचर्ड...... एक बार मेरे दर्पण पर फिर उभर आओ न रिचर्ड...... सिर्फ़ एक बार....।"[1]

मृदुला गर्ग की कहानियाँ भी काव्यात्मकता में पीछे नहीं हैं। *'कितनी कैदें'* कहानी में काव्यात्मकता 'मनोज' की 'मीना' से बातचीत द्वारा स्पष्ट होती है– "ज़रा सोचो तो सही, ज़मीन के गर्भ में हम दोनों बिल्कुल अकेले हैं। बस हम दो या एक। हमारे कहीं बहुत ऊपर पानी हिंलोरें ले रहा है, बहुत-बहुत ऊपर है न परीदेश का समाँ।"[2] *"डैफ़ोडिल जल रहे हैं"* नामक लंबी कहानी की भाषा भी काव्यमयता के उदाहरण देती है। "सबसे बढ़िया आईरिस वहीं खिलते हैं। और वहाँ बर्फ़ हैं। बर्फ़ ही बर्फ़। दूर-दूर तक। पास भी। ऊपर चढ़ाई तक। नीचे ढलान पर। आईरिस का बड़ा-सा गुच्छा हाथ में लेकर, और अपने कूल्हे बर्फ़ में जमाकर, वह एक बार जो फिसला तो सीधा गुलमर्ग आ पहुँचेगा।"[3]

'स्थगित कल' नामक कहानी भी काव्य-रूप में खिल उठा है। इसमें 'प्रवीण' जब डॉक्टर के पास अपनी रिपोर्ट लेने जाता है, तो वहाँ बैठे-बैठे गुलदस्ते को लेकर उसके मन में जो भाव उत्पन्न होते हैं वह काव्यात्मकता के साथ अभिव्यक्त हुई है। "सहसा डॉक्टर की दुकान के

---

1. मृदुला गर्ग - चित्तकोबरा - पृ. 167
2. मृदुला गर्ग - कितनी कैदें - पृ. 8
3. मृदुला गर्ग - ड़ैफ़ोडिल जल रहे हैं - पृ. 30

कोने में रखा पीतल का बरसों पुराना फूलदान धूप में तपते पारदर्शी शीशे के टुकड़े-सा दमक उठा। सातों रंग झिलमिला गए एक साथ और उसमें खोंसी गुलाब की अकेली कली। इकहरी हरी टहनी पर स्थिर दो नुकीली हरी पत्तियों के बीच क़ैद, नारंगी रंग की सिमटी बँधी पंखुड़ियाँ, मेरे देखते - देखते सिहरीं, खिलीं और फैल गईं। असीम में।"[1]

चिड़ियाघर में प्रवासी चिड़ियों की ताल को लेकर प्रवीण कहता है– "बहुत दिन पहले, एक बार देखा था, लगा था, यह ताल नहीं, सागर है। सागर नहीं, संसार है, ब्रह्मांड है। एक दिन, ऐसे ही हाँक मार, मेरी आरोही आत्मा खुले आसमान में जा उड़ेगी।"[2]

इस प्रकार मृदुला गर्ग ने भाषा में काव्य का पुट देकर रचना को प्रभावशाली और आकर्षक रूप दिया है।

चिन्तन प्रधान भाषा

मृदुला जी ने अपने कथा-साहित्य में गंभीर एवं चिन्तन प्रधान भाषा का भी इस्तेमाल किया है। खासकर उनकी चुनिंदा कहानियों में ये उदाहरण मिलते हैं। परंतु उपन्यास इससे अछूता नहीं रहा। '*मैं और मैं*' उपन्यास के अन्त में झूठ की दुनिया का सच और आज की दुनिया में झूठ

---

1. मृदुला गर्ग - स्थगित कल - पृ. 14
2. वही - पृ. 45

की रंगबिरंगी विरासत को मृदुला जी बयान करतीं हैं जैसे- "कितना आसान है एक के बाद एक झूठ बोलते चले जाना। और कितनी खूबसूरत, पारदर्शी और रंगबिरंगी है झूठ की दुनिया। सच क्या है उसके सामने। एक ठोस, मटमैला और खुरदुरा, पत्थर। झूठ की दुनिया में उड़ान भरने वाला मन कल्पना के गुब्बारे में सुई चुभाकर, पथरीली धरती पर क्यों उतरेगा?"[1]

'उर्फ सैम' कहानी में भी उदाहरण मिलते हैं - "यह शिव का तांडव नहीं जो प्रलय में सृष्टि का बीज लिए होगा। यह अन्त है आवृत्तिहीन अंत। यह नाच मनुष्य के निर्देश पर नाचा जा रहा है दिव्य शक्ति के निर्देश पर नहीं। उस अपूर्ण मनुष्य के निर्देश पर जो अपने को अपूर्ण जानते हुए भी पूर्ण मानने लगा है। अर्ध सत्य पर विश्वास और अर्धज्ञान में दंभ जिसकी प्रकृति बन चुकी है तभी न प्रकृति के विरुद्ध युद्ध छेड़ बैठा है वह। प्रकृति ने नहीं चुना उसे वह खुद उसका संरक्षक बन गया है, प्रकृति रक्षिता हो उसकी जैसे।"[2]

एक अन्य और उदाहरण *'डैफोडिल जल'* रहे हैं नामक लंबी कहानी से देखिए - "जब कोई आदमी ज़िन्दगी से बहुत-बहुत प्यार करता है तो उसके लिए मरना बहुत-बहुत आसान हो जाता है।"[3]

---

1. मृदुला गर्ग - मैं और मैं - पृ. 226
2. मृदुला गर्ग - उर्फ सैम - पृ. 122
3. मृदुला गर्ग - ड़ैफ़ोडिल जल रहे हैं - पृ. 42

'स्थगित कल' कहानी में प्रवीण हमेशा कहता है कि 'दोस्ती आदमी देखकर की जाती है, उसका पद देखकर नहीं। ....दोस्ती की नहीं जाती, हो जाती है।"[1]

मृदुला गर्ग व्यक्ति, संगठन और सिद्धान्त की भारतीयों के पक्ष में चर्चा करते हुए कहती हैं कि "हमारे यहाँ व्यक्ति पहले आता है, फिर संगठन और सबसे बाद में सिद्धांत। बुद्ध के ज़माने से यही पद्धति चली आ रही है। बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि का मन्त्र यही सिखलाता है; पहले व्यक्ति, फिर संगठन और सबसे बाद में सिद्धांत।

बहुत ही खतरनाक पद्धति है। व्यक्ति-पूजा का ज़हर आम आदमी को नपुंसक बना डालता है।

दूसरों के इशारों पर चलने के लिए आदमी पहले अपने से समझौता करता है, फिर औरों से और धीरे-धीरे......

समझौता उसका स्वभाव बन जाता है।"[2] *'कठगुलाब'* में स्त्री की पढ़ाई और शादी का संबंध चिंतन प्रधान है - "स्मिता पढ़ाई में जुट गई थी। शादी के बाज़ार में भाव बढ़ाने के विचार से नहीं, आगे पढ़ाई करके

---

1. मृदुला गर्ग - स्थगित कल - पृ. 34
2. मृदुला गर्ग - अनित्य - पृ. 72

नौकरी करने के इरादे से।"[1] स्मिता के अपराधी जीजा के मर जाने पर भी उसके साथ जो कुछ हुआ टाला नहीं जा सकता। इसी का नाम जीवन है। मृदुला गर्ग ने चिंतित शब्दों में *'कठगुलाब'* उपन्यास में इसे प्रस्तुत किया है - "पर वह बहुत बाद में हुआ था। और उसके बाद....... हर 'बाद' के बाद एक और 'बाद' आता है, इसी का नाम जीवन है। कभी लगता है, बहुत-कुछ बदल गया, कभी कि कुछ भी नहीं बदला, और कभी साफ-साफ समझ में आ जाता है कि हम सिर्फ खुद को बदल सकते हैं, और किसी चीज को नहीं।"[2]

वातावरण प्रधान भाषा

पात्र हमेशा भिन्न वातावरण को चित्रित करते हैं। मृदुला गर्ग अपनी कलम की स्याही से प्रस्तुत बाह्य परिवेश के ज़रिए पात्रों में जान फूँकने में कामयाब रही हैं। पात्रों के आंतरिक मन के संचार को अंकित करने के लिए उन्होंने वातावरण का सहारा लिया।

अपनी *'क़रार'* नामक कहानी में उमस भरे वातावरण का वर्णन देखिए- "हवा का नामोनिशाँ न था। सूरज की तपती, पिघलती गरमी नहीं थी। पर उमस भरपूर था। तनिक हवा चलती तो जीवन का आभास होता। मैं आँखें बंद किए प्रतीक्षा करती रही कि हवा का एक झोंका न सही, हल्का

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 14
2. वही - पृ. 37

कम्पन, सांस की आवाजाही जैसी नाममात्र की हरकत बदन को सहलाए तो सो जाऊँ। पर वहाँ सब कुछ ठहरा हुआ था श्मशान की तरह।"[1]

वातावरण प्रधान भाषा *'कठगुलाब'* में प्राप्त है। जैसे - "बर्फ गिरने से पहले मैंने न्यू इंग्लैंड का फॉल देखा था। क्या उसे पतझड़ कहेंगे? यहाँ का याद रखने लायक कुछ था तो वही फॉल का महीना। पर बरबस जो याद आ जाता था, वह था बर्फ का अटूट विस्तार।"[2]

'मिलजुल मन' में बाग बगीचे का सुंदर वातावरण नर्गिस के फूल की विशेषता के साथ प्रस्तुत है - ""एक क़शिश थी जो खींचे लिए जाती थी। मॉल रोड पर हवेलीनुमा कोठी, तरतीब से संवरा बड़ा बगीचा, मखमली घास और सैकड़ों नर्गिस के फूल। नर्गिस का पौधा भी क्या बिंदास शै है। नहीं खिलाएगा तो बरसों एक फूल नहीं। खिलाएगा तो सैकड़ों इकट्ठा।""[3]

वाक्यों की पुनरावृत्ति

कभी वाक्य जब पुनः दोहराया जाता है तो वह वाक्य और अधिक वज़नदार बन जाता है जिसे लेखक कहना चाहता है। मृदुला गर्ग ने भी पुनरावर्तन से भाषा को सार्थक बनाने का प्रयास किया है। मृदुला गर्ग

---

1. मृदुला गर्ग - शहर के नाम - पृ. 87
2. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 25-26
3. मृदुला गर्ग - मिलजुल मन - पृ. 183

की कहानी *'दुनिया का कायदा'* में यह दृष्टि विशेष महत्त्व रखती है। यह *'कितनी कैदें'* कहानी संग्रह में संग्रहीत है। वाक्यों की पुनरावृत्ति कहानी में व्यंग्य का प्रभाव और तेज़ और चमत्कार युक्त बना देती है। उदाहरण के लिए-

"यह तो दुनिया का कायदा है"[1] "दनिया का कायदा है।"[2]

'उसका विद्रोह' कहानी में एक ही वाक्य चार बार दोहराया गया है। जैसे - "पर आज वह तैश में था और कुछ ऐसा कर देना चाहता था जिससे सब समझ जाए कि उसे बेबात इधर-उधर नहीं खदेड़ा जा सकता।"[3]

यहाँ नायक का विरोध साफ ज़ाहिर है। *'दुनिया का कायदा'* में ही से एक और उदाहरण उद्धृत है। "तभी द्वार पर एक और अदाकर के आगमन ने चढ़ते दौर को और भड़का दिया।"[4]

"नगाड़े पर निर्मम प्रहार हुआ और एक नयी अदाकार प्रकाश - पुंज में आ उपस्थित हुई।"[5]

---

1. मृदुला गर्ग - दुनिया का कायदा - पृ. 108
2. वही - पृ. 116
3. मृदुला गर्ग - टुकड़ा-टुकड़ा आदमी - पृ. 79
4. मृदुला गर्ग - कितनी क़ैदें - दुनिया का कायदा - पृ. 110
5. वही - पृ. 117

पात्रानुकूल भाषा

पात्रों की भाषा प्रत्येक पात्र के स्तर तथा वर्ग के हिसाब से भिन्न होती है। विभिन्नता और विविधता का होना ही कहानी को सार्थक बनाता है। अतः कहानी अधिक स्वाभाविक और जीवन्त दिखाई देती है। कथा-साहित्य में (कहानी और उपन्यास में) भाषा का पात्रानुकूल होना नाटक के समान ही अत्यावश्यक है। नर्मदा द्वारा उसकी स्थिति के अनुकूल भाषा का प्रयोग होने के कारण 'कठगुलाब' का 'नर्मदा' प्रकरण वैशिष्ट्यपूर्ण बन गया है। "गरमी सिर चढ़ गई, मालिस कर दूँ। साहब के कराकरूँ थी ना। बिचारा मुँह से तो कुछ ना कह सके था, बस आँख से टप-टप आँसू गिरा करे थे। टुकुर-टुकुर ताका करे था। मुझे पता है मेम बीबी, तुम्हारा बदन छू के कहूँ हूँ, अब भी साहब का गूँगा प्रेत धमे है इस घर में।"[1]

'कठगुलाब' में 'नर्मदा', 'असीमा' आदि के लिए पात्रानुकूल भाषा प्रयुक्त है। नारीवादी 'असीमा' द्वारा प्रयुक्त भाषा का नमूना देखिए- "मेरी ज़ुबान बंद हो गई पर मन ही मन मैं दुहराती रही, हरामी-हरामी-हरामी... मैंने तय कर लिया था कि उन दोनों के लिए, हमेशा उसी लफ़्ज का इस्तेमाल करूँगी। हरामी नंबर एक, मेरा बाप। हरामी नंबर दो, मेरा भाई, माँ चाहो तो पूजा करो उनकी। मैं किसी साले मर्द से वास्ता नहीं रखना चाहती।"[2]

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 119
2. वही - पृ. 159

'चित्तकोबरा' में भी मृदुला जी ने पात्रानुकूलता का ध्यान रखा है। 'मनु' के कवि चरित्र के अनुरूप ही उसकी भाषा में काव्यात्मक लोच और मार्मिकता है। *'मैं और मैं'* में कौशल कुमार के अनुरूप उसके लेखकीय अंदाज़ की भाषा दिखती है - "अपराध तुम खूब करो, माधवी, बस प्रायश्चित ज़रूर करती रहना। ऐसे ही मेरे कंधे पर सिर रखकर चौड़ी हो रही मेरी छाती से चिपककर बार-बार रोना।"[1] *'अनाड़ी'* नामक कहानी में बम्बइया भाषा का प्रयोग मिलता है। "इतना तरस आ रहा है तो भेज दो ना इस्कूल। करवा दो उसकी पढ़ायी - लिखायी का इंतज़ाम! ना वो इनके बस का नई। फिर कौन करेगा झाडू-फटका, कौन मलेगा भांडे। चा और ये बेचारी बेचारी भी कितने दिन करेंगे। मक्कार, मतलब पड़ा तो थमा देंगे केला या पाव। नई चइए सुवर्णा को, उसे चाइए बिस्कुट।"[2]

ग्रामीण पात्रों की आँचलिक, लोक भाषा का प्रयोग भी उनकी कहानी में मिलता है। "हुई न मोटी अक्कल लुगाई की। नागा हुआ तो छटनी में आ जाऊँगा।"[3] एक अन्य उदाहरण *'टुकडा-टुकडा आदमी'* नामक कहानी से प्रस्तुत है – "हमें रांड न कर दो, हमारे पेट में बच्चे का धियान करो।"[4]

---

1. मृदुला गर्ग - मैं और मैं - पृ. 126
2. मृदुला गर्ग - शहर के नाम - पृ. 31
3. मृदुला गर्ग - टुकड़ा-टुकड़ा आदमी - पृ. 2
4. वही - पृ. 4

भाषा के बिंब

बिंब एक प्रकार की मानस प्रतिभा है। जब कल्पना मूर्त रूप धारण करती है तब बिंब का सृजन होता है। मनुष्य संभवतः घटना और वस्तु को बिंब रूप में ही ग्रहण करता है। कथा-साहित्य को सुन्दर आभूषण पहनाने में बिंबों का बहुत बड़ा हाथ है। *'मधुसूदन पाटिल'* का मत है – "कथा सृजन की बेला में अनुभूतियाँ कल्पना का सहारा लेकर बिम्ब निर्माण में अपना योगदान देती है और कहानीकार बिंबों के माध्यम से उन्हीं बिम्बों को सहृदय तक प्रेषित करता है जिन्हें उसकी कल्पना अनुभूतियों के स्तर पर ग्रहण करती है। ....बिम्ब निर्माण में प्रधानता प्रत्यक्ष अनुभवों की ही रहती है। लेकिन कभी-कभी प्रत्यक्ष अनुभव के अभाव में भी कल्पना के द्वारा संवेदना के स्तर पर उनसे साक्षात्कार कर लिया जाता है।"[1]

बिंबात्मक भाषिक विधान का प्रयोग मृदुला गर्ग ने बड़ी सूझ-बूझ एवं मार्मिकता के साथ कथा-साहित्य में प्रस्तुत किया है। स्थिति और संदर्भ देखते हुए उनके कथा साहित्य में उपर्युक्त प्रयोग है। *'मैं और मैं'* उपन्यास में आज के यथार्थ बोध की अभिव्यक्ति मिली है। बिंब-योजना भी उसी के अनुरूप है। उपमान सपनों से न लेकर यथार्थ की धरातल से लिया गया है। उदाहरण के लिए - "उसके अपने जीवन में कहीं कुछ सुंदर नहीं

1. डॉ. मधुसूदन पाटिल - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में बिम्ब विधान - पृ. 126

है। चेचक के दाग़ों से गुदे बीबी के चेहरे से लेकर घर से सटे उस पोखर तक, जिसके किनारे बूचड़खाने के कसाई जानवरों की खाल उतारते हैं। उसके ख़ून घुले पानी से उठते भभकों जैसी ही रही है, हमेशा से उसकी ज़िंदगी।"[1]

यहाँ दृश्य और गंध बिंब को मिलाकर संश्लिष्ट बिंब प्रकट हुआ है।

'डैफोडिल जल रहे है', *'गुलाब के बग़ीचे तक'*, *'यह मैं हूँ'*, *'झुटपुटा'*, *'कितनी कैदें'*, *'झूलती कुर्सी'* आदि कहानियों में लेखिका ने बिंबों का सहारा लिया है। *'डैफोडिल जल रहे हैं'* में 'वीना' का डैफोडिल के फूलों को जलते हुए देखना उसकी मृत्युमय स्थिति का बिंब प्रस्तुत करता है। "वही नारंगी - सिंदूरी - सुर्ख़ लपटें। वही धू-धू धधकती लकड़ियाँ। वही चकाचौंध,वही तपिश और.... आग की झुलसती लपटों के ठीक ऊपर कार्निश पर पड़े डैफोडिल। लाल लौ के नुकीले नाख़ूनों से बिंधे, पीले, निरीह फूल। उनकी पंखुड़ियों के कोर झुलसकर सिकुड़ रहे थे, दियासलाई की लौ दिखलाए ख़त के पन्ने की तरह।"[2]

'गुलाब के बग़ीचे तक' में नायक की इच्छाओं, ख़ुशियों तथा आकांक्षाओं का बिंब गुलाब के बग़ीचे के द्वारा उभरता है। उसकी सभी खुशियों का अंत गुलाब के बग़ीचे में सदा के लिए खो जाने से होता है।

---

1. मृदुला गर्ग - मैं और मैं - पृ. 7, 8
2. मृदुला गर्ग - चर्चित कहानियाँ - ड़ैफ़ोडिल जल रहे हैं - पृ. 88

इस प्रकार मृदुला गर्ग ने अस्पष्ट एवं तीव्र बिंबों की प्रस्तुति से कथा-साहित्य में चार चाँद लगा दिए हैं।

प्रतीकात्मक भाषा

अनुभूति को अधिक संप्रेषणीय बनाने के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है। ये प्रतीक उन विचारों और अनुभूतियों को अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, जो धुँधली और अस्पष्ट होने के कारण सहज संप्रेषणीय नहीं होतीं। अपना मूल अर्थ खोकर ये प्रतीक नवीन अर्थों में पाठकों के समक्ष पहुँचते हैं। यद्यपि प्रतीक भी एक प्रकार का संकेत ही है, किंतु संकेत प्रतीक की भाँति निश्चित और एकरूप न होकर अनिश्चित और अनेक रूप होते हैं। मृदुला गर्ग ने आज की ज़िन्दगी में फैली विघटन संत्रास, अजनबीपन, मूल्यों के टूटन और वैषम्य को लेकर कथासाहित्य को समृद्ध बनाया है।

साठोत्तरी कहानी लेखिकाओं ने अपनी अनुभूतियों को मूर्त रूप देने के लिए, सुंदर प्रतीकों का प्रयोग किया है। ये प्रतीक लेखिकाओं की भावनाओं को व्यक्त करते हैं। यद्यपि आज कहानी में प्रतीक योजना दुरूह हो गई है फिर भी नए प्रतीकों का विधान कहानी की संरचनात्मक विशेषता है। कथा-साहित्य के अर्थ सौष्ठव की वृद्धि हेतु मृदुला गर्ग ने भी कथा साहित्य में प्रतीकों का यथोचित प्रयोग किया है। भाषाई खूबसूरती के आग्रह से उनकी अनेक कहानियों के शीर्षक प्रतीकात्मक निकले हैं।

'कितनी क़ैदे' कहानी का शीर्षक प्रतीकात्मक है। लोहे का पिंजड़ा मानसिक घुटन, द्रोह और असहजता का प्रतीक है, जिसमें मानसिकता की हीन ग्रंथियाँ क़ैद हैं जिनसे मीना का मन मुक्ति पाना चाहता है।

'झुटपुटा' कहानी में सूरज को आग का गोला कहना और उसे बाहों में लेने की इच्छा करना और अंत में समुद्र के किनारे बालू को बाहों में भरना 'केशव' की अतृप्त कामवासना का प्रतीक है।

'अवकाश' कहानी में नायिका जब अपने पति से तलाक़ की बात करने आती है, तो वहाँ के वातावरण का निरीक्षण करते हुए फूलदान में सरपत की फलियों की तरफ़ ध्यान चला जाता है। उन फलियों का पककर हाथ लगते ही रोंया-रोंया होकर बिखर जाना उनके बिखरते संबंधों का प्रतीक है। उसके महेश के साथ संबंध यद्यपि तनावपूर्ण थे, किंतु आज की बात से वे सदा के लिए बिछुड़ने वाले हैं।

'मौत में मदद' कहानी में नायिका का गंधराज के फूलों को, जिससे उसे मृत्युगंध आती थी, निकालकर फेंकना मृत्युभय से मुक्ति का प्रतीक है।

'झूलती कुर्सी' में झूलती कुर्सी नायिका के मानसिक द्वंद्व तथा अस्थिरता का प्रतीक है।

'हरी बिन्दी' कहानी का शीर्षक नायिका की स्वच्छन्द प्रवृत्ति का प्रतीक है। कहानी की नायिका धुंध में खुलापन और सूर्य के प्रकाश में घुटन महसूसती है। कहानी में प्रयुक्त धुंध और सूरज इन दो शब्दों की प्रतीकात्मकता को स्पष्ट करते हुए *'डॉ. मधुसन्दु'* जी कहती हैं– "यहाँ सूर्य का प्रकाश भारतीय जीवन में पति-पत्नी सम्बन्ध की स्पष्टता का द्योतक है जिससे नायिका उकता चुकी है। धुँध जैसे अस्पष्ट रिश्तों के प्रति उसे लगाव है कि शायद वहीं से कोई जीवनदात्री अनुपम मोहक भावना मिल जाए।"[1]

'हरी बिंदी' कहानी का निम्नलिखित वाक्य स्पष्ट करता है कि सूरज का रोज़ निकलना सीधे सपाट यांत्रिक जीवन का प्रतीक है और धुंध नायिका की दिशाहीनता का। "सूरज तो यहाँ रोज़ ही निकलता है पर धुंध कभी-कभी होती है। आठ महीनों में आज पहली बार।"[2]

'बर्फ बनी बारिश' में 'बिन्नी' अपने निर्णय पर कि 'वह पति व बच्चों के पास अमरीका नहीं जाएगी' अडिग थी। बर्फ के समान जमी और ठोस थी वहीं बिन्नी, 'अमर' (पति) की बिमारी का संदेश पाते ही 'बारिश' बन पिघल जाती है। यहाँ 'बर्फ' शब्द ठोस और दृढ़ निर्णय का प्रतीक है। वहीं 'बारिश', 'ममता', 'त्याग' और 'बलिदान' का प्रतीक है। पति के प्रति बिन्नी की भावनाओं का प्रवाह है।

---

1. डॉ. मधु संधु - साठोत्तर महिला कहानीकार - पृ. 95
2. मृदुला गर्ग - कितनी क़ैदें - पृ. 34

जगह-जगह उनकी भाषा भी प्रतीकों के घेरे में आ गई है। "धूप ने सड़क को नंगा कर रखा है" तथा "हेलमेट के नीचे भट्टी सुलग उठी थी।"[1]

उपर्युक्त दोनों वाक्यों में 'नंगा' शब्द सड़क के मनुष्यहीन होने का प्रतीकार्थ लिए है तथा भट्टी शब्द अत्यधिक ऊष्मा और गर्मी को प्रकट कर रहा है।

कहानी के समान मृदुला गर्ग के उपन्यास भी प्रतीकात्मकता से छूटे नहीं हैं। उपन्यासों में *'अनित्य'* तथा *'कठगुलाब'* में प्रतीकात्मकता अत्यधिक बेहतर ढंग से अपनाई गई है। 'जगदम्बा प्रसाद दीक्षित', *'अनित्य'* उपन्यास के संबंध में लिखते हैं- "अनित्य सारे उपन्यास में फैला हुआ ऐसा पात्र है, जो अधिकांशतः प्रत्यक्ष रूप से मौजूद नहीं है। वह काफ़ी कुछ प्रतीकात्मक है इसलिए उसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है।"[2]

अनित्य नामक पात्र स्थूल रूप से तो अविजित का छोटा भाई है, किंतु अविजित के मन का प्रतीक है। अविजित का मानसिक रूप से अविकसित पुत्र 'सुधांशु' भारत के संभावित विक्षिप्त भविष्य का प्रतीक है। सुधांशु बैठकर कागज़ कैंची से कतर रहा है। "ख़ाली कमरे के एक कोने

---

1. मृदुला गर्ग - उर्फ सैम - पृ. 23
2. जगदंबाप्रसाद दीक्षित - 'अनित्य' पर एक व्यक्तिगत टिप्पणी, अक्षरा 20/11/91 मार्च 92, पृ. 92

में बैठा सुधांशु कैंची से काग़ज़ काट रहा है। आजकल यही उसका काम, है और यही खेल।

छोटे-छोटे काग़ज़ों पर कच-कच कैंची चल रही है। काग़ज़ कट रहा है, टेढ़ा-मेढ़ा, बेतरतीब, बिला वजह। कट-कटकर नीचे गिर रहा है। और फिर कट रहा है। कच-कच क़ैंची चल रही है....।"[1]

यहाँ काग़ज़ का बेतरतीब कतरना अनिश्चित तथा बेतरतीब भविष्य का प्रतीक है। काग़ज़ का आकृति विहीन काटना, दिग्भ्रमित भारत की नई पीढ़ी का प्रतीक है।

'कठगुलाब' उपन्यास के अनेक प्रतीकार्थ व्यंजित होते हैं। 'कठगुलाब' काठ के समान सख़्त और बेजान हो जाने की यंत्रणा का प्रतीक है। उपन्यास के सभी स्त्री-पात्र माँ बनने की अदम्य लालसा रखनेवाले हैं। उनकी दिली-ख्वाइश अंदर ही अंदर दबी हुई है। अंत में बंजर हो जाने का त्रास झेल रहे हैं। पुरुष की संवेदनहीनता ने 'ड्रैक्यूला' का काम किया है जो स्त्री को रक्तहीन बना डालता है। अभ्यासवश अब वह कठगुलाब की तरह अँकुआ तो जाती हैं, लेकिन हरियाने और खिलने का जज़्बा भीतर पैदा नहीं कर पा रही हैं।

विपिन के लिए *'कठगुलाब'* सहजता, सरलता और प्रकृति का प्रतीक है। वह सोचता है– "इतनी सहज, सरल सादा कब हो पायी

---

1. मृदुला गर्ग - अनित्य - पृ. 261

है ज़िन्दगी? या प्रकृति?"[1] अर्थात् कठगुलाब ज़िन्दगी का भी प्रतीक बन गया है।

उपन्यास के विपिन खण्ड में स्मिता और विपिन के संवादों द्वारा भी *'कठगुलाब'* की प्रतीकात्मकता स्पष्ट होती है। जब स्मिता कहती है- "चालीस साल बाद। कुछ ठहरा नहीं रहता, पर कुछ बदलता भी तो नहीं। मैं समझती हूँ मि. मजूमदार, बूढ़ा सिर्फ शरीर होता है। मन तो कठगुलाब की तरह है सदाबहार। पर.... कितना नष्टप्राय। सूखता नहीं बुढ़ापा, पर हाथ लगने पर टूटकर बिखर जाने को तैयार रहता है।"[2]

अर्थात् स्मिता की दृष्टि में *'कठगुलाब'* सदाबहार मन का प्रतीक है। *'कठगुलाब'* का एक और प्रतीकार्थ उपन्यास के उन सभी स्त्री पात्रों के लिए खरा उतरता है जो लगातार परिस्थितियों से संघर्ष करते-करते 'काठ' की तो बन गईं हैं परंतु बूँदे पड़ते ही (स्नेह की बूँदे) भक्क से खिल उठती हैं और प्रस्फुटित होने तथा मुस्कान भरने की शक्ति भी उनमें आ जातीं हैं।

'कठगुलाब' बांझपन का प्रतीक भी है। स्त्री जीवन का बांझपन। *'कठगुलाब'* में शुगर मेपल के फाल का चित्र प्रस्तुत किया गया है, "सुबह

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. ???
2. वही - पृ. 220

उठी तो मेरी चीख़ निकल गई। शुगर एकदम नंगी खड़ी थी। क्या हुआ? कौन नोच ले गया उसका बाँधनी जोड़ा। बुरा सपना देखा था क्या? आँखें बंद की, खोलीं। वहीं निर्वस्त्र खड़ी थी शुगर। मेरे बैग पर आँसू की बूँदे झिलमिला रही थीं।

बलात्कार!

मैं उसकी लुटी कमर से लिपट कर रो पड़ी। रोते-रोते हिचकियाँ बँध गईं, कै हो गई, फिर भी मेरा रोना नहीं थमा।"[1]

फॉल के दिनों में नंगी, निचुड़ी, बलात्कृत शुगर मेपल समूची स्त्री-जाति की लज्जा, पीड़ा और अपमान को हर साँस के साथ महसूस करने का प्रतीक है।

'उसके हिस्से की धूप' शीर्षक में धूप का प्रतीकार्थ उसके हिस्से का 'प्यार' है जो नित्य रहता है यद्यपि कुछ समय के लिए न दिखें। मनीषा, मधुकर के हिस्से की धूप में भी सिंकना चाहती है और उसके साथ जितेन के प्यार की छाँव भी कटु नहीं बनाना चाहती। इस धूप-छाँव यानि पति और प्रेमी के बीच उसने समझौता कर लिया है। अतः शीर्षक कथावस्तु से मेल खाता है।

'चित्तकोबरा' उपन्यास का शीर्षक दो शब्दों के योग से बना है। लेखिका ने संस्कृत शब्द चित्त (स्वभाव) को अंग्रेज़ी के 'कोबरा' (सांप) से

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 30

जोड़ा है जो प्रतीकात्मक है। मनु का चित्त उसके अस्तित्व को सर्वदा डँसता रहता है, मनु और रिचर्ड साँप की तरह एक दूसरे के प्रेम में तिरोहित हैं, नाग की रैखिक काया, समय, जीवन और कथा प्रवाह का प्रतीक है।

इस प्रकार मृदुला गर्ग के लेखन में प्रतीकों का अत्यंत सुंदर निर्वाह हुआ है।

सांकेतिकता

भाषा सांकेतिकता का प्रयोग कृति को और अधिक प्रभावात्मक बना देती है। अर्थवत्ता से युक्त होने के कारण रचना चेतना और अनुभूति को गहरे स्तरों पर स्पर्श करती है। मृदुला गर्ग ने अपने लेखन में इस शैली का अत्यंत सुंदर प्रयोग किया है - "दस क़दम आगे..... दस क़दम पीछे..... फिर आगे.... पीछे.... आगे.... बार-बार पीछे। संकरे बरामदे में दोनों सिरों की दीवारें क़दमों पर मुहर लगा रही हैं। दीवार तक और वापस..... मुड़ना ही होगा...... टकराना न चाहो तो"[1]

अविजित का बार-बार पीछे-आगे होना उसकी मानसिक स्थिति दर्शाता है। वह घर की ज़िम्मेदारियों से मुक्त होना चाहता है। किंतु बार-बार उसे पुनः उसी घर में लौटना पड़ता है, जहाँ उसकी पत्नी मानसिक रूप से रुग्ण है।

1. मृदुला गर्ग - अनित्य - पृ. 3

'कितनी क़ैदें' में 'मीना' का बंद स्थान में घुटन महसूस करना उसकी मानसिक ग्रंथि की ओर संकेत करता है। अंत में लिफ्ट का पुनः चलना और 'मनोज' और 'मीना' का बाहर आना, 'मीना' की उस मानसिक ग्रंथि से छुटकारा का संकेत है। जीवन की आपबीती को छिपाते-छिपाते वह मानसिक यंत्रणा से गुज़र रही थी जो अंततः खत्म हो जाती है।

'हरी बिंदी' कहानी असाधारण जीवन का आग्रह करने तथा एक दिन के लिए उसके खुलकर जीने की ओर इशारा करती है। *'अलग-अलग कमरें'* कहानी में 'नरेंद्रदेव' का 'सुरेंद्रदेव' से डिस्पेंसरी अलग करने के लिए कहना उनमें आए परिवर्तन की ओर संकेत करता है और कमरों का अलग-अलग होना, पीढ़ियों की खाई की ओर संकेत करता है।

'वंशज' उपन्यास के अंत में 'डॉक्टर जैन' द्वारा कथित निम्नलिखित वक्तव्य इस बात की ओर संकेत करता है कि, सुधीर अब पागल हो चुका है और घर में और उसे रखना संभव नहीं। शीघ्र ही उसे किसी पागल खाने भेज देना चाहिए। "आगरा का अस्पताल काफ़ी बढ़िया माना जाता है।"[1]

'मेरा' कहानी में 'मीता' का 'गर्भपात' के फ़ार्म को फाड़ कर डॉक्टर के पास जाना तथा 'महेंद्र' को यह कहना कि वह शाम को देर से घर लौटेगी - इस बात की ओर संकेत करता है कि अब वह अपने जीवन

---

1. मृदुला गर्ग - वंशज - पृ. 243

का निर्णय स्वयं लेगी। गर्भपात न करवाकर अच्छी नौकरी करेगी और बच्चे को जन्म देकर अपना अलग जीवन व्यतीत करेगी।

अतः मृदुला जी के कथा-साहित्य में सांकेतिकता का प्रयोग हुआ है।

मुहावरों तथा कहावतों का प्रयोग

मुहावरों का उदाहरण नीचे दिया जा रहा है। *दुखती रग को बींध देना* - दर्द देती बातों को दोहराकर और दर्द पैदा करना, *जवाब ईंट का पत्थर से देना* - किसी को उल्टे मुँह जवाब देना, *महंगाई का आसमान छूना* - चीज़ों के दाम में बढ़ोत्तरी होते जाना, *राहत की सांस लेना* - आश्वासन पाना, *जी हुजूरी करना* - किसी की गुलामी करना, *फुग्गा मारकर रो देना* - फूट-फूट कर रोना, *लोहा लेना* - पंगा लेना आदि।

कहातवें - *कोढ़ी का करम* - बदकिस्मत, *राजा ए भी भीख मंगवा दे* - ग़रीबी *इस ज़िन्दगी से तो मौत भली* - ज़िन्दगी की मुश्किलों के कारण मरने को लालायित होना, एक जून खाकर काम चला ले - एक महीना कम करने से उस महीने का खर्च या जीना काम नहीं होता।

भिन्न भाषा के रूप

भाषा के कई स्तर मृदुला जी ने अपने कथा साहित्य में प्रस्तुत किए हैं।

आँचलिक भाषा

'पोंगल पोली' में 'आइहोले' के खंडहर जो चालुक्यों के समय के हैं तथा वहाँ रहनेवाली अशिक्षित जनजाति के जीवन को इसमें चित्रित किया गया है - "पूर्णिमा के दिन उसकी अम्मा खाने को पोली बनाती है और पर्व के लिए पोंगल। उसकी अम्मा जैसा पोंगल कोई नहीं बना सकता। जाने कितने दिन पहले से आदमी सोच-सोचकर प्रसन्न होता रहे। और पोली? जैसे देवता का प्रसाद हो। कितनी कोमल। कितनी मीठी।"[1]

'दो एक फूल' भी दक्षिणी परिवेश मैसूर के आसपास के अंचल की कहानी है। ग्रामीण लोगों का भगवान को नारियल चढ़ावा देकर मनौती करना, दक्षिणी व्यंजन चिउड़ा चकली उपमा आदि तथा नीची छतों के कमरों के घरों के बाहर रंगोली की सजावट तथा कर्नाटकी कसूती कढ़ाई इस बात के सबूत हैं।

कलकत्ते की आँचलिकता मृदुला जी की कहानी *'मौत में मदद'* में मिलती है। बुद्धन का कथन देखिए – "छेले भीषण असुस्थ। टाका दाओ माँ....।"[2]

कोटा-डोरिया की साड़ियाँ तथा गंधराज के फूल आदि कलकत्ता के आँचल में अधिक मशहूर हैं।

---

1. मृदुला गर्ग - चर्चित कहानियाँ - पोंगल पोली - पृ. 51
2. मृदुला गर्ग - टुकड़ा-टुकड़ा आदमी - मौत में मदद - पृ. 83

'डैफोडिल जल रहे हैं' कहानी कश्मीरी परिवेश की कहानी है। प्रसिद्ध दर्शनीय स्थल गुलमर्ग, पहलगाम, चंदनवारी, श्रीनगर आदि कहानी में उल्लेख्य हैं। विशिष्ट फूल आइरिस, नर्गिस, डैफोडिल आदि भी विशेष रूप से वहीं मिलते हैं।

विदेशी भाषा

हिन्दी से इतर भाषा का प्रयोग भी मृदुला गर्ग ने अपने कथा-साहित्य में किया है। अंग्रेज़ी उर्दू, बंगाली आदि भाषाएँ उनके लेखन में मिलती हैं।

बंगाली भाषा का प्रयोग - *"मौत में मदद'* नामक कहानी में बुद्धन का मालकिन से बात करना उदाहरण है।

> "छेले भीषोण असुस्थ।
> टाका दाओ माँ। कामिनी आहो।
> भीषोण ज्वर, हाथ-पाँ फूले गैलो।
> टाका दाओ माँ। भीषोण व्यथा माँ।
> टाका चाई।"[1]

अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग - *'बड़ा सेब काला सेब'* कहानी में 'चॉकलेट इज़ ब्लैक' (चॉकलेट काला है)

---

1. मृदुला गर्ग - टुकड़ा-टुकड़ा आदमी - मौत में मदद - पृ. 83, 84

'ब्लैक इज़ ब्यूटिफुल' (काला सुन्दर है)

'एण्ड यू आर मैड' (और तुम पागल हो)

'वंशज' उपन्यास में - मैंथमैटिक्स, डिसिपिलिन, कैरियर, आदि।

'वंशज' उपन्यास में मानक चंद जो सुधीर का रिश्ते में फुफेरा भाई है कहता है– "हम लोग सारी महत्त्वपूर्ण ड्रग्स बाहर से इम्पोर्ट करते हैं। पता है, एन्टीबायोटिक्स कितने ऊँचे दामों पर बिकते हैं?"[1]

'उसके हिस्से की धूप' में सूट, टाई, फैक्टरी, फ्लाइट। *'कठगुलाब'* में - सिस्टरहड, इंप्रेशनेबल, प्रेगमेटिस्म, इंटरप्रेट आदि।

भदेस भाषा

प्रस्तुत भाषा असांस्कृतिक कही जा सकती है जिसमें गाली गलौज, बीभत्स और जुगुप्सापरक शब्द प्रयुक्त होते हों।

"मरने दे हरामज़ादी को....."[2]

चुप, चुडैल, छोड़ नौटंकी, उठ और काम पर लग। दूध पहुँचाने कौन जाएगा तेरा बाप!"[3]

---

1. मृदुला गर्ग - वंशज - पृ. 121
2. मृदुला गर्ग - शहर के नाम - तीन किलो की छोरी - पृ. 6
3. वही - पृ. 55

"करमजली, बदज़ात, वह चीखा...."[1]

"ढोंगी, कलमुंही। निकल मेरे दरवज्जे से। चली आवे हैं मेरा भेजा खाने। हरामज़ादी, कुत्ती, मैं पूछूँ हूँ तुझसे, तूने कित्ते मरद किए कित्ते छोड़े। जो बात पे बात किए जावे हैं मुझसे। लौंडी हूँ तेरी या तेरे खसम की? तुझसे तो वो लाख दरजे अच्छा था जो सड़-सड़ के मरा।"[2]

"हरामज़ादी को इत्ता तेज़-तेज़ दौड़ने की क्या जरूअत थी।"[3]

स्वच्छंद भाषा

कहीं-कहीं मृदुला गर्ग की भाषा स्वच्छंदता का बख़ान भी करती है। ऐसी भाषा के वाक्य छोटे और एक ही वाक्य को तोड़ कर बनाए हुए होते हैं। क्रियापद टूटा-उल्टा-पुल्टा और वाक्यों का रूप-बंध भी व्याकरण समान नहीं है। *'अक़्स'* कहानी में नायिका का वाक्य "कितने लोग आए मुझे देखने। सज धज कर बैठी मैं उनके सामने, वे तका किए घूर-घूरकर मुझे और मैं ढूँढा की एक मुस्कुराहट उनकी आँखों में।"[4]

इस अंश में वाक्य व्याकरण के साधारण नियमों को नहीं मानते। भाषा एक प्रकार का आकर्षण और मार्दव पैदा करता है। ऐसी भाषा प्रायः बोलचाल की होती है।

---

1. मृदुला गर्ग - टुकड़ा-टुकड़ा आदमी - पृ. 98
2. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 143
3. वही - पृ. 127
4. मृदुला गर्ग - शहर के नाम - अक़्स - पृ. 24

'वंशज' उपन्यास से उदाहरण उद्धृत है। "ठक-ठक-ठर्राक। ठक-ठक-ठर्राक। कुदालें चलाते मज़दूर, टूटते कोचले के ढ़ेर, ढ़ेरों से भरती टोकनियाँ, टोकनियों से लदी हॉलिंग मशीने। कोयला-कोयला-कोयला। और-और-और। कल से ज्यादा उत्पादन आज। आज से ज्यादा कल।"[1]

उपर्युक्त अंश में खण्डित वाक्य प्रयोगों द्वारा भी कोयला का खदान उभर आया है।

'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास का अंश– "सहसा, उसकी आँखों के सामने जितेन का बंगलूर वाला घर साकार हो उठा। बगीचा, आंगन - बरामदा। घास-क्यारियाँ - गाड़ी - गमले - मेज़ - कुर्सियाँ। ड्राइवर - नौकर - मेहमान - दफ्तर। नास्ता - खाना - चाय-प्रतीक्षा। प्रतीक्षा और प्रतीक्षा।"[2]

उर्दू भाषा के शब्द

फारिग, ज़ाया, मज़लूम, आशिक, मिसाल, आरजूमंद, तामीर, ईजाद, हैबतनाक आदि।

संकर शब्द

लेखिका ने *'कठगुलाब'* में दो भाषाओं के योग से बने 'संकर शब्दों' का वैशिष्ट्यपूर्ण प्रयोग भी किया है–

1. मृदुला गर्ग - वंशज - पृ. 179
2. मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 62

1) फेमिनिन कौशल - अंग्रेज़ी + हिन्दी[1]

2) स्थायी डिवोशन - हिन्दी + अंग्रेज़ी[2]

3) लिबरल मर्द - अंग्रेज़ी + उर्दू[3]

4) ताज़ातरीन नॉबेल - उर्दू + अंग्रेज़ी[4]

शब्द-प्रयोग

मृदुला जी ने वास्तविकता का मुहिम भर रचना में शब्दों, ख़ासकर अन्य भाषा से चुने हुए शब्दों का शानदार और साभिप्राय प्रयोग किया है। देशज शब्दों में - करमजली, पानी खीड़ना आदि तथा समुच्चय शब्दों में 'पतली-छरहरी', सर्र-सर्र, झटक-मटक, इतरा-झरा आदि, लेखकीय शब्दों में यकसाँ, चस्पाँ, तईं, मौजूं, कायदा आदि हैं।

विशिष्ट भाषा और शब्दावली के जादू से रचना अधिक सार्थक बनी है। काव्यात्मकता, चित्रात्मकता और सांकेतिकता ने भाषा को और अधिक पाठकों के साथ जोड़ दिया है। मृदुला जी ने भाषा को सही और सटीक ढंग से अभिव्यक्त किया है। वे अपनी भाषाई क्षमता के साथ जो कहना चाहती हैं कह भी गईं हैं। वे अधिक सोचे बग़ैर सादे-सहज ढंग से अपनी बात कह डालती हैं। यह उनकी कला का सामर्थ्य ही है जो उन्हें

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 67
2. वही - पृ. 68
3. वही - पृ. 109
4. वही - पृ. 110

अपनी बात सीधे-सहज रूप में कहने को बाध्य करता है। उनका शैलीगत प्रयोग भी विशिष्ट एवं सुलझा हुआ है।

मृदुला गर्ग के कथा-साहित्य में शैली

शैली अनुभवजन्य है। इसे रूपायित नहीं किया जा सकता। वास्तव में कहानी बनाई नहीं जाती। वह स्वयं ही अपना आकार ग्रहण करती है। मृदुला गर्ग ने विषय की गहराई में उतर कर आंतरिक चेतना का उद्घाटन किया है। ऐसा केवल शैली की वजह से ही हो पाया है। कमलेश्वर ने आज की कहानी शैली को विलीन शैली कहा है। कथा-साहित्य का एक प्रमुख तत्व शैली होने से उसके कलापक्ष की महत्ता बढ़ जाती है। शैली के माध्यम से लेखक किसी भी विषय के भीतर घुसकर अपनी सोच का उद्घाटन कर सकता है। आज का कथा-साहित्य अपने सौंदर्य का अवतार है। यथार्थ के नज़दीक वह सहज और सामान्य है। मृदुला गर्ग ने अपने कथा-साहित्य में कथा-निरूपण की विविध शैलियों को अपनाया है। उनकी कथा-वर्णन की शैली इतनी अद्‌भुत है कि कथ्य अपनी संपूर्ण संवेदनशक्ति के साथ पाठक के समक्ष प्रस्तुत हो जाता है। मृदुला गर्ग की वर्णन शैली के विषय में *डॉ. शुकदेव सिंह* ने लिखा है– “हिंदी में शायद ही किसी लेखक या लेखिका ने प्रसव की वेदना को, उसके संपूर्ण कलाप को, इतनी बारीकी और विस्तार से लिखा हो पूरा-का-पूरा प्रसूति क्रिया का वर्णन बहुत ही तन्मयता और बारीकी से लिखा हुआ है और जच्चा की सारी

हवस, खलिश, दर्द और छटपटाहट को लेखिका ने तरह-तरह से उलट-पुलटकर प्रत्यक्ष कराने की कोशिश की है, वह वर्णन अद्‌भुत है।"[1]

मृदुला गर्ग ने अपने कथा-साहित्य में कथ्य-निरूपण, कथा-वर्णन एवं भाषिक अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है। वर्णनात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, फ़्लैशबैक शैली, परस्मैपदीय शैली, विश्लेषणात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली, संवादात्मक शैली, वार्तालाप प्रधान शैली, स्वप्न शैली, आँचलिक शैली, पत्र-शैली, फैंटसी शैली।

वर्णनात्मक शैली

प्रस्तुत शैली में कथाकार पात्रों, घटना आदि का वर्णन, वर्णनात्मकता के सहारे करता है। वर्णन करते-करते कहानीकार बौद्धिक विवेचन, भावात्मक वर्णन और विश्लेषण करता है। वर्णनात्मक शैली को व्याख्यात्मक या क़िस्सागो शैली भी कहते हैं। क्योंकि क़िस्सागो शैली वर्णनात्मक शैली रूप में ही निहित है। उदाहरण के लिए– "दो बजे तक वह क्लास में उल्टा-सीधा पढ़ाकर फ़ारिग हो गई फिर दो घंटे लाइब्रेरी में सिर खपाती रही। अधिक नहीं तो काम चलाने लायक नोट्‌स भी तैयार कर लिए। चार बजे वह बाहर निकल आई।"[2] यहाँ मनीषा का कॉलेज में चार बजे तक का क्रियाकलाप वर्णित है।

---

1. मृदुला गर्ग - चर्चित कहानियाँ - भूमिका से उद्धृत
2. मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 75

लेखिका ने *'अनित्य'* में कथा-वर्णन की शैली अपनाई है। "अनित्य घर का निकम्मा लड़का था। अविजित की माँ ही उसकी माँ थी। पर वह अविजित से चार साल छोटा था, इतना बड़ा नहीं कि नई माँ की ज़िम्मेदारी ले और इतना छोटा नहीं कि उसके मासूम बच्चों की तरह ज़िम्मेदारी बने।"[1]

यहाँ अनित्य की भूमिका वर्णित है।

"*उसके हिस्से की धूप*" उपन्यास के 'मनीषा' भाग में 'जितेन' और 'मधुकर' की कथा 'मनीषा' द्वारा वर्णनात्मक शैली में होती है। *'झूलती कुर्सी'* नामक उनकी कहानी में भी उदाहरण मिलते हैं– "उसके बाल भूरे थे ओर घुंघराले। नहीं घुंघराले नहीं, सिर्फ लहरदार। ज़्यादा थे न, इसीलिए सीधे, सिर पर समाते नहीं थे। एक लहर पर दूसरी लहर। अंगुलियाँ पिरो लो तो बालों में हाथ गुम हो जाय।"[2]

यहाँ मृदुला गर्ग ने नायिका (शेफाली) के कुर्सी पर बैठे बाल्कनी से जाने-पहचाने व्यक्ति के उसके करीब आने पर, उस व्यक्ति का बाह्य रूप, उसके बालों द्वारा वर्णनात्मक शैली में बयान किया है।

'ग्लेशियर से' कहानी-संग्रह की एक कहानी है *'अलग-अलग कमरे'* कहानी जिसमें भी वर्णनात्मक शैली मिलती है। "डॉक्टर नरेन्द्रदेव

---

1. मृदुला गर्ग - अनित्य - पृ. 32
2. मृदुला गर्ग - हरी बिंदी - झूलती कुर्सी - पृ. 78

का श्वेत रंग से बहुत लगाव था जो शायद उनके मन की शुचिता का सूचक था। रात हो चाहे दिन वे हमेशा साफ-सफेद लिबास पहने दिखलाई देते थे। चिट्टी खादी की पतलून और बंद गले का कोट दिन में और चिट्टी की खादी का कुर्ता-पाजामा रात में।"[1]

उपर्युक्त गद्यांश नरेन्द्रदेव की बाहरी शख्सियत का वर्णन करता है।

विश्लेषणात्मक शैली

अमूर्त एवं सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति के लिए विश्लेषणात्मक शैली प्रयुक्त होती है। भीतरी आवाज़ को प्रस्तुत करने और उसका चित्र खींचने में यह शैली सर्वाधिक उपयुक्त है। द्वन्द्वग्रस्तता तथा ऊहापोह की स्थिति में कहानीकार मन की अवस्था का विश्लेषण करता है। जहाँ कथा-साहित्य में एक ही चरित्र प्रधान हों और बाकि सब गौण हों तब यह शैली अत्यंत उपयुक्त है। विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग अधिकतर व्यक्तिवादी उपन्यासों में होता है। यहाँ लेखक, कथासूत्र को अग्रसर करने में कम तथा घटनाओं, चरित्रों आदि के विश्लेषण में अधिक रुचि लेता है। मृदुला गर्ग का लेखन अत्यंत तार्किक एवं बौद्धिक माना गया है। ऐसा उनके विश्लेषणात्मक शैली से ही संभव हुआ है। *'उसके हिस्से की धूप'* उपन्यास में उदाहरण मिलते हैं– "एक दिन जितेन ने कहा था - प्रेम जीवन का लक्ष्य नहीं हो

1. मृदुला गर्ग - ग्लेशियर से - पृ. 117

सकता। जितेन के लिए यह सत्य है, मनीषा पहले से जानती थी, आज उसने समझा कि यह केवल जितेन के लिए ही नहीं; सभी के लिए सत्य है। यह भी समझा कि उसके अपने जीवन का ख़ालीपन इसलिए बराबर बना रहता है, क्योंकि वह उसे किसी-न-किसी पुरुष के प्रेम से भरने का प्रयत्न करती रही है। इतना घनत्व प्रेम में नहीं होता कि वह अंतरिक्ष जैसे फैले जीवन के शून्य को सदैव के लिए भर सके।"[1]

'चित्तकोबरा' उपन्यास में मनु अपनी मनःस्थितियों का विश्लेषण करती हुई कहती है– "न जाने कैसा आलस मुझे पकड़ बैठा है कि चाहकर भी उठ नहीं पा रही। मरियल हाथों में थमा ब्रश लाचार-बेबस केंचुए की तरह बालों भर रेंग रहा है.... रेंगता चला जा रहा...."[2]

उनकी कहानी में भी विश्लेषण के दर्शन होते हैं। *'टोपी'* कहानी में नायक 'अविजित' के मानसिक द्वन्द्व का निरूपण इस रूप में हुआ है-- "नहीं जानता था वह मेरठ में है, मैं बिल्कुल नहीं जानता था, वह तंगी में है, बीमार है, उसे इलाज की ज़रूरत है, जानता तो ज़रूर उसके पास जाता, उसका इलाज कराता.... च..... मैं करता ..... ज़रूर। अविजित की आवाज़ कमज़ोर पड़ती गयी और एक अन्य स्वर उसके भीतर पनप उठा। 'पिछली बार जब चड्ढा मिला था, तो उससे पूछा था वह कहाँ रहता है?"[3]

---

1. मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 137
2. मृदुला गर्ग - चित्तकोबरा - पृ. 126
3. मृदुला गर्ग - ग्लेशियर से - टोपी - पृ. 47

आत्मकथात्मक शैली

इस प्रकार की शैली में कथाकार स्वयं को एक पात्र के रूप में रखकर भोक्ता या द्रष्टा के तौर पर कथावस्तु को संगठित करता है। इसमें लेखक कथा में संयोजित प्रत्येक घटना का वर्णन स्वयं करता है। इससे कथानक आकर्षक और चमत्कृत होने के साथ-साथ चरित्र-चित्रण में भी प्रभाव आ जाता है। इससे कथानक के प्रति विश्वसनीयता भी बढ़ जाती है। *'कठगुलाब'* उपन्यास में इस शैली का निर्वाह हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास में पाँच कथावाचक हैं - स्मिता, मारियान, नर्मदा, असीमा, तथा विपिन। ये पाँचों स्वभाव और प्रवृत्ति में एक-दूसरे से भिन्न हैं। जीवन को अपने-अपने नज़रिये से देखते और व्याख्यायिक करते हैं। उदाहरण के लिए– "मेरा नाम स्मिता है। कोई बीस साल बाद मैं अपने घर लौटी हूँ। वही मिट्टी से भरा घर।"[1]

"मेरा नाम मारियान है। स्मिता ने बतलाया होगा। मैं उसके साथ रिलीफ़ फॉर एब्यूज़्ड वुमेन, रॉ, में काम किया करती थी।"[2]

'समागम' कहानी तथा *'मीरा नाची'* कहानी भी आत्मकथात्मक शैली का उदाहरण देते हैं। *'समागम'* कहानी का उदाहरण देखिए– "मैं उस रोमांचक क्षण का इंतज़ार कर रही थी, जो कुछ देर में मुझे अभिभूत करने

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 9
2. वही - पृ. 61

वाला था। अपने-अपने अनुभव से सभी ने कहा था, अभूतपूर्व होती है, वह अनुभूति। हमेशा के लिए स्मृति में अंकित हो जाती है।"[1]

'मीरा नाची' का उदाहरण नीचे प्रस्तुत है– "मुझे चक्कर - टुकड़ों का क्या पता। मैंने कौन कथक सीखा है। स्कूल में क्लास लगती थी। पढ़ाई ख़त्म होने पर। मेरे साथ लड़कियाँ सीखती थीं। मेरा कितना मन करता है, नाचने का। पूछने पर माँ ने चोटी पकड़कर उखाड़ ही दी थी समझो।"[2]

यहाँ मीरा आत्मकथात्मक शैली में अपनी पढ़ाई की बात कर रही है।

मैं शैली का उदाहरण 'अक़्स' कहानी में भी मिलता है। "मैंने सोचा था, अधपहचाना सा कोई दीख भर तो जाये, मैं दौड़कर अपना हाथ उसके कंधे पर रख दूँगी। वह चौंककर मुझे देखेगा। उसके होठों पर मुस्कुराहट खिल जाएगी .....अपना वहम पहचानकर मैं हाथ उसके कंधे से हटा लूँगी, मुस्कुराहट माफी माँगूगी।"[3]

आत्मकथात्मक शैली में कथावाचक 'स्मिता' अपनी जीवन कहानी एक जोड़ी चश्में में क़ैद किए हुए है। यही उसकी ज़िंदगी का आधार है। आधुनिक सौंदर्यबोध है। स्मिता कहती है – "देखा आपने मेरी ज़िन्दगी

---

1. मृदुला गर्ग - समागम - पृ. 15
2. मृदुला गर्ग - समागम - मीरा नाची - पृ. 115
3. मृदुला गर्ग - शहर के नाम - अक़्स - पृ. 27

का आधार था, एक जोड़ी चश्मा। क्या आधुनिक सौन्दर्यबोध है। आज मैं अपने जीवन के इस विद्रूप पर हँस सकती हूँ। बहुत मेहनत करके हँसना सीखा है मैंने। वही आज मेरी एकमात्र पूँजी है।"[1]

'चित्तकोबरा' उपन्यास भी आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। मनु अपने मन के विचारों को 'मैं' शैली में प्रस्तुत करती है। मनु एक नरेटर बनकर अपने स्मृति चित्र संयोजित करते हुए पाठकों को भी अपने सफर में शामिल करती है। "नहीं मैं धीमें - धीमें आगे बढ़ूँगी। धीरे से झुककर लिफाफा उठाऊँगी। पहले नज़रों से चूमूँगी। फिर हाथ से सहलाऊँगी। फिर..... अनेक घड़ियों बाद...... बहुत संभालकर लिफाफें का चिपका किनारा फाड़ूंगी। ज़रा सब्र करो अब तुम...... चार महीने मैंने किया है...... इतना छटपटाओं मत...... पढ़ती हूँ...... पढ़ती हूँ अभी क्या लिखा है।"[2]

परस्मैपदीय शैली / अन्य पुरुष शैली

इसमें सर्जक तटस्थ द्रष्टा बनकर कहानी की संवेदना हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। इसे हम *'अन्य पुरष शैली'* भी कह सकते हैं।

'वह मैं ही थी' कहानी में गर्भावस्था की पीड़ा व्यक्त की गई है- "उसे हल्का हल्का बुखार रहता था। जब तब पेट और कमर में दर्द की

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 17
2. मृदुला गर्ग - चित्तकोबरा - पृ. 127

मरोड़ उठा करती थी। दिन फिर भी गुज़र जाता, पर रात होने पर बिस्तर पर लेटती तो घण्टे भर बाद उठ बैठती। नाक-मुंह दोनों से सांस लेने की कोशिश करती पर सांस आती नहीं। कभी-कभी घबरा जाती कि मनीश को झकझोरकर जगा देती। कहती - "दम घुट रहा है मेरा, सांस नहीं आ रही।"[1]

पूर्वदीप्ति शैली (फ़्लैश बैक शैली)

आधुनिक कथा लेखकों में यह शैली प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय है। इस शैली में रचनाकार वर्तमान कथा के सूत्र को किसी बीती हुई घटना से अकस्मात् ही प्रासंगिक रूप में जोड़ देता है और कथानक को गतिशील बनाता है। अंग्रेज़ी साहित्य के संपर्क से विकसित इस शैली में भूतकाल, वर्तमानकाल और फिर भूतकाल इस ढंग से कथावस्तु विकसित होती है। वर्तमान ज़िन्दगी जीते हुए पात्र अपने विगत जीवन की घटना का उल्लेख जब करते हैं, तब उसे *'फ़्लैश बैक'* या *'स्मृतिपरक'* शैली कहा जाता है। मृदुला गर्ग इसमें सिद्धहस्त रहीं हैं। *'अनित्य'* उपन्यास में स्वतंत्रता के बाद की और अविजित के वर्तमान की कथा है। जब-जब अतीत में भूतकाल का समावेश होता है तो अविजित की सोच अतीत तथा इतिहास की घटनाओं का फ़्लैशबैक पाठकों के समक्ष उपस्थित करती है। "और आख़िर में उन्नीस सौ सैंतालीस की वह नाकाबिले बयान मारकाट। दिलों में

---

1. मृदुला गर्ग - शहर के नाम - वह मैं ही थी - पृ. 57

जमी हिंसा का नंगा नाच..... किन्हीं अँग्रेज़ सार्जेंटों की ठोकरों से शुरू हुआ सिलसिला....

आज भी अगर कहीं वह अंग्रेज़ सार्जेंट अविजित को मिल जाए।

'पिता जी!' कमरे में आतंक से सना एक शब्द गूँजा। चौंककर अविजित ने सिर ऊपर उठाया।

कौन? कौन है यह?

शुभा? हाँ शुभा। उसकी बेटी।

पर..... वह अंग्रेज़ सार्जेंट? चड्ढा? लड़कों का हुज़ूम! नफ़रत से सनी लाठियाँ! बीते हुए वक़्त की कचोटती अकर्मण्यता। 'पिताजी' शुभा कह रही है 'क्या हो गया आपको?' बीता हुआ वक़्त। बीत जाने दो। क्यों नहीं बीत रहा। वह अपने घर पर है। लड़ाइयाँ ख़त्म हो चुकीं।"[1]

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल जी कहते हैं कि *'अनित्य'* सचमुच अनित्य है और हमारा नित्य है। *'चित्तकोबरा'* में पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग यथा-स्थान पर हुआ है। मनु रिचर्ड से अपनी प्यार भरी मुलाक़ात का वर्णन इसी शैली के सहारे करती है– "दस बजे। दिसम्बर की सुबह। धूप से लबरेज। .....उस दिन ज़रूर रविवार रहा होगा वरना रिहर्सल सुबह न रखा गया होता। ......मुझे पूरा यकीन है.... उस दिन से हो गया है।"[2]

---

1. मृदुला गर्ग - अनित्य - पृ. 78
2. मृदुला गर्ग - चित्तकोबरा - पृ. 25

उस दिन रिचर्ड के रूप से मनु सुबह प्रभावित हुई थी और रिचर्ड भी मनु रूपी फ्रांसीसी काउटेंस का गुलाम बन गया था। अपनी अतीत की स्मृतियों का वर्णन वह उपर्युक्त तरीके से करती है।

"उसके हिस्से की धूप' में भी कहीं-कहीं फ़्लैश बैक शैली का प्रयोग हुआ है। चार वर्ष बाद अपने पूर्वपति जितेन से मिलने के बाद मनीषा अपनी चार वर्ष पहले की ज़िन्दगी की घटना याद करते हुए कहती है– "तब चार वर्ष पहले ऐसा क्या हुआ था कि वह जितेन को छोड़ मधुकर के साथ चली आई थी? क्या कहा था तब उसने? मेरा नूतन जन्म हुआ है जितेन। ....कितनी निर्ममता के साथ उसने जितेन को झटक दिया था जैसे वह उसके और मधुकर के बीच खड़ी गारे की पतली कच्ची दीवार हो और कुछ नहीं।......"[1]

'मेरा' कहानी का आरंभ 'मीता' और 'महेंद्र' का स्कूटर पर अस्पताल की ओर जाते हुए होता है, जहाँ पर उन्हें मीता के एबॉर्शन का फ़ार्म भरना है। अस्पताल में पहुँचकर वहाँ इंतज़ार करते समय अतीत की समस्त घटनाएँ फ़्लैशबैक शैली में प्रस्तुत की गई है। विवाह के पहले महेंद्र का दफ़्तर में मीता से मुलाकात, घूमना-फिरना, शादी, फिर कुछ अच्छे पल, गर्भवती मीता, महेंद्र का इस बात से कुपित होना आदि भूतकाल की घटनाएँ मीता के एबॉर्शन के प्रसंग में अतीत में घटित होती दिखती हैं।

---

1. मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 65, 66

'कितनी क़ैदें', 'एक और विवाह', 'दो एक फूल', 'उसका विद्रोह' तथा *'समागम'* जैसी कुछ कहानियाँ भी फ़्लैशबैक शैली में लिखी गई हैं। इस स्मृतिपरक शैली का प्रयोग *'टोपी'* में भी आंशिक रूप में मिलता है।

"बारह साल पहले का दृश्य अविजित की आँखों के सामने साकार हो गया। 1942 का अगस्त खत्म होने को था, जब शाम के घिरते झुटपुटे में नुकीली छोटी दाढ़ी और पादरी के लबादे के पीछे छिप चड्ढा उसके घर आ पहुँचा था। 'पुलिस मेरे पीछे है। लगता है अब मैं जल्दी गिरफ्तार हो जाऊँगा' उसने कहा था।"[1]

'ख़रीदार' कहानी में भी फ़्लैश बैंक शैली का इस्तेमाल हुआ है। "वह चहल कदमी करती रही और जाने कब के भूले बिसरे दृश्य याद आते रहे। जिन क्षणों को दस बारह वर्ष पहले हम गहरी पीड़ा के साथ जिये होते हैं वही समय के साथ महज डायरी के पन्ने बनकर रह जाते हैं। एक-एक पन्ना स्पष्ट होकर उसके सामने आने लगा और वह हल्के विनोद से पढ़ती गयी। ....उस दिन ज़रूर रविवार रहा होगा।"[2]

---

1. मृदुला गर्ग - ग्लेशियर से - टोपी - पृ. 44
2. मृदुला गर्ग - ग्लेशियर से - खरीदार - पृ. 82

संवादात्मक शैली

संवाद कथा-रचना की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। जिसके अभाव में कहानी मात्र वर्णनप्रधान लगती है और कला का रस नहीं लगता। परस्पर संवादों से या वार्तालाप से कहानी मुख़र हो उठती है। मृदुला गर्ग ने भी प्रसंगानुकूल वार्तालाप का इस्तेमाल किया है। बौद्धिक लेखन के संवाद भी लेखिका द्वारा सृजित पात्रों की पैनी बुद्धि का प्रदर्शन करते हैं। संवादों की गरिमा इस बात में है कि संवाद कहीं कहीं अत्यधिक गतिशील हैं, जो पाठकों को रचना से बाँधे रखता है और कहीं व्यंग्य के तीक्ष्ण बाण जो पाठक को आहत किए बग़ैर नहीं छोड़ता। *'अनित्य'* उपन्यास में अविजित और संगीता का संवाद उदाहरण है।

"'मुझसे ब्याह करेंगे, अविजित जी?'

'मैं शादीशुदा हूँ।'

'पर उन्हें तो आप प्यार नहीं करते।'

'किसने कहा नहीं करता?'

'मैं कह रही हूँ। अपनी आश्रिता को ले जाकर गाना सुनवा देने से ही क्या प्यार का इज़हार हो जाता है?'

'क्या मतलब? श्यामा को मैंने कभी किसी चीज़ की कमी नहीं होने दी।'

उन्हें अगर मेरे बारे में पता चले?'"[1]

उपर्युक्त संवाद से यह ज़ाहिर होता है कि संगीता और अविजित के बीच अवैध संबंध हैं और अविजित, संगीता का दैहिक शोषण कर रहा है और उसे उससे प्रेम नहीं है। यह संवाद अविजित की चारित्रिक विशेषता भी बयान करता है। *'उसके हिस्से की धूप'* उपन्यास में भी संवाद शैली का नाटकीय प्रयोग दर्शनीय है। संवादों द्वारा पात्रों की मानसिकता का प्रकटीकरण, घटनासूत्रों की क्रमबद्धता आदि बातों का ध्यान लेखिका ने रखा है। 'मनीषा' और 'जितेन' के बीच का वार्तालाप नाटकीय अंदाज़ में है।

"आजकल हो कहाँ? उसके चुप हो जाने पर जितेन ने पूछा।'

'दिल्ली।'

'जाता रहता हूँ। कभी आऊँ तो मिलोगी?'

'हाँ शायद, कोशिश करूँगी।'

'फोन है?'

'हाँ, 458762'"[2]

'मंज़ूर-नामंज़ूर' कहानी में संवादों की गतिशीलता कथानक को गति प्रदान करती है।

"'नहाओगे?' तभी मंजूर ने पूछा।

---

1. मृदुला गर्ग - अनित्य - पृ. 158
2. मृदुला गर्ग - उसके हिस्से की धूप - पृ. 36

'हाँ, बिलकुल!' मेजर ने चौंककर कहा, 'ठंडे पानी से'।

मंज़ूर हँस दी। बोली, 'क्यों गरम किए देती हूँ।'

'नहीं ठंडा। 'उसने कहा और क़रीब - क़रीब भागकर गुसलख़ाने में घुस गया।'

'भूत है?' बेटे ने पूछा।

'हाँ, भूत अंकल। तुम वापस बिस्तर पर जाओ वरना।'"[1]

'पोंगल पोली' कहानी में भी सोनम्मा और शहर से आए पुरुष के बीच संवाद होता है और इसी वजह से सोनम्मा के दृढ़ चरित्र का भी पता चलता है-

"'क्या है? उसने कहा।'

'यह घर किसका है?' पुरुष ने पूछा।

'हमारा।'

'हम देख सकते हैं?'

'नहीं।'

'क्यों? भीतर और भी मूर्त्तियाँ हैं?'

'नहीं।'"[2]

---

1. मृदुला गर्ग - मेरे देश की मिट्टी, अहा - मंज़ूर-नामंज़ूर - पृ. 76
2. मृदुला गर्ग - टुकड़ा-टुकड़ा आदमी - पोंगल पोली - पृ. 23

'अवकाश' कहानी में संवाद संक्षिप्त हैं।

"अरे तुम भी लो न, महेश ने कहा।

नहीं, मैं लेकर आयी हूँ।

तो क्या हुआ साथ देने को लो न एक कप।

उसने प्याले में कॉफी घोली और चुपचाप पीने लगी।

मंमी डैड़ी कैसे हैं?

अच्छे हैं।

मिनी-कणु ने ज़्यादा तंग तो नहीं किया?

नहीं।

बढ़िया बनी है कॉफी। एक कप और डालना।"[1]

'कठगुलाब' उपन्यास में 'जिम जारविस' की छोटी-छोटी इच्छाओं बचकानी हरकतों और बेतुकी ज़िद्द निम्नलिखित संवाद व्यक्त करते हैं।

"'यह क्या है?' बिना घूँट भरे वह चिचिया उठा।

'गूरमे कॉफ़ी' मैंने किंचित् गर्व के साथ कहा।

'गूरमे! गूरमे, मतलब जानती हो गूरमे का? यह टर्किश कॉफ़ी है।'

'अच्छा।'

---

1. मृदुला गर्ग - टुकड़ा-टुकड़ा आदमी - अवकाश - पृ. 43

'अच्छा, मानी? तुम जानती नहीं कि यह टर्किश है या जानती हो कि यह टर्किश है? यूँ ही उठा लाई। पता है कि नहीं, पता है कि मैं सिर्फ़ ब्राजीलियन कॉफ़ी पीता हूँ। चारकोल टोस्टेड, ब्लैक समझीं? कड़क।'

'मैं तो उसी गूरमे दुकान से लाई हूँ, जिससे तुम लाते हो।'

'फिर गूरमे। गूरमे। उस दुकान पर बीसियों क़िस्म की कॉफ़ी मिलती है। तुम कुछ भी उठा लाओगी और..... और वह मेरी पसंद होगी? क्यों।' जिम औरतनुमा आवाज़ में चिनचिनाया।

'सॉरी', मैंने कहा, 'अगली बार मैं नाम लिखकर ले जाऊँगी।'"[1]

उपर्युक्त संवाद में स्मिता और उसका अमरीकन डॉक्टर पति जिम जारविस का विचित्र व्यक्तित्व चित्रित है। स्मिता की दिनचर्या भी प्रस्तुत है।

स्वप्न शैली

प्रस्तुत शैली में पात्रों के सपने में घटना घटित और विकसित होती दिखाई पड़ती है। यह 'आदि से अंत तक' तथा 'आंशिक' रूप में अलग-अलग तरीके से कहानी के प्रसंगानुसार प्रस्तुत होती है। लेखिका ने *'झुटपुटा'* कहानी में आंशिक रूप से इस शैली का प्रयोग किया है। स्वप्न

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 43

शैली द्वारा नायक 'केशव' की विकृत कामभावनाओं को दर्शाया गया है। "उस शाम शायद 'अथैलो' पढ़ा था। रात में पहली बार स्वप्न में मौसी दिखी। केशव उनसे कहीं ऊँचा था। वह नन्ही लड़की के समान दिख रही थी। केशव ने बाहें फैला दीं। मौसी उनमें समा गई। केशव का शरीर धनुष कमान की तरह तन गया और फिर..... अनुपम विमुक्ति, असीम परितोष। टेंशन.... रिलीज... टेंशन.... डेंसिटी ऑफ वॉटर...... साइन्स के प्रयोग और मौसी एकाकार हो गए।"[1]

फैंटसी शैली

इन्हें इन्द्रीयजालिक और काल्पनिक भी कहा जाता है। असंभाव्यता तथा अवास्तविकता नज़र आने पर भी कुछ समझदार 'फैंटसी' की कथा दिलचस्पी से पढ़ते है। अतृप्त भावनाएँ फैंटेसी को जन्म देती है। आकस्मिक बोध, और पलायन भावना भी ऐसा करती नज़र आती हैं। मृदुला जी ने अपनी कहानी *'ग्लेशियर से'* में इसका प्रयोग किया है। इस शैली का प्रयोग उन्होंने काफी कम किया है। इस कहानी में नायिका मिसेज़ दत्ता ताजीवास ग्लेशियर देखने अपने पति मिस्टर दत्ता के साथ जाती है। और वहाँ से दो मील दूर बर्फ का ग्लेशियर देख घबरा जाती है। नदी का पानी, सूरज की बटी किरणों, पत्थर और पगडंडी एक साथ ऊपर उठकर और गड्डमड्ड

---

1. मृदुला गर्ग - कितनी क़ैदें - पृ. 53

होकर उसके दिमाग में गोल-गोल चक्कर काटने लगते हैं और वह सिर पकड़कर वहीं नदी के किनारे बैठ जाती है। और फिर कल्पना लोक में भ्रमण कर, बर्फ की चढ़ाई पर एक पठान के साथ चल पड़ती है। उस पार जाने तथा पठान के साथ ग्लेशियर का पूर्ण आनंद ग्रहण करने के बाद तथा उस मौत के फरिश्ते के साथ ज़िन्दगी का समाँ देखने के बाद वह यथार्थ लोक में आ जाती है।

पत्र-शैली

किसी के नाम किसी का लिखित संदेश पत्र है। कोई बीच में न हो तो वह आत्मीय वार्तालाप बन जाता है। इसी आत्मीय संवाद हेतु कहानी कभी-कभी पत्र शैली का इस्तेमाल करती है। मृदुला गर्ग ने पत्र-शैली का प्रयोग *'शहर के नाम'* कहानी में किया है। "यह मेरा आख़िरी ख़त है और मैं तय नहीं कर पा रही हूँ कि इसे किसके नाम लिखूँ। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। मुझे ख़त लिखने का शौक़ रहा है। दिमाग़ पर दस्तक हुई नहीं कि ख़त लिखने बैठ जाती। जिस किसी का ख़्याल पहले ज़ेहन में उतर आता, उसी के नाम। माँ के, बप्पा के, तुरंत बने दोस्तों के, बरसों से छूटी सहेलियों के, किसी के भी नाम। जवाब मिले न मिले, परवाह नहीं।"[1]

इस कहानी का अंतिम भाग भी प्रस्तुत है– "बप्पा तुम फ़िक्र मत करना। कोई नहीं जान पाएगा कि मैं तुम्हारी बेटी हूँ। अपनी जवाबदेही

1. मृदुला गर्ग - शहर के नाम - पृ. 85

से मैंने तुम्हें मुक्त किया और ख़ुद को तुम्हारा स्वीकार पाने की लालसा से.... यह मेरा आख़िरी ख़त है। इसे फाड़ूँगी नहीं। आख़िरी वक़्त आने पर अपने शहर के नाम छोड़ जाऊँगी। इस शहर के नाम जो मेरा अपना नहीं था पर जिसमें मेरे शहर की आत्मा ज़रूर थी।"[1]

आलंकारिक शैली

इसमें नित्य जीवन की प्रतीक्षा के बीच अनिश्चितकालीन प्रतीक्षा की मनोव्यथा को प्रतीकों के माध्यम से चित्रित किया जाता है। अमूर्त भावों का मूर्त चित्रण कहानी में सौंदर्य उत्पन्न करता है। "उसे कैसे समझाया जाए कि रोज़ उसी कमरे की ख़िडकी के आगे सूरज उगता है। रोज़ धूप का नन्हा ख़रगोश ड़रा-सिमटा उसी बरामदे के कोने में दुबका रहता है और सूरज डूबने से बहुत पहले, निश्चित मृत्यु के डर से काँपकर, अपनी खोह में जा घुसता है। रोज़-रोज़ अँधेरा उसी कमरे के कोनों में कालिख़ पोतता है। और रोज़ उसी बिस्तर पर सिसकियाँ पैदा होने के पहले दम तोड़ दिया करती हैं।"[2]

अतः मृदुला जी ने आलंकारिक शैली का उपयोग कम मात्रा में ही सही सुंदर ढंग से किया है।

---

1. मृदुला गर्ग - शहर के नाम - पृ. 99
2. मृदुला गर्ग - चित्तकोबरा - पृ. 129

आँचलिक शैली

अँचल विशेष की कथा आँचलिक है। वहाँ के रीति-रिवाज़, खान-पान, भाषा और जीवन-यापन की पद्धतियों के माध्यम से यह कथा कही जाती है। ऐसी कहानी में उस अँचल विशेष की दरिद्रता, वहाँ का जनजीवन, वहाँ का जीवन स्तर सभी कुछ मुखर हो उठता है। अतः इस शैली में लिखना आसान नहीं है। मृदुला जी ने इसका प्रयोग किया है। *'तीन किलो की छोरी'* में गुजरात के एक गाँव का संपूर्ण आँचलिक वातावरण सजीव हो उठा है। वहाँ के पात्रों का जन-जीवन, ग़रीबी, खान-पान आदि हू-ब-हू वर्णित है। भाषा भी आँचलिक है। गाँव के कुछ अमीर परिवारों के बारे में कहानी में लेखिका कहती है- "घी, खाने वाले सुखी परिवारों की उसे क्या ख़बर। चार-पाँच भैसों वाले सुखी पटेल परिवारों में तो उसकी आमद है नहीं। सुना है सूकड़ी-भाकड़ी सब, घी में लौटमलोट खाते हैं वे लोग। और बच्चा जनने पर ठठ के ठठ मेथी पाक।"[1]

दो खण्डों में कहानी रचना की नूतन शैली

ऐसी कहानियों में मृदुला गर्ग की कहानी 'दुनिया का कायदा' आती है। इसमें दो खण्ड हैं एक ग्रामीण जीवन और दूसरा शहरी जीवन का कायदा। संस्कृति सभ्यता भी प्रसंगानुकूल है। वाक्यों के पुर्नप्रयोग ने कहानी में व्यंग्य की धार और पैनी कर दी है।

---

1. मृदुला गर्ग - शहर के नाम - तीन किलो की छोरी - पृ. 10

वार्तालाप शैली

प्रस्तुत शैली में संवाद का ही रूप प्रस्तुत है। परंतु यह ज़रूरी नहीं वार्तालाप बिलकुल संवाद में ही हों। संवाद रहित वार्तालाप *'विनाशदूत'* कहानी में कवि और मेघ के बीच है। यह भोपाल गैस काण्ड की भयावहता प्रस्तुत करता है। "मेघ हा हा कर हंस दिया। चरम आह्लाद रचना का प्रस्फुटन। और कहते हो अपने को कवि। बाहरी आँखें जो दिखलाती हैं उतना भर ही देख पाते हो, उससे परे कुछ नहीं? जानते नहीं, यहाँ से 80 कि.मी. की दूरी पर शहर भोपाल है। कहकर मेघ चुप हो रहा। कवि इंतज़ार करता रहा उसकी बात का पर मेघ यों चुप्पी साधे था जैसे आगे कहने को कुछ हो ही नहीं जैसे अन्तिम सत्य उद्घाटित हो चुका हो जैसे सबकुछ शेष हो चुका हो।"[1]

'कठगुलाब' में स्मिता जब अपनी बहन का घर छोड़कर अमरीका जाती है, तब वहाँ जाने पर वह अपनी एकाकी ज़िन्दगी को शुगर मेपल की झाड़ी से जोड़ती है। शुगरमेपल के नीचे सोकर वह उससे इस प्रकार वार्तालाप करती है-

""क्या बतलाऊँ शुगर, कितना हंसे थे सब लोग। बहुत समझ, चिड़िया, अंडे नहीं दे गई तेरे इस घोंसले में," नमिता ने कहा था।

---

1. मृदुला गर्ग - उर्फ सैम - विनाशदूत - पृ. 121

"कौन नमिता? कोई नहीं। यूँ ही नाम फिसल गया ज़ुबान से।"

"बहस मत करो, शुगर। मैंने स्मिता कहा होगा। तुमने गलत सुन लिया होगा। यहाँ सब मुझे समिता कहते हैं न, स्मिता कहा नहीं जाता। तुम कहकर देखो।"

"नहीं कहा गया न? अरे, इतना सर मत हिलाओ और कितने पत्ते झड़वाओगी?"

"हाँ शुगर, तुम्हारी समिता के बाल भी कभी खूब घुंघराले थे। अब तो बिल्कुल सीधे हैं। बतलाया तो था कैसे हुए सीधे।""[1]

यह वार्तालाप के साथ-साथ विश्लेषणात्मक शैली में भी प्रयुक्त है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मृदुला गर्ग की भाषा पात्रानुकूल है, जिसमें अद्‌भुत-विश्लेषण-शक्ति प्रश्नानुकूलता तथा उद्वेलित करने की क्षमता मौजूद है। निश्चित ही मृदुला गर्ग ने अपने कथा-साहित्य की आंतरिक माँग के अनुरूप ही भाषा और शैली का चुनकर प्रयोग किया है। नाम मात्र के लिए शिल्प-चमत्कार प्रस्तुत न करके उन्होंने प्रसंगानुकूल प्रयोग किया है। 'दिनेश द्विवेदी', मृदुला गर्ग की भाषा की तारीफ़ करते हुए

---

1. मृदुला गर्ग - कठगुलाब - पृ. 28, 29

कहते हैं-- "अपनी विशेष भाषा शैली के कारण मृदुला गर्ग का स्थान एक खास 'विंग' में आता है।"[1]

मृदुला जी की कथाएँ शब्दों के माध्यम से चेतना पर आघात करते हुए व्यंग्य की धार की तिलमिलाहट के साथ प्रश्नों की बौछार भी करती हैं। वे पाठकों को सजग और सचेत करती है। ऐसा उनके शैल्पिक वैशिष्ट्य के कारण ही हो पाया है। ज़ाहिर है मृदुला गर्ग जीवन की लंबी यात्रा पर हैं। उन्होंने अपने कथा-साहित्य के ज़रिए एक नई आस्था और उमंग जगाई है तथा आत्मनिरीक्षण के लिए प्रेरित किया है। अतः मृदुला जी का प्रयोग वाक़ई कथा-साहित्य का अद्वितीय पन्ना है। 'समकालीन कहानी में युवा चेतना' पुस्तक से प्रस्तुत उद्धृत वक्तव्य द्रष्टव्य है– "जब हम शिल्प की बात करते हैं तब हम लगभग हर चीज़ की बात करते हैं, क्योंकि शिल्प ही वह साधन है जिसके माध्यम से लेखक का अनुभव, जो कि उसकी विषय वस्तु है, उसे अपनी ओर ध्यान देने के लिए विवश करता है, शिल्प वह एकमात्र साधन है जिसके द्वारा वह अपने विषय को खोजता है, उसकी छानबीन करता है, उसका विकास करता है जिसके माध्यम से वह उसके अर्थ को संप्रेषित करता है और अन्ततः उसका मूल्यांकन करता है।"[2] उपर्युक्त कथन मृदुला गर्ग की शिल्पपरक विशेषताएँ हैं।

❖❖❖

---

1. दिनेश द्विवेदी - चर्चित महिला कथाकारों की कहानियाँ - पृ. 8
2. डॉ. ऋतु मंजरी - समकालीन कहानी में युवा चेतना - पृ. 143, 144

उपसंहार

उपसंहार

साहित्य यात्रा में मृदुला-गर्ग का प्रतिवाद स्पृहणीय है। मृदुला गर्ग समसामयिक विषयों की गहरी पड़ताल करती हैं। आत्मविश्वासी मृदुला गर्ग ने अपने जीवनानुभवों की तर्ज पर अपने कथा- साहित्य की नींव डाली है। वे स्त्री को उपभोग की वस्तु नहीं, बल्कि जीवित व्यक्तित्व मानती हैं। उनकी रचना में स्त्री भोग्या ही नहीं भोक्ता भी है। यह उनका 'क्रांतिकारी' चिंतन है। उनका मत है कि स्त्री की असली लड़ाई पुरुष के प्रति न होकर रुढ़ीगत मान्यताओं से होनी चाहिए। वे स्त्रियों द्वारा पुरुष-सत्ता पर बैठकर उन्हीं की तरह आचरण करने के सख़्त खिलाफ हैं। वे शोषण के तमाम कारणों को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहती हैं। मृदुला गर्ग की आम औरतों से विनती है कि वे अपने हक़ की लड़ाई लड़ने के साथ दूसरों को अधिकार भी दिलाएँ। कृष्णासोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा आदि अनेक लेखिकाओं ने अपने लेखन में नारी-स्वभाव को लेकर मिथ तोड़ा है। मध्यवर्ग एवं उच्च मध्यवर्ग की कहानियाँ उनके कथा-साहित्य में दृष्टिगोचर होती हैं। दांपत्य एवं दाम्पत्येतर संबंधों से अलग हटकर उन्होंने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समस्याओं को भी अपनी केन्द्रीय चिंता का विषय बनाया है। भोपाल गैस

कांड पर आधारित 'विनाशदूत', इंदिरा गाँधी के हत्याकाण्ड के दुष्परिणामों को चित्रित करनेवाली 'अगली सुबह' जैसी कहानियाँ लेखिका की मानवतावादी व जागरूक दृष्टि का परिचय देती हैं। जीवन मूल्यों का विघटन, वृद्धावस्था, विदेशों में बसे भारतीयों की व्यथा, नारी में व्यक्ति-स्वातंत्र्य की छटपटाहट आदि कहानियाँ विविध वर्ण लेकर आए हैं।

मृदुला जी के उपन्यास अधिकतर नर-नारी संबंधों के घेरे में हैं। एक ओर इनके यहाँ मनु, माधवी, मनीषा जैसी विशिष्ट वर्ग की नारी की समस्याएँ हैं, तो दूसरी नर्मदा, स्वर्णा, शांतम्मा, अंगूरी, रामकली (घरेलू नौकरानी) तथा शारदाबेन (दाई) का वर्ग है, जो आर्थिक अभावों और सामाजिक विसंगतियों दोनों से एक ही साथ जूझ रहा है। असीमा, दर्जिन बीबी, स्मिता, मारियान, नीरजा, काजल बेनर्जी, मेधा दी, मीना, नीना, मीरा, नंदिनी का अलग से ऐसा वर्ग है, जिनके जीवन की अपनी ही समस्याएँ हैं। इन तीनों के अतिरिक्त एक वेश्या का वर्ग भी है संगीता। लेखिका ने इस सत्य का प्रतिपादन किया है कि यदि संतान को जन्म देकर भी नारी मातृत्व के विराट भाव तथा मनुष्यता से वंचित है तो वह नारीत्व का अपमान है। सविता (वंशज), नमिता (कठगुलाब) जैसी स्त्रियाँ संतान को जन्म देकर भी अत्यंत क्षुद्र मानसिकता से ग्रस्त हैं। इनकी अपेक्षा स्मिता (कठगुलाब), स्वर्णा (अनित्य), लल्ली (मेरे देश की मिट्टी, अहा)

जैसे नारी-चरित्र अपेक्षाकृत अधिक सशक्त हैं जो मातृत्व की भावना से समृद्ध होते हुए भी बांझ कहलाई गई। मृदुला जी बांझ जैसे शब्दों के इस्तेमाल के सख़्त खिलाफ हैं।

मृदुला गर्ग उच्च मध्यवर्ग से ताल्लुक रखती हैं; किंतु लेखन उनके लिए अभिरुचि का प्रश्न ही नहीं जीवन-यापन का साधन भी रहा। उनके उपन्यास की सभी स्त्री-पात्र उनके लेखन की प्रयोगशाला में एक के बाद एक कड़ी के रूप में उभरती हैं। मनीषा, माधवी, मनु, मारियान और स्मिता, मोगरा और मृदुला। वे एक-एक करके विकसित होती पाई गई है। उनके अंतिम उपन्यास 'मिलजुल मन' में उन्हीं का प्रतिरूप मिलता है। यह एक आत्मकथात्मक उपन्यास है। गुलमोहर उनकी बड़ी बहन मंजुल भगत हैं। वास्तव में मृदुला जी को पहले उमा कहकर पुकारा गया था।

मृदुला जी के पात्रों को कहीं न कहीं अकेलापन सालता है। तत्कालीन समाज तथा भारतीय राजनीतिक मसलों में (सांप्रदायिक दंगे, आपातकाल की घोषणा आदि) मोहभंग के साथ-साथ बुढ़ापे और मृत्यु का भय भी यहाँ-वहाँ दिखाई पड़ता है। आज मानवीय संबंध इतने ढीले पड़ चुके हैं कि उनमें किसी से जुड़ कर रहने की लालसा खत्म हो गई है। विदेशों में बसे भारतीयों में वापस लौटने की ललक साफ दिखाई देती है। आर्थिक विपन्नता ही उन्हें विदेश जाने को प्रेरित करती है। जिजीविषा से

युक्त उनके पात्र कभी हार नहीं मानते। ज़िन्दगी से लड़ने और सफल होने की काबलियत रखते हैं। यद्यपि उनके कुछ पात्रों में अनहोनी का डर है पर वे अपने वजूद को मिटने नहीं देते। पर्यावरण से प्रेम उनकी नस-नस में समाया हुआ है। बाग़वानी का शौक उनमें बचपन से रहा है। उनके उपन्यास 'कठगुलाब' 'ईको फेमिनिज़म' की छाप छोड़ते हैं। उनके स्त्री पात्रों को प्रकृति से जोड़कर देखा गया है। पर्यावरण संस्था से भी वे संबंधित रही हैं। यह प्रकृति-प्रेम उनके कथा-साहित्य में प्राप्त होता है। अत्यंत सधे हुए शब्दों में अपनी बात उन्होंने की है। वे खुद कहती हैं कि वे समाज-सुधारक नहीं हैं पर उनकी रचनाओं में समाज प्रतिबिंबित ज़रूर होता है। धर्रे से हटकर लिखने की विशिष्ट शैली उन्होंने अपनाई है। उनके कथा-साहित्य में देहरी पर खड़ी सिसकती औरत देहरी लाँघ कर बाहर आ जाती है। वैचारिक रूप की प्रधानता विशिष्ट रूप में प्रतिपादित होती है। विदेशी राज्यों में अमरीका से उनका अधिक लगाव दृष्टिगोचर होता है।

मृदुला जी ने नाटक, निबंध, यात्रा संस्मरण, व्यंग्य-लेख आदि सभी अन्य विषयों पर भी हाथ फेरा है। 'एक और अजनबी' नाटक विदेशों में बसे भारतीय की चुंधियायी आँखों को दिखाता है। उनका कथा साहित्य बाज़ारवाद तथा नवउपनिवेशवाद के कई स्तरों का भी खुलासा करती है। बाज़ार बनते, आपसी रिश्तों की ओर भी इशारा किया गया है।

मृदुला गर्ग ने दाम्पत्य जीवन में अनेक कारणों से उपजे असंतोष, ऊब तथा एकरसता के कारण दाम्पत्य संबंधों के विघटन, टूटन को तो दर्शाया है पर टूटते दाम्पत्य के कारण नारी की पीड़ा और त्रासदी को चित्रित नहीं किया। सेक्स का आवश्यकता से अधिक खुलापन अत्यधिक ऊब पैदा करने के साथ-साथ खटकता भी है। मृदुला गर्ग ने अधिकांशतः महानगरीय, मध्यवर्गीय तथा शिक्षित नारियों को ही अपने कथा-साहित्य के केन्द्र में रखा है। ग्रामीण निम्नवर्गीय तथा अशिक्षित नारियों को लेकर उनकी 'तीन किलो की छोटी' 'अनाड़ी', 'दो-एक फूल' जैसी कुछ रचनाएँ ही उपलब्ध हैं। उसी प्रकार स्त्री का प्रेयसी रूप अधिक उभरा है। अन्य रूप कम ही पाए गए हैं।

मृदुला जी नारीवादी नहीं हैं। वे मानवतावादी हैं। उन्होंने नारी-अस्मिता के प्रश्नों को अभिव्यक्ति देने के साथ-साथ व्यक्ति-स्वातंत्र्य की खोज भी की है। यही कारण है कि उनके पुरुष पात्र खल-नायक नहीं है। जितेन एवं महेश अपनी पत्नी के मार्ग में बाधा नहीं बनते।

वर्तमान युग नारी पर निरंतर होते आ रहे अन्यायों का तथा उसके जागरण का साक्षी है। उसे आगे बढ़ने से रोकने वाले पुरुष-वर्चस्व की व्यवस्था को तिलांजलि देकर समता पर अधिष्ठित समाज-व्यवस्था कायम करने का आह्वान मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में अभिलक्षित है।

यदि स्त्री अपनी सोच बदलने, दृढ़ विश्वास पालने एवं आत्मविश्वास तथा स्वाभिमान की नई दिशा में सोचने और खुद को स्थिर करने की ओर जागरूक हुई तो मृदुला जी का कार्य सचमुच सफलता के शिखर पर अवश्य पहुँचेगा। मध्यवर्ग के बदलते रुख और समाज की यांत्रिक परिपाटी पर उघड़ते रिश्तों को समेटने का आग्रह; आगे आने वाली पीढ़ी को जगाने में कामयाब हुई तो कथा-साहित्य की यह लेखिका हृदय से संतुष्ट होगी।

मृदुला गर्ग का शिल्प अत्यंत कसे-सधे शब्दों में अभिव्यक्त हुआ है। काव्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, चित्रात्मकता, आलंकारिकता बिंब-विधान, संवाद-कौशल तथा आत्मीयता उनकी शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं। संवाद पात्रों में जान फूँक देते हैं। कथा की गतिशीलता में संवाद सहायक सिद्ध हुए हैं। उनकी भाषा और शैली में विदेशी लेखकों का भाव दृष्टिगोचर होता है। परंतु भाषा की सक्षमता और संप्रेषणीयता के बल पर लेखिका ने जो कुछ कहना चाहा है उसे अच्छी तरह कह दिया है।

आधुनिकीकरण के कुप्रभाव में प्राचीनतम अहसास छलनी होते जा रहे हैं। यंत्रीकरण के झमेले से नई पीढ़ी को सजग बनाने की छवि उनकी रचना में नज़र आती है। समस्त समस्याओं को साहित्य में सँवारकर पाठकों में एक नई ज्योति जलाती हैं। साहित्य जाने-अनजाने पढ़नेवालों पर प्रभाव डालता ही है। मृदुला गर्ग उन लेखिकाओं में हैं जो अपने स्त्री पात्रों

को उठाकर पुरुषों के बराबर तक ले आतीं हैं। अतः समाज को दर्पण बनाकर अपने उद्देश्यों को चार चाँद लगा देती हैं।

मृदुला गर्ग का लेखन समाज की वास्तविकताओं के प्रति पाठकों को जागरूक करने में सफल रही है। उनका यह विश्लेषणात्मक अध्ययन अवश्य समाज को दिशा निर्देश देने में सफल होगा। यह उनके कथा-साहित्य की बहुत बड़ी उपलब्धि होगी।

❖❖❖

सहायक ग्रंथ सूची

क) स्त्रोत ग्रंथ

1. उपन्यास

1. उसके हिस्से की धूप	राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली संस्करण-1987 पुनर्मुद्रित-1991, 1993
2. वंशज	अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण-1978
3. चित्तकोबरा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली सातवाँ संस्करण-2004
4. अनित्य	नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली तृतीय संस्करण-1987
5. मैं और मैं	नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली प्रथम संस्करण-1984
6. कठगुलाब	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली दूसरा संस्करण-1998
7. मिलजुल मन	सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण-2009

2. कहानी संग्रह

1. कितनी क़ैदें	इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण-1975
2. टुकड़ा-टुकड़ा आदमी	नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली संस्करण-1995
3. ड़ैफ़ोडिल जल रहे हैं	अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण-1978
4. ग्लेशियर से	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण-1983
5. उर्फ़ सैम	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण-1986
6. शहर के नाम	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण-1990
7. चर्चित कहानियाँ	सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण-1997
8. समागम	सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण-1998
9. मेरे देश की मिट्टी, अहा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली संस्करण-2001
10. हरी बिंदी	सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली तीसरा संस्करण-2008

11. संगति-विसंगति (संपूर्ण कहानियाँ) 1 & 2 — नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2004

12. स्थगित कल — कल्याणी शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-2006

13. जूते का जोड़, गोभी का तोड़ — पेंगुइन बुक्स द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2006

14. दस प्रतिनिधि कहानियाँ — किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2008

15. स्त्री मन की कहानियाँ — वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, प्रथम संस्करण-2010

3. नाटक

1. एक और अजनबी — नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण-1987

2. जादू का कालीन — राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1993

3. तीन कैदें — इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1996

4. निबंध/लेख संग्रह

1. रंग-ढंग — विद्या विहार प्रकाशन,
   नई दिल्ली
   संस्करण-1995

2. चुकते नहीं सवाल — सामयिक प्रकाशन
   नई दिल्ली
   संस्करण-1999

3. कुछ अटके कुछ भटके (यात्रा-संस्मरण) — पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली
   प्रथम संस्करण-2006

4. कर लेंगे सब हज़म (व्यंग्य-लेख) — कल्याणी शिक्षा परिषद
   नई दिल्ली
   प्रथम संस्करण-2007
   द्वितीय संस्करण-2008

5. खेद नहीं है (कटाक्ष) — किताबघर प्रकाशन
   नई दिल्ली
   प्रथम संस्करण-2010

सहायक-ग्रंथ

1. अद्यतन हिंदी उपन्यास — बिंदू भट्ट
   पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद
   प्रथम संस्करण-1993

2. अपना कमरा
   A room of ones own — वर्जीनिया वुल्फ
   अनु. गोपाल प्रधान
   संवाद प्रकाशन, मेरठ
   पहला संस्करण-2002

3. अवान्तर कथा	अनामिका किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण-2000
4. आज की हिन्दी कहानी	डॉ. धनंजय अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण-1969
5. आधुनिक कवि और नारी अस्मिता : नारी संकल्प और महादेवी वर्मा	डॉ. इन्दु वशिष्ट अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर संस्करण-1995
6. आधुनिकता के आइने में दलित	सं. अभय कुमार दुबे वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पहला संस्करण-2002
7. आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय-परिवेश के उपन्यास	डॉ. पारुकांत देसाई चिन्तन प्रकाशन, कानपुर प्रथम संस्करण-1994
8. आधुनिक हिन्दी उपन्यास सृजन और आलोचना	चन्द्रकान्ता बांदिवडेकर नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली प्रथम संस्करण-1985
9. आधुनिक हिन्दी कहानी में वर्णित यथार्थ	डॉ. ज्ञानचंद शर्मा राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण-1996
10. उपन्यास का पुनर्जन्म	परमानन्द श्रीवास्तव वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण-1995

11. उपन्यास की शर्त	जगदीशनारायण श्रीवास्तव किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण-1993
12. उपन्यास स्थिति और गति	डॉ. चन्द्रकान्ता बांदिवडेकर वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण-1993
13. एंगेल्स की रचना 'परिवार निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति'	इ. अन्द्रेयेव पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि. प्रगति प्रकाशन, मास्को संस्करण-1985
14. औरत अस्तित्व और अस्मिता (महिला-लेखन का समाजशास्त्रीय अध्ययन)	अरविंद जैन सारांश प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली संस्करण-2001
15. औरत : कल, आज और कल	आशारानी व्योहा कल्याणी शिक्षा परिषद् नई दिल्ली प्रथम संस्करण-2005
16. औरत के हक में	तसलीमा नसरीन अनुवादक-मुनमुनसरकार वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण-1994
17. औरत होने सजा	अरविंद जैन विकास पेपरबैक्स, दिल्ली संस्करण-1995

18. काँटे की बात (6)	राजेन्द्र यादव वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण-1998
19. कहानी : नई कहानी	डॉ. नामवर सिंह लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण-1966
20. चर्चित महिला कथाकारों की कहानियाँ	दिनेश द्विवेदी (संपादक) विद्या प्रकाशन मंदिर नई दिल्ली संस्करण-1985
21. दुर्ग द्वार पर दस्तक	कात्यायनी परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ द्वितीय संस्करण-1998
22. धर्म और समाज	डॉ. राधाकृष्णन राजपाल एण्ड संस, दिल्ली संस्करण-1975
23. धर्म और सांप्रदायिकता	नरेन्द्र मोहन प्रभात प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण-1996
24. नई कहानी की भूमिका	कमलेश्वर शब्दाकार प्रकाशन, दिल्ली संस्करण-1978
25. नई कहानी संदर्भ और प्रकृति	डॉ. देवीशंकर अवस्थी राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण-1976

26. नारी अस्मिता हिन्दी उपन्यासों में	डॉ. सुदेश बत्रा रचना प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण-1998
27. नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास	डॉ. गीता सोलंकी भारत पुस्तक भंडार, नई दिल्ली संस्करण-2007
28. नारी नवजागरण और महिला उपन्यासकारों की स्त्री-पुरुष परिकल्पना	डॉ. ऊर्मिला प्रकाश चिन्ता प्रकाशन, राजस्थान प्रथम संस्करण-1991
29. नारी विद्रोह के भारतीय मंच	आशारानी व्होरा नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली प्रथम संस्करण-1991
30. नारी शोषण-आईने और आयाम	आशारानी व्होरा नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली द्वितीय संस्करण-1994
31. नारीवादी विमर्श	राकेश कुमार आधार प्रकाशन पंचकूला (हरियाणा)
32. नीतिशास्त्र	जे.एन. सिन्हा जयप्रकाश नाथ एंड कंपनी नई दिल्ली संस्करण-1989

33. परिधि में स्त्री	मृणाल पाण्डे राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली प्रथम संस्करण-1996
34. परंपरा का मूल्यांकन	रामविलास शर्मा राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण-1981
35. पर्यावरण और जल प्रदूषण	निशांत सिंह दिल्ली ड्रीम बुक सर्विस, दिल्ली संस्करण-2003
36. बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध हिन्दी कहानी	डॉ. नरेन्द्र मोहन कादम्बरी प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण-1996
37. भक्ति आन्दोलन-इतिहास और संस्कृति	सं. कुँवरपाल सिंह वाणी प्रकाशन, दिल्ली संस्करण-2004
38. भारतीय नारी : दशा और दिशा	आशारानी व्होरा नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली संस्करण-1986
39. भारतीय मध्यवर्ग और सामाजिक उपन्यास	थॉमस पी.एम. जवहर पुस्तकालय, मथुरा संस्करण-1995

40. भारतीय समाज	श्यामचरण दूबे अनुवादक - वंदना मिश्र नेशनल बुक सेंटर, नई दिल्ली प्रथम संस्करण-2001
41. भारतीय समाज में नारी	नीरा देसाई मैकमिलन इंडिया, नई दिल्ली प्रथम संस्करण-1982
42. भूमंडलीकरण विचार नीतियाँ और विकल्प	कमल नयन काबरा प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली प्रथम संस्करण-2005
43. मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति	मदन गोपाल गुप्त नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली संस्करण-1968
44. मन्नु भण्डारी का कथा-साहित्य संवेदना और शिल्प	डॉ. श्रीमति सुषमापाल लोकवाणी संस्थान, दिल्ली प्रथम संस्करण-2000
45. मनुस्मृति	सुरेन्द्र तथा सक्सेना मनोज पब्लिकेशन, दिल्ली प्रथम संस्करण-2000
46. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ	डॉ. शीलप्रभा वर्मा विद्या विहार, कानपुर प्रथम संस्करण-1987

47. महिला रचनाकारों की कहानियों में जीवनमूल्य — डॉ. भारती शेळके, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण-2008

48. मामला आगे बढ़ेगा अभी — चित्रा मुद्‌गल, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-1995

49. मुझे मुक्ति दो — तसलीमा नसरीन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1998

50. मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी — डॉ. रमा नवले, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण-2007

51. युगवाणी — सुमित्रानंदन पंत, राजकमल प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण-1959

52. राजी सेठ कथा सृष्टि एवं दृष्टि — नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2006

53. राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य — वीर भारत तलवार, हिमाचल पुस्तक भंडार, सरस्वती भंडार, गाँधीनगर, द्वितीय संस्करण-1994

54. विद्रोही स्त्री	जर्मेन ग्रीयर अनुवादक-मधु.बी. जोशी राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण-2001
55. शिक्षा और समाज	आप्टे कला प्रकाशन, दिल्ली संस्करण-1958
56. समकालीन कहानी में युवा चेतना	ज़्. ॠतु मंजरी सार्थक प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण-2000
57. समकालीन महिला लेखन	डॉ. ओमप्रकाश शर्मा पूजा प्रकाशन एवं खामा पब्लिशर्स, नई दिल्ली प्रथम संस्करण-2002
58. समसामयिक नाटकों में वर्ग चेतना	डॉ. किशन चौहान स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण-1997
59. साठोत्तर महिला कहानीकार	डॉ. मधु संधु सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण-1984
60. साठोत्तरी हिन्दी कहानी और महिला लेखिकाएँ	डॉ. विजया वारद (रागा) विकास प्रकाशन, कानपुर प्रथम संस्करण-1993

61. साठोत्तरी हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में नारी	डॉ. सौ. मंगल कप्पीकेरे विकास प्रकाशन, कानपुर प्रथम संस्करण-2002
62. साहित्य में समाजशास्त्र की भूमिका	मैनेजर पाण्डेय हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ़ प्रथम संस्करण-1989
63. सीमन्तनी उपदेश	एक अज्ञात हिन्दु औरत भूमिका तथा संपादन डॉ. धर्मवीर शेष साहित्य प्रकाशन, उत्तर प्रदेश संस्करण-1988
64. स्मृति विमर्श (धर्म शास्त्रों का समाजशास्त्रीय संदर्भ)	विद्या प्रकाशन कानपुर प्रथम संस्करण-2008
65. स्त्री उपेक्षिता (अनूदित)	सीमोन द बोउवार प्रभा खेतान (अनुवादक) हिंद पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली संस्करण-1998
66. स्त्री-अधिकारों का औचित्य साधन (A vindication of the right of women)	मेरी वोल्सटल क्राफ्ट अनु. मीनाक्षी राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली संस्करण-1999

67. स्त्री और पराधीनता (The subjection of Women)	जॉन स्टुअर्ट मिल अनु. युगांक धीर संसद प्रकाशन, मेरठ प्रथम संस्करण-2002
68. स्त्री का समय	क्षमा शर्मा राजकमल पैपरबेक्स, नई दिल्ली प्रथम संस्करण-1998
69. स्त्री के लिए जगह	सं. राजकिशोर वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण-2000
70. स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ	रेखा कस्तवार राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण-2006
71. स्त्रीत्व का मानचित्र	अनामिका सारंश प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली प्रथम संस्करण-1999
72. स्त्रीत्व विमर्श : समाज और साहित्य	क्षमा शर्मा राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण-1991
73. स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक	मृणाल पाण्डे राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली पहला संस्करण-1987

74. स्त्री परंपरा और आधुनिकता	सं. राजकिशोर वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण-1999
75. स्त्री-पुरुष तुलना	ताराबाई शिन्दे अनुवादक जुई पालेकर
76. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श	जगदीश चतुर्वेदी अनामिका पब्लिकेशन एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा.लि., नई दिल्ली प्रथम संस्करण-2000
77. हम और हमारा पर्यावरण	डॉ. रविशंकर पाण्डेय अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण-2000
78. हम सभ्य औरतें	मनीषा सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण-2004
79. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ	शशिभूषण सिंघल विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा प्रथम संस्करण-1970
80. हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला	डॉ. रोहिणी अग्रवाल दिनमान प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण-1992
81. हिन्दी उपन्यासों में स्त्री अस्मिता की अभिव्यक्ति	वीना यादव अकादमिक प्रतिभा, नई दिल्ली प्रथम संस्करण-2006

82. हिन्दी कहानी : अस्मिता की तलाश — डॉ. मधुरेश
आधार प्रकाशन, पंचकूल
प्रथम संस्करण-1997

83. हिन्दी कहानी की शिल्पविधि — डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल
साहित्य भवन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण-1979

84. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना — डॉ. उषा यादव
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण-1999

85. हिन्दू धर्म — विद्यानिवास मिश्र
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
दूसरा संस्करण-1991

86. श्रृंखला की कड़ियाँ — महादेवी वर्मा
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
संस्करण-1999

English Reference Books

1. Feminism & Recent Fiction in English — Shushila Singh
Published by Prestige
Books, Delhi - 1991

2. Feminism Theory Criticism, Analysis — The Intellectual Tradition of American Feminism
by Josephine, Donavan
published by Predrick
New York - 1985

3.	Feminist Post Development	Canadian Contents Shirin Kudchedkar Published by Amrang
4.	Issues in Feminism	Leela Desai Pointer Publishers Aavishkar Publishers Distributors, Jaipur, India First Published in 2004 by Mrs. Shashi Jain
5.	Post Modernism and Feminism Canadian contexts	Shirin Kudchedkar Pencraft International Delhi-110052 First Edition-1995
6.	The encyclopedia of Philosophy, Vol. 2	H.J. Eysenck The Macmillion Company America First published-1972

पत्र-पत्रिकाएँ

1. आजकल - जुलाई 2001
2. आजकल - अप्रैल 1998
3. कथादेश - मई 1999
4. कहानी - अप्रैल 1972
5. दस्तावेज़ - जुलाई-सितम्बर 1999
6. पुनश्च - जून 2004
7. प्रकर - अप्रैल 1985

8. भाषा - सितम्बर-अक्टूबर 1997
9. मधुमती - अक्टूबर 1975
10. मनोरमा - जनवरी 1993
11. राष्ट्रीय सहारा - शनिवार 27 अक्टूबर, 2001
12. राष्ट्रीय सहारा - 15 दिसंबर 2001
13. लोकमत समाचार (दैनिक हिंदी पत्र) नवम्बर 2000
14. वागर्थ - फरवरी 1997
15. वाङ्मय - जुलाई-दिसम्बर 2007
16. वैचारिकी संकलन - अप्रैल 1998
17. संचेतना - सितम्बर-दिसम्बर 1996
18. समीक्षा - जुलाई-सितम्बर 1981
19. समीक्षा - अक्टूबर-दिसम्बर 1980
20. समीक्षा - मई-जून 1976
21. सारिका - 16-3- नवंबर 1984
22. सारिका - 16-31 अक्टूबर 1984
23. साक्षात्कार - जुलाई-अगस्त 1996
24. साक्षात्कार - सितम्बर 1976
25. हंस - अप्रैल 1997
26. हंस - जनवरी 1999
27. हंस - सितम्बर 1999
28. हंस - जनवरी 2002

❖❖❖